स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

MAED-01

शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

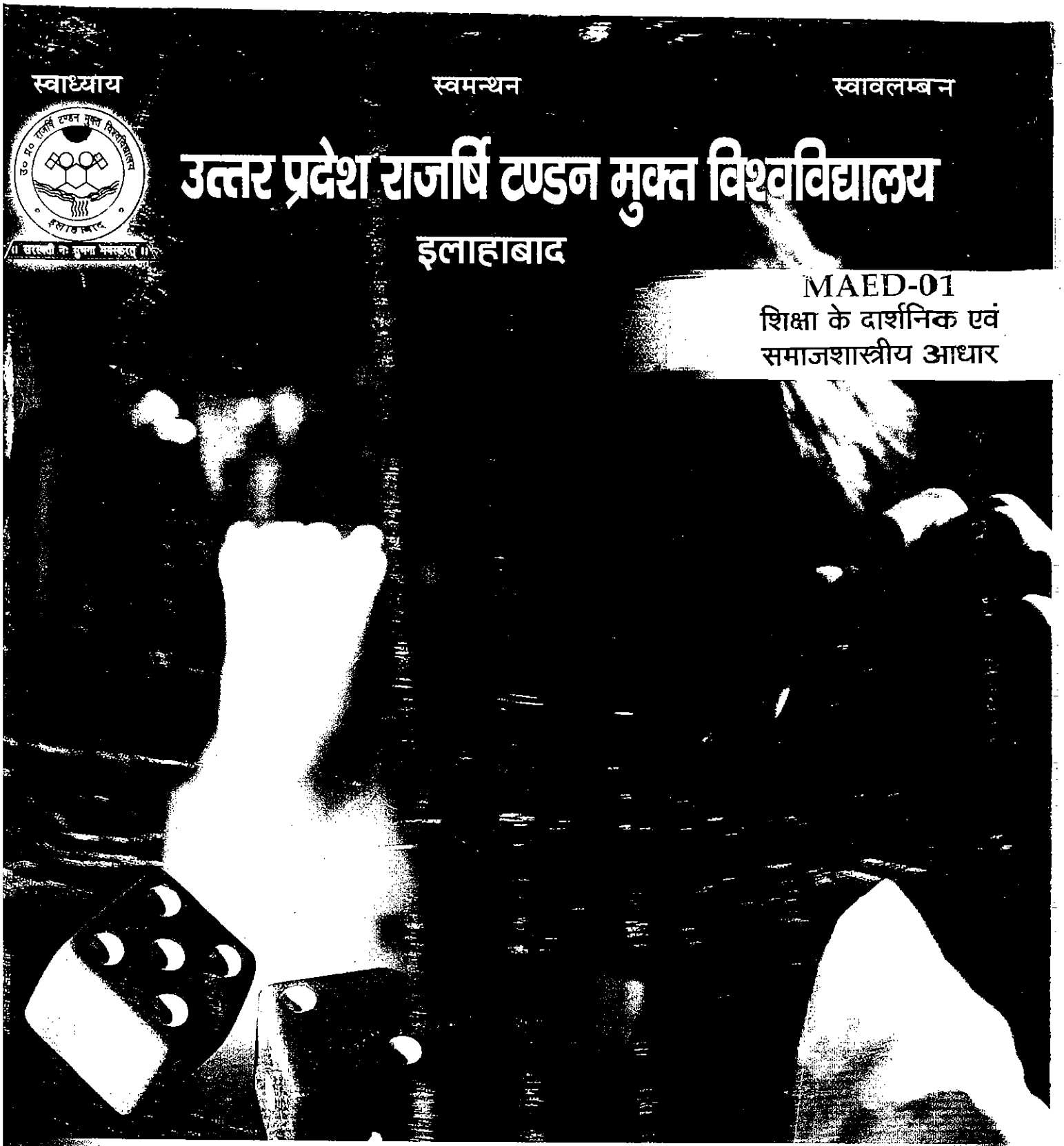

प्रथम खण्ड : शिक्षा के दार्शनिक आधार

द्वितीय खण्ड : शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय

तृतीय खण्ड : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

चतुर्थ खण्ड : शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

विश्वविद्यालय परिसर

शान्तिपुरम (सेक्टर - एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-01
शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

खण्ड

1

शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई-1 5
दर्शन का स्वरूप एवं विषय क्षेत्र

इकाई-2 18
शिक्षा की अवधारणा एवं कार्य

इकाई-3 40
शिक्षा और दर्शन के बीच सम्बन्ध

इकाई-4 52
शिक्षा दर्शन का स्वरूप एवं आवश्यकता

MAED-01- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

खण्ड-1	**शिक्षा के दार्शनिक आधार**
इकाई-1	दर्शन का स्वरूप एवं विषय क्षेत्र
काई-2	शिक्षा की अवधारणा एवं कार्य
काई-3	शिक्षा और दर्शन के बीच सम्बन्ध
काई-4	शिक्षा दर्शन का स्वरूप एवं आवश्यकता
खण्ड-2	**शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय**
काई-5	प्रकृतिवाद
काई-6	आदर्शवाद
काई-7	प्रयोजनवाद
काई-8	यथार्थवाद तथा अस्तित्ववाद
खण्ड-3	**शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार**
काई-9	धर्म और शिक्षा
इकाई-10	जनतंत्र और शिक्षा
इकाई-11	शैक्षिक मूल्य
इकाई-12	अनुशासन और स्वतंत्रता
खंण्ड-4	**शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार**
इकाई-13	शिक्षा और समाज
इकाई-14	शिक्षा और राष्ट्रीयता
इकाई-15	शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीयता
इकाई-16	शिक्षा के विज्ञान

खण्ड 1 – शिक्षा के दार्शनिक आधार

खण्ड परिचय

इस खण्ड में चार इकाइयां हैं जो कि शिक्षा के दार्शनिक पक्ष से सम्बंधित है। प्रथम इकाई में दर्शन का स्वरूप एवं उसके विषय क्षेत्र का वर्णन दिया गया है। दूसरी इकाई शिक्षा की अवधारणा परिभाषा एवं उसके कार्यों से सम्बंधित है। तीसरी इकाई में शिक्षा और दर्शन के सम्बंध पर प्रकाश डालते हुए शिक्षा दर्शन और दर्शन पर शिक्षा की अन्योन्याश्रितता का वर्णन किया गया। चौथी इकाई में शिक्षा दर्शन का सम्प्रत्यय, स्वरूप एवं आवश्यकता की विवेचना की गयी है।

शिक्षा के दार्शनिक आधार को समझने के लिये यह आवश्यक है कि सर्वप्रथम दर्शन की संकल्पना स्वरूप एवं उसके विषय क्षेत्र को जाना जाये क्योंकि इसके आगे शिक्षा दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश कर शिक्षा को उसकी देन के विषय में जानकारी प्राप्त करना है। दर्शन का क्रियात्मक एवं मूर्त पक्ष शिक्षा है अतः इसकी अवधारणा उद्देश्यों एवं कार्यों के विषय में ज्ञान अति आवश्यक है। इसीलिये तीसरी इकाई में दर्शन और शिक्षा दोनों को सामने रखकर इनके सम्बंधों की समीक्षा की गयी है। इसके साथ ही शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थी होने के कारण आपके लिये यह जानना अति आवश्यक है कि शिक्षा किससे प्रभावित है और किसको प्रभावित करती है। दर्शन और शिक्षा की अन्योन्याश्रितता के मुख्य कारण क्या हैं? यह हो सकता है कि दर्शन की संकल्पना आपको पूरी तरह से स्पष्ट न हो परन्तु आपके लिये यह अति आवश्यक है कि आपको शिक्षा की संकल्पना का स्पष्ट रूपसे ज्ञान हो और उसके दार्शनिक पक्ष एवं दर्शन के प्रभाव को आप समझें।

शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थी होने के कारण यह आपके लिये आवश्यक है कि आप शिक्षा के विचारात्मक पक्ष दर्शन और दर्शन के क्रियात्मक पक्ष शिक्षा को समझ लें क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर प्रभाव विभिन्न काल से हीं सार्वविदित है और आपके शिक्षा दर्शन के स्वरूप एवं विषय क्षेत्र को जानकारी भी देने का प्रयास किया गया है कि शिक्षा किस प्रकार अपने विभिन्न पक्षों के सफल संचालन हेतु दर्शन का आश्रय लेकर उसे सिद्ध कर पाती है। जैसा कि आप जानते हैं कि शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है इसके द्वारा मनुकृष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला–कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सुसभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। अतः शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया को मूल रूप में समझना आवश्यक है। इसकी चर्चा पूर्व की इकाई में विस्तार से की गयी है।

हमारा विश्वास है कि इस खण्ड की चारो इकाइयों के अध्ययन से आपका ज्ञानवर्धन होगा और आपकी रूचि एवं बुद्धि शिक्षाशास्त्र के अध्ययन में और प्रखर होगी। यह खण्ड आपको आगे शिक्षाशास्त्र विषय के अध्ययन हेतु एक मजबूत आधार प्रदान करेगा।

इकाई 1 दर्शन का स्वरूप एवं विषय क्षेत्र

संरचना–

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 दर्शन का सम्प्रत्यय

1.4 दर्शन की आवश्यकता

1.5 दर्शन का विषय क्षेत्र

1.6 दर्शन का उद्देश्य

1.7 दार्शनिक दृष्टिकोण की विशेषतायें

1.8 सारांश

1.9 अभ्यास कार्य

1.10 चर्चा के बिन्दु

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

मानव के द्वारा सभी देश में, सभी कालों में चिन्तन की क्रिया सतत् चलती रहती है और परिणामस्वरूप दर्शन का उद्भव होता है। इस दर्शन का प्रभाव शिक्षा एवं मानव जीवन पर पड़ता है। दर्शन एवं शिक्षा का अटूट सम्बंध होने से दर्शन का प्रभाव शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा संगठन, पाठ्यक्रम, प्रशासन, नीति एवं शिक्षक–शिक्षार्थी पर परिलक्षित होता है। देश काल परिस्थिति के अनुसार समाज का दर्शन शैक्षिक नीति व स्वरूप को प्रभावित करता है। अतएव इसी दृष्टिकोण से दर्शन, इसकी संकल्पना, अध्ययन की आवश्यकता, उद्देश्य, विषय क्षेत्र एवं अध्ययन विस्तार आदि की जानकारी इस इकाई में देने का प्रयास किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपमें यह योग्यता विकसित हो जायेगी–

- दर्शन का भारतीय एवं पाश्चात्य सम्प्रत्यय स्पष्ट कर सकेगें।
- दर्शन की संकल्पना की विवेचना कर सकेगें।
- दर्शन की परिभाषा बता सकेंगें।

- दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व बता सकेंगे।
- दर्शन के विषय क्षेत्र का वर्णन कर सकेंगे।
- दर्शन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।

1.3 दर्शन का अर्थ

दर्शन शब्द संस्कृत की दृश् धातु से बना है– "दृश्यते यथार्थ तत्वमनेन" अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ तत्व की अनुभूति हो वही दर्शन है। अंग्रेजी के शब्द फिलॉसफी का शाब्दिक अर्थ "ज्ञान के प्रति अनुराग" होता है। भारतीय व्याख्या अधिक गहराई तक पैठ बनाती है, क्योंकि भारतीय अवधारणा के अनुसार दर्शन का क्षेत्र केवल ज्ञान तक सीमित न रहकर समग्र व्यक्तित्व को अपने आप में समाहित करता है। दर्शन चिन्तन का विषय न होकर अनुभूति का विषय माना जाता है। दर्शन के द्वारा बौद्धिक तृप्ति का आभास न होकर समग्र व्यक्तित्व बदल जाता है। यदि आत्मवादी भारतीय दर्शन की भाषा में के कहा जाये तो यह सत्य है कि दर्शन द्वारा केवल आत्म–ज्ञान ही न होकर आत्मानुभूति हो जाती है। दर्शन हमारी भावनाओं एवं मनोदशाओं को प्रतिबिम्बित करता है और ये भावनायें हमारे कार्यों को नियंत्रित करती है।

1.3.1 दर्शन का भारतीय सम्प्रत्यय –

भारत में दर्शन का उद्गम असन्तोष या अतषप्ति से माना जाता है। हम वर्तमान से असन्तुष्ट होकर श्रेष्ठतर की खोज करना चाहते है। यही खोज दार्शनिक गवेषणा कहलाती है। दर्शन के विभिन्न अर्थ बतायें गये हैं। उपनिषद् काल में दर्शन की परिभाषा थी–

जिसे देखा जाये अर्थात् सत्य के दर्शन किये जाये वही दर्शन है।

(दष्श्यते अनेन इति दर्शनम्– उपनिषद)

डा0 सर्वपल्ली राधाकष्ष्णन के अनुसार– दर्शन वास्तविकता के स्वरूप का तार्किक विवेचन है।

1.3.2 दर्शन का पाश्चात्य सम्प्रत्यय –

पाश्चात्य जगत में दर्शन का सर्वप्रथम विकास यूनान में हुआ। प्रारम्भ में दर्शन का क्षेत्र व्यापक था परन्तु जैसे–जैसे ज्ञान के क्षेत्र मे विकास हुआ दर्शन अनुशासन के रूप में सीमित हो गया।

प्लेटो के अनुसार– जो सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता है और सीखने के लिये आतुर रहता है कभी भी सन्तोष करके रूकता नहीं, वास्तव में वह दार्शनिक है। उनके ही शब्दों में– "पदार्थों के सनातन स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना ही दर्शन है।"

अरस्तु के अनुसार– "दर्शन एक ऐसा विज्ञान है जो परम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जॉच करता है।"

कान्ट के अनुसार–"दर्शन बोध क्रिया का विज्ञान और उसकी आलोचना है।"

परन्तु आधुनिक युग में पश्चिमी दर्शन में भारी बदलाव आया है, अब वह मूल तत्व की खोज से ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की तार्किक विवेचना की ओर प्रवृत्त है। अब दर्शन को विज्ञानों का विज्ञान और आलोचना का विज्ञान माना जाता है। कामटे के शब्दों में– "दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।"

और हरबार्ट स्पेन्सर के शब्दो में "दर्शन विज्ञानों का समन्वय या विश्व व्यापक विज्ञान है।"

1.3.3 दर्शन का वास्तविक सम्प्रत्यय

ऊपर की गयी चर्चा से यह स्पष्ट है कि भारतीय दर्षष्टिकोण और पाश्चात्य दर्षष्टिकोण में मूलभूत अन्तर है। परन्तु दर्शन की मूलभूत सर्वसम्मत परिभाषा होनी चाहिये–

दर्शन ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं मानव के वास्तविक स्वरूप सृष्टि–सृष्टा, आत्मा–परमात्मा, जीव–जगत, ज्ञान–अज्ञान, ज्ञान प्राप्त करने के साधन और मनुष्य के करणीय और अकरणीय कर्मों का तार्किक विवेचन किया जाता है।

इस परिभाषा में प्राकर्षतिक, सामाजिक, अनात्मवादी व आत्मवादी और सभी दर्शन आ जाते है, और दर्शन के निम्न अर्थ प्रतिबिम्बित होते हैं–

1. **दर्शन का मूल ज्ञान के लिये प्रेम–** दर्शन शब्द के लिये अंग्रेजी शब्द फिलॉसफी है। इस शब्द की उत्पत्ति दो यूनानी शब्द से हुयी है। फिलॉस जिसका अर्थ है– प्रेम तथा सोफिया जिसका अर्थ है आफ विज्डम। इस प्रकार से फिलास्फी का अर्थ है 'लव फार विज्डम'या ज्ञान के लिये प्रेम। सुकरात के अनुसार "वे व्यक्ति दार्शनिक होते हैं जो सत्य के दर्शन हेतु इच्छुक होते हैं।"
2. **दर्शन का अर्थ सत्य की खोज–** दूसरी ओर प्रथम परिभाषा भी यह स्पष्ट करती है कि दर्शन जीवन के सत्यों की खोज और उसे ज़ानने की इच्छा तथा उसके साक्षात्कार को कहते हैं। डी0वी0ने स्पष्ट लिया है" दर्शन विचारने का प्रयत्न है। हम यह भी कह सकते हैं कि जीवन तथा संसार के सम्बंध में विभिन्न तथ्यों को एक साथ एकत्र करना जो एकनिष्ठ सम्पूर्ण बनकर जो या तो एकता में हो या द्वितत्ववादी सम्प्रदाय में हों, अन्तिम सिद्धान्तों की एक छोटी संख्या में बहुवितरणों को बदल दे।
3. **विचारीकरण की कला– पैट्रिक के अनुसार–** "दर्शन को हम सम्यक् विचारीकरण की कला कह सकते हैं।" इसमें व्यक्ति तर्क एवं विधिपूर्वक संसार की वस्तुओं के वास्तविक रूप को जानने का प्रयास करता है। इस प्रकार से

हम यह भी मान सकते हैं कि व्यक्ति जन्म से कुछ दार्शनिक होता है।

4. **अनुभव की बोध गम्यता– बाइटमैन के अनुसार–** " दर्शन को हम वो प्रयास कह सकते हैं जिसके द्वारा सम्पूर्ण मानव अनुभवों के विषय में सत्यता के साथ विचार करते हैं अथवा हमारे सम्पूर्ण अनुभव बोधगम्य बनते हैं।"

5. **जीवन की आलोचना** – दर्शन में जगत के दिग्दर्शन का बुद्धिवादी प्रयत्न किया जाता है। इसमें प्रयत्न किया जाता है कि तत्वों एवं पहलुओं के साथ समग्र ब्रह्माण्ड की धारणा पर पहुँच सके तथा पारस्परिक सम्बंध समझ सकें।– दर्शन जीवन की आलोचना है।

6. **अंतिम उत्तर के रूप में** – दर्शन को उस उत्तर के रूप में देखा जा सकता है जिसमें अंतिम प्रश्नों का आलोचनात्मक ढंग से उत्तर दिया जाता है। वास्तव में दर्शन का अध्ययन केवल प्रश्नों के उत्तर के लिये नहीं अपितु प्रश्नों के लिये भी होता हैं।

6. **समस्याओं पर विचार करने का ढंग**– नवीनतम विचार के अनुसार–दर्शन केवल गूढ़ एवं सूक्ष्म विचार ही नहीं वरन् यह समस्याओं पर विचार करने का ढंग है। इसके फलस्वरूप ज्ञान आदर्श मूल्य एवं अच्छाई मिलती है। हैण्डरसन लिखते हैं– "दर्शन कुछ अत्यन्त कठिन समस्याओं का कठोर, नियंत्रित एवं सुरक्षित विश्लेषण है, जिसका सामना मनुष्य सर्वदा करता है।"

निष्कर्ष–

केवल ईश्वर ब्रह्म, जीव, प्रकृति, मनुष्य इसकी यर्थाथता एवं अंतिम वास्तविकता आदि से सम्बंधित प्रश्नों तथा उत्तरों को ही दर्शन की परिधि में नहीं रखते। व्यापक अर्थ में दर्शन वस्तुओं, प्रकषति तथा मनुष्य उसके उद्गम और लक्ष्य के प्रतिवीक्षण का एक तरीका है, जीवन के विषय में एक शक्तिशाली विश्वास है जो उसको धारण करने वाले अन्य से अलग करता है।

दर्शन की परिभाषा –

हम यह कह सकते हैं कि दर्शन का सम्बध ज्ञान से है और दर्शन ज्ञान को व्यक्त करता है। हम दर्शन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने हेतु कुछ परिभाषायें दे रहे हैं।

- **बरट्रेण्ड रसेल**– "अन्य विधाओं के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य–ज्ञान की प्राप्ति है।"
- **आर0 डब्लू सेलर्स**–"दर्शन एक व्यवस्थित विचार द्वारा विश्व और मनुष्य की प्रकषति के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न है।"
- **जॉन डी0वी0 का कहना है**– "जब कभी दर्शन पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है तो यही निश्चय हुआ कि दर्शन ज्ञान प्राप्ति का महत्व प्रकट

करता है जो ज्ञान जीवन के आचरण को प्रभावित करता है।"

- **हैन्डर्सन के अनुसार**– "दर्शन कुछ अत्यन्त कठिन समस्याओं का कठोर नियंत्रित तथा सुरक्षित विश्लेषण है जिसका सामना मनुष्य करता है।
- **ब्राइटमैन** ने दर्शन को थोड़े विस्तष्त रूप में परिभाषित किया है – कि दर्शन की परिभाषा एक ऐसे प्रयत्न के रूप में दी जाती है जिसके द्वारा सम्पूण्र मानव अनुभूतियों के विषय में सत्यता से विचार किया जाता है अथवा जिसके द्वारा हम अपने अनुभवों द्वारा अपनें अनुभवों का वास्तविक सार जानते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

1. दर्शन का अंग्रेजी रूप किस यूनानी शब्द से लिया गया है?

   .....

2. दर्शन के मुख्य रूप से दो अर्थ बताइये।

   .....

3. दर्शन की कोई दो परिभाषा लिखिये।

   .....

1.4 दर्शन की आवश्यकता

दर्शन यानी दाशर्निक चिन्तन की बुनियाद, उन बुनियादी प्रश्नों में खोजी जा सकती है, जिसमें जगत की उत्पत्ति के साथ–साथ जीने की उत्कंठा की सार्थकता के तत्वों को ढूढने का प्रश्न छिपा है। प्रकृति के रहस्यों को ढूढनें से शुरू होकर यह चिन्तन उसके मनुष्य धारा के सामाजिक होने की इच्छा या लक्ष्य की सार्थकता को अपना केन्द्र बिन्दु बनाती है। मनुष्य विभिन्न प्रकार के ज्ञान अपने जीवन में प्राप्त करता है। उस ज्ञान का कुछ न कुछ लक्ष्य अवश्य होता हैं। दर्शनशास्त्र के अध्ययन शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये विशेष कर आवश्यक जान पड़ता है। इसके कई कारण है–

1. **जीवन को उपयोगी बनाने के दृष्टिकोण से**– भारतीय एवं पाश्चात्य दोनो विचारों के अनुसार दर्शन की आवश्यकता सर्वप्रथम जीवन के लिये होती है। प्रत्येक व्यक्ति विद्वान या साधारण ज्ञान या न जानने वाला हो वह अवश्य ही विचार करता है। व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं को यादकर उनसे आगामी घटनाओं का लाभ उठाता है। यह अनुभव उसको जीवन में एक विशिष्ट दर्ष्टिकोण रखने वाला बना देते हैं। यही उसका जीवन दर्शन बन जाता है।

2. **अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण–** दर्शन का एक रूप हमें अर्थव्यवस्था में भी मिलता है, जिसके आर्थिक दर्शन भी कहते हैं। आर्थिक क्रियाओं पर एक प्रकार का नियंत्रण होता है। इसका प्रयोग व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय जीवन में होता है। परिणामस्वरूप दोनों को लाभ होता है। मितव्ययिता एक विचार है और इसका उदाहरण है। व्यक्तिगत एंव राष्ट्रीय योजना का आधार यही दर्शन होता है। अर्थव्यवस्था शिक्षा के क्षेत्र में भी होता है। जिससे लाभों की दृष्टि में रखकर योजनायें बनती हैं।

3. **राजनैतिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से–** विभिन्न राजनैतिक व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के दर्शन होते हैं। जनतंत्र में जनतांत्रिक दर्शन होता है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार मिलते हैं। विभिन्न ढंग से उसे समान अवसर दिये जाते हैं और उसे पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है। विभिन्न ढंग से एक दार्शनिक दृष्टिकोण एवं सिद्धान्त बनता है। दर्शन राष्ट्रीय मूल्यों का स्थापन कर उनका क्रमिक विकास करता है।

4. **शैक्षिक विकास की दृष्टिकोण से–** संस्कृति जीने की कला है एवं तरीकों का योग हैं । दर्शन इन विधियों का परिणाम कहा जा सकता है। संस्कृति का परिचय दर्शन से मिलता है। भारतीय संस्कृति का ज्ञान उसके दर्शन से होता है। भारतीय परम्परा में सुखवाद को स्थान नहीं, त्याग एवं तपस्या का स्थान सर्वोपरि है अतएव भारतीय दर्शन में योगवादी आदर्श पाये जाते हैं और भारतीय दर्शन आदर्शवादी है।

5. **व्यक्ति को चिन्तन एवं तर्क से पूर्ण बनाने की दृष्टि से** – दर्शन जीवन पर, जीवन की समस्याओं पर और इनके समाधान पर चिन्तन एवं तर्क की कला है। इससे जानने की आवश्यकता हर व्यक्ति को हो।

बोध प्रश्न

निर्देश–

क– निचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलान करें।

दर्शन के कोई चार महत्व बताइये–

1. .....
2. .....
3. .....
4. .....

1.5 दर्शन का विषय क्षेत्र

भारतीय विचारधारा के अनुसार दर्शन एवं जीवन में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। अतः सम्पूर्ण जीवन को दर्शन का विषय क्षेत्र माना गया है। हम दर्शन को मुख्यतः दो रूप में ग्रहण करते हैं–

1. सूक्ष्म तात्विक ज्ञान के रूप में।
2. जीवन की आलोचना और जीवन की क्रियाओं की व्याख्या के रूप में। एक शास्त्र के रूप में दर्शन के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों को अध्ययन किया जाता है।

1. **आत्मा सम्बंधी तत्व ज्ञान–** इसमें आत्मा से सम्बंधित प्रश्नों पर विचार किया जाता है: यथा आत्मा क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है? जीव क्या है? आत्मा का शरीर से क्या सम्बंध है? इत्यादि।
2. **ईश्वर सम्बंधी तत्व ज्ञान–** इसमें ईश्वर विषयक प्रश्नों के उत्तर खोजे जाते हैं : जैसे कि ईश्वर क्या है? उसका अस्तित्व है या नहीं? ईश्वर का स्वरूप कैसा है? इत्यादि।
3. **सत्ता–शास्त्र–** इसमें अमूर्त सत्ता अथवा वस्तुओं के तत्व के स्वरूप का अध्ययन किया जाता है: यथा– ब्रह्माण्ड के नश्वर तत्व क्या है? ब्रह्माण्ड के अक्षर तत्व कौन–कौन से हैं ?
4. **सृष्टि–शास्त्र–** इसमें सृष्टि की रचना एवं विकास से सम्बंधित समस्याओं पर विचार किया जाता है : यथा– क्या सृष्टि अथवा ब्रह्माण्ड की रचना भौतिक तत्वों से हुयी है? क्या ब्रह्माण्ड का निर्माण आध्यात्मिक तत्वों से हुआ है? इत्यादि।
5. **सर्षष्टि उत्पत्ति का शास्त्र–** इस शास्त्र में सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में विचार किया जाता है : यथा– सृष्टि अथवा विश्व की उत्पत्ति किस प्रकार हुयी है? क्या इसकी रचना की गयी है? यदि हां तो इसकी रचना किसने की है? इत्यादि।
6. **ज्ञान–शास्त्र–** इस शास्त्र में सत्य ज्ञान से सम्बंधित समस्याओं का हल खोजा जाता है : जैसे कि सत्य ज्ञान क्या है? इस ज्ञान को प्राप्त करने के कौन– से साधन है? क्या मानव बुद्धि इस ज्ञान को प्राप्त कर सकती है? इत्यादि।
7. **नीति–शास्त्र–** इसमें व्यक्ति के शुद्ध एवं अशुद्ध आचरण से सम्बंध रखने वाली बातों का अध्ययन किया जाता है। जैसे नीति क्या है? मनुष्य को कैसा आचरण करना चाहिये। मनुष्य का कौन सा आचरण नीति विरुद्ध है।

8. **तर्क–शास्त्र**– इसमें तार्किक चिन्तन के विषय में विचार किया जाता है– यथा : तार्किक चिन्तन कैसे किया जाता है? तर्क की विधि क्या है? तार्किक चिन्तन का स्वरूप क्या है? इत्यादि।

9. **सौन्दर्य–शास्त्र**– इसमें सौन्दर्य– विषयक प्रश्नों के उत्तर खोजे जाते हैं : यथा– सौन्दर्य क्या होता है? सौन्दर्य का मापदण्ड क्या है? इत्यादि।

10. **दर्शन मनुष्य एवं जगत के सम्बंध का अध्ययन**– दर्शन जीवन की आलोचना तथा जीवन क्रियाओं की व्याख्या है वहां दर्शन मनुष्य का सम्बंध जगत से तथा जगत की विविध गतिविधियों से क्या है, अध्ययन करता है। जीवन का इस जगत से सम्बंध समाज और समाज की आर्थिक, राजनैतिक शैक्षिक आदि क्रियाओं के साथ है। अस्तु सामाजिक दर्शन, आर्थिक दर्शन, राजनैतिक दर्शन तथा शिक्षा दर्शन भी अध्ययन के विषय बन गये हैं। इन सभी विषयों में समस्याओं के अध्ययन के साथ उनमें आदर्श एवं मूल्यों की स्थापना होती है।

बोध प्रश्न

निर्देश–

क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलान करें।

5. भारतीय विचारधारा के अनुसार दर्शन का क्षेत्र क्या है?

.....

6. सर्षष्टि शास्त्र किसका अध्ययन करता है?

.....

7. दर्शन मानव जीवन से कैसे सम्बंधित है?

.....

1.6 दर्शन का उद्देश्य

दर्शन चिन्तन एवं विचार है, जीवन के रहस्यों को जानने का प्रयत्न है। अतएव दर्शन के निम्न उद्देश्य कहे जा सकते हैं।

- **रहस्यात्मक आश्चर्य की सन्तुष्टि**– दर्शन का आरम्भ भारत में तथा यूनान में आश्चर्य सें हुआ है। वैदिक काल में मानव ने प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं, घटनाओं एवं क्रियाओं को देखकर आश्चर्य किया कि सूर्य, चन्द्र, तारे, प्रकाश, आंधी, वर्षा, गर्मी और मानव की उत्पत्ति कैसे हुयी? मानव में इसे जानने की इच्छा हुयी। उसने परम सत्ता की कल्पना की। उसने अपने (आत्म) एवं ईश्वर

(परम) में अन्तर किया और दोनों के पारस्परिक सम्बंध को खोजने के लिये प्रयत्नशील हुआ। मानव ने परमसत्ता को समस्त चराचर में समाविष्ट देखा और चिन्तन द्वारा अनुभूति या साक्षात्कार करने की मानव ने लगातार प्रयत्न किया और उस परमसत्ता की प्राप्ति को मोक्ष कहा यही परमसत्ता की प्राप्ति भारतीय दर्शन कहलाया।

- **तात्विक रहस्यों पर चिन्तन**– यूनान में "आश्चर्य" से दर्शन का जन्म माना गया है। यूनानी लोगों को भी प्रकृति की क्रियाओं पर आश्चर्य हुआ और संसार के मूलोद्गम को जानने की जिज्ञासा ने जन्म लिया। थेलीज ने जल को एनैकथीमैन्डर ने वायु और हैराक्लाइटस ने अग्नि को उद्गम का मूल माना। वास्तव में ये तीन तत्व ही जगत निर्माण के मूल माने गये। यही तत्व भारत में भी सृष्टि निर्माण के मूल तत्व माने गये हैं बस पांचवा तत्व आकाश माना गया है।
- **तर्क द्वारा संशय दूर करना**– दर्शन का आरम्भी संशय से होता है। वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति केवल किसी की बात को मान लेने से नहीं होता है जब तक कि इसे तर्क देकर सिद्ध न किया जाये। डेकार्ट ने माना– "मैं विचार करता हूँ इस लिये मेरा अस्तित्व है" अर्थात् डेकार्ट ने आत्मा को सन्देह रहित माना। आत्मा मनुष्य में निहीत है परन्तु ईश्वर की सत्ता असंदिग्ध हैं। दर्शन सत्य ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।
- **यर्थाथ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना**– भारतीय दृष्टिकोण से दर्शन का लक्ष्य सत्य की खोज करना है। यह सत्य प्रकृति सम्बंधी तथा आत्मा सम्बंधी हो सकता है। इस यूनान के दार्शनिक प्लेटो ने माना और उनके अनुसार–दर्शन, अनन्त का तथा वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना है। अरस्तु ने और अधिक स्पष्ट करते हुये लिखा कि दर्शन का लक्ष्य प्राणी के स्वरूप का अन्वेषण करना है और उनमें निहित स्वाभाविक गुणों का पता लगाता है। वून्ट ने स्पष्ट किया– विद्वानों द्वारा प्राप्त समग्र ज्ञान का सामंजस्यपूर्ण एकता में एकत्रीकरण ही दर्शन है। अतएव "दर्शन पूर्ण रूपेण एकत्रित ज्ञान ही है।" दर्शन का लक्ष्य समग्र ब्रह्माण्ड को समग्र वास्तविकता का दिग्दर्शन है।
- **जीवन की आलोचना और व्याख्या करना**– दर्शन का एक लक्ष्य आधुनिक वर्षों मे जीवन की आलोचना एवं व्याख्या करना तथा निश्चित धारणाओं को प्राप्त कराना है जिससे जीवन को लाभ हो सके। दर्शन का उद्देश्य व्यापक तथा विभिन्न क्षेत्रों से सम्बंधित है।
- **जीवन के आदर्शों का निर्माण करना**– प्राचीन काल से आज तक अपने देश में तथा अन्य सभी देशों में दर्शन का लक्ष्यों जीवन के आदर्शों का निर्माण करना रहा है। दर्शन जीवन के प्रति उस निर्णय को कहते है जो मानव करता

है। अतः आदर्श निर्माण दर्शन का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होता है।

बोध प्रश्न

निर्देश–

क– निचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलान करें।

8. दर्शन के चार प्रमुख उद्देश्य लिखिये।

.....

.....

1.7 दार्शनिक दृष्टिकोण की विशेषताये

दर्शन– प्रकषति, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा उनके लक्ष्यों और उद्देश्यों के बारे में निरन्तर विचार करता है। ईश्वर, ब्रह्माण्ड और आत्मा के रहस्यों और इनके पारस्परिक सम्बाधों पर प्रकाश डालता है। जो व्यक्ति इनसे सम्बंधित प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है उसे हम दार्शनिक कहते हैं। रॉस ने लिखा है कि– वे सब लोग जो सत्यता एवं साहस से उपर्युक्त प्रश्नों का कोई उत्तर देने का प्रयत्न करते हैं और जिन उत्तरों में कुछ सुसंगति तथा तर्कबद्धता होती है उनका दृष्टिकोण दार्शनिक होता है– चाहे वे भौतिकवादी धर्मशास्त्री या अज्ञेयवादी हो।'' दार्शनिक दृष्टिकोण की अग्रलिखित विशेषताएं है–

- **विस्मय की भावना**– दार्शनिक वह व्यक्ति होता है, जो अपने चारों ओर की प्राकषतिक एवं सांसारिक व्यवस्था एवं घटनाओं को देखकर आश्चर्य प्रकट करता है और मूल कारण की खोज करने लगता है।
- **सन्देह**– दार्शनिक प्रत्येक बात की ठोस प्रमाणों की खोज कर उसमें फंसने का प्रयास करता है और प्रत्येक बात को सन्देहस्पद दृष्टि से देखता है।
- **मीमांसा**– दार्शनिक किसी भी बात को ज्यों का त्यों नहीं स्वीकार करता है, वरन् उसकी मीमांसा करके ही उसको मान्यता देता है।
- **चिन्तन**– मीमांसा के लिये चिन्तन की आवश्यकता होती है और दार्शनिक चिन्तनशील होता है।
- **तटस्थता**– दार्शनिक अन्धविश्वासी नहीं होता। वह तटस्थ भाव से किसी भी प्रश्न पर चिन्तन करता है। उसमें विचार स्वातंत्रय होता है। वह स्वयं अपने मत का निर्धारण करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलान करें।

9. दार्शनिक में क्या गुण होते है?

.....

10. दार्शनिक दृष्टिकोण की कोई तीन विशेषताओं को बताओं?

.....

1.8 सारांश

इस इकाई में दर्शन की अवधारणा, अर्थ, महत्व एवं विषय क्षेत्र को सपष्ट करने की चेष्टा की गयी है। दर्शन का मानव जीवन में उपयोगिता पर भी प्रकाश डाला गया है। इस इकाई में दर्शन के विषय क्षेत्र की भी चर्चा के साथ दर्शन के उद्देश्यों को भी प्रतिबिम्बित किया गया। इसके अन्त में दार्शनिक दृष्टिकोण की विशेषतायें भी बतायी गयी हैं। सारांश में यह कहा जा सकता है कि दर्शन हमारी भावनाओं तथा मनोदशाओं को प्रतिबिम्बित करता है और ये भावनायें हमारे कार्यों को नियंत्रित करती हैं। दर्शन हमारे जीवन और शिक्षा दोनों को मार्गदर्शन देता है। दर्शन मनुष्य के चिन्तन की उच्चतम सीमा है। इसमें सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड एवं मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप, सृष्टि–सृष्टा, आत्मा, परमात्मा, जीव जगत, ज्ञान–अज्ञान, ज्ञान प्राप्त करने के साधन और मनुष्य के करणीय और अकरणीय कर्मों का तार्किक विवेचन किया जाता है। जिसे देखा जाये अर्थात् सत्य के दर्शन किये जाये, वह दर्शन है। अन्तिम सत्य की खोज में हमें ब्राह्माण्ड के स्वरूप एवं इसके कर्ता तथा उपादान कारण पर बरबस विचार करना पड़ा। दार्शनिकों ने सबसे अधिक विचार किया मनुष्य के स्वयं के वास्तविक स्वरूप पर और उस सन्दर्भ में आत्मा परमात्मा, जीव जगत, ज्ञान–अज्ञान प्राप्त करने के साधन पर खूब विचार किया गया यही दर्शनशास्त्र का विषय सामग्री बना।

1.9 अभ्यास कार्य

1. दर्शन की भारतीय एवं पाश्चात्य सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुये महत्व एंव उद्देश्य पर प्रकाश डालिये।

1.10. चर्चा के बिन्दु

हमने भाग 1.4 में देखा है कि दर्शन की आवश्यकता मानव के सम्पूर्ण जीवन के सभी पक्षों को विकसित करने हेतु होती है। क्या हर मनुष्य दार्शनिक होता है, और मनुष्य दार्शनिक कब कहलाता है। अगर दार्शनिक दृष्टिकोण हो जाता है तो उसमें क्या–क्या गुण उत्पन्न हो जाते हैं। क्या दार्शनिक जीवन के उतार–चढ़ाव से विचलित होता है? अगर नहीं ? तो क्यों?

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. दो यूनानी शब्द फिलॉस एवं सोफिया।
2. अ– यथार्थ तत्व की अनुभूति।

   ब–वास्तविकता के स्वरूप का तार्किक विवेचन।
3. कामटे के अनुसार– दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।

   उपनिषद् के अनुसार– जिसे देखा जाये अर्थात् सत्य के दर्शन किये जाये वही दर्शन है।
4. अ. दर्शन मानव जीवन को उपयोगी बनाने हेतु।

   ब. अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय जीवन हेतु।

   स. राजनैतिक दृष्टिकोण एंव व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु।

   द. शैक्षिक विकास के लिये।
5. भारतीय विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण जीवन ही दर्शन का विषय क्षेत्र है।
6. सषष्टि की उत्पत्ति एवं विकास से सम्बंधित तथ्यों को अध्ययन।
7. दर्शन जीवन की आलोचना एवं जीवन की क्रियाओं की व्याख्या करता है। दर्शन मनुष्य का सम्बंध जगत से तथा जगत कीं विविध गतिविधियों का अध्ययन करता है।
8. अ. रहस्यात्मक आश्चर्य की सन्तुष्टि।

   ब. तात्विक रहस्यों पर चिन्तन की योग्यता देना।

   स. तर्क द्वारा संशय दूर करना।

   द. यथार्थ स्वरूप का ज्ञान देना।
9. विस्मय रखने वाला, संदेह करने वाला, चिन्तनशील और विचारों पर तटस्थ, साहसी।
10. अ. विस्मय की भावना

    ब. संदेह

    स. मीमांसा

1.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Curtis S.J. (1958) : *Introduction to the Philosophy of education* London University, Tutorial Press 1958

Henderson S.P. (1947) : *Introduction of Philosophy of educaton*, Chicago: University of Chicago.

Kilpatrik G.F. (1966) : *Philosophy of education,* New York, Macmillan and Co.

Brubacher J.S. (1982) : *Electic Philosophy of education*, Englwood Cliffs, Prentice Hall.

चतुर्वेदी सीताराम (1972) : *शिक्षा दर्शन, लखनऊ हिन्दी समिति, सूचना विभाग लखनऊ*

इकाई–2 शिक्षा की अवधारणा एवं कार्य

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शिक्षा का सम्प्रत्यय और परिभाषायें

2.4 शिक्षा का व्यापक एवं संकुचित अर्थ

2.5 शिक्षा की प्रक्रिया

2.6 शिक्षा के घटक

2.7 शिक्षा के रूप

2.8 प्रौढ़ शिक्षा–खुली शिक्षा, दूर शिक्षा एवं जीवन पर्यन्त शिक्षा

2.9 सामान्य, विशिष्ट शिक्षा और सकारात्मक एवं नकारात्मक शिक्षा

2.10 शिक्षा के अभिकरण

2.11 शिक्षा के कार्य–मानव जीवन के सन्दर्भ में

2.12 राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्य

2.13 सारांश

2.14 अभ्यास कार्य

2.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। शिक्षा समाज की आधारशिला है। समाज में जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था होगी उसी प्रकार के समाज का निर्माण होगा। शिक्षा की अवधारणा, स्वरूप एवं कार्य व्यापक है। शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थी के लिये यह अति आवश्यक है कि वह जाने कि शिक्षा का सम्प्रत्यय क्या है? इस इकाई में शिक्षा के संकुचित एवं व्यापक अर्थ को भी उजागर किया है। इसके साथ आपको शिक्षा की प्रक्रिया घटक एवं विविध रूप को भी समझाने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त शिक्षा के अभिकरण और विविध कार्यों को भी सरलतम तरीके से प्रस्तुत किया है। इस इकाई से शिक्षाशास्त्र विषय में विस्तष्त जानकारी के लिये नींव पड़ेगी क्योंकि शिक्षा की संकल्पना के ज्ञान के बिना आगे समझना कठिन ही नहीं दुरूह होगा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे–

- शिक्षा के अर्थ को विभिन्न दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार बता सकेंगे।
- शिक्षा की कुछ परिभाषायें बता सकेंगे।
- शिक्षा की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।
- शिक्षा के विविध अंग एवं रूप का विश्लेषण कर सकेंगे।
- शिक्षा के विविध रूपों के मध्य अन्तर कर सकेंगे।
- शिक्षा के अभिकरणों को वर्णित कर सकेंगे।
- मानव जीवन एवं राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्यों की सूची बनाकर क्रमबद्ध प्रस्तुत कर सकेंगे।

2.3 शिक्षा की अवधारणा

अमरकोश में शिक्षा शब्द का प्रयोग षड्–वेदागों में से एक वेदांग के लिये प्रयुक्त हुआ है। उस समय शिक्षाशास्त्र का प्रयोजन वेदों की ऋचाओं का शुद्ध उच्चारण सिखाना था।

शिक्षेत्यादि श्रुतेरंगमोंकारप्रणवौ समौ।

इतिहास पुरावृत्तमष्दात्ताद्यास्त्रयः स्वरा।।

कदाचित उस युग में वेदों का पठन–पाठन ही शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य रहा होगा, अतः 'शिक्षा' शब्द स्वरशास्त्र के लिये रूढ़ बन गया। यदि शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से देखा जाये तो शिक्षा शब्द का उद्गम संस्कृत की 'शिक्ष्' धातु से है। शिक्षा का अर्थ है "सीखना"। रंघुवंश में शिक्षा शब्द का दो अर्थ सीखना और सिखाना लिया गया है।

भारतीय भाषाओं में शिक्षा के पर्यायवाची के रूप में विद्या तथा ज्ञान शब्दों को भी प्रयोग किया जाता है। विद्या शब्द का उद्गम भी "विद्" धातु से हुआ है, जिसका अर्थ होता है "जानना" पता लगाना' अथवा 'सीखना'। बाद में 'विद्या' शब्द पाठ्यक्रम के रूप में रूढ़ हो गया है। आरम्भ में विद्या के अन्तर्गत चार विषयो का समावेश किया गया, कुछ समय पश्चात् मनु ने "आत्मविद्या" नामक पंचम विधा का एक प्रकार भी जोड़ा और शनैः शनैः विद्याओं की संख्या चौदह हो गयी, जिसमें वेदांग,वेद, धर्म, न्याय, मीमांसा आदि समावेशित हुये, परन्तु मूलतः विद्या शब्द का अर्थ ज्ञातव्य के रूप में प्रचलित रहा।

भारतीय दर्शन में ज्ञान शब्द वही अर्थ रखता है जो कि व्यापक अर्थों में "शिक्षा" का होता है। अमरकोश में ज्ञान अथवा विज्ञान शब्दों का अन्तर स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि ज्ञान का विषय मुक्ति है, जबकि विज्ञान का शिल्प और विविध शास्त्र। दूसरे शब्दों में ज्ञान वह है जो मनुष्य को उन्नत करता है एवं मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता

करती है। इस हस्तान्तरण को प्रत्येक समाज विद्यालयी शिक्षा में समाहित करता है। अगर शिक्षा गतिशील न होती तो हम विकास न कर पाते। पाश्चात्य जगत के प्रसिद्ध समाजशास्त्री ओटवे महोदय ने शिक्षा के स्वरूप एवं कार्य दोनों को समाहित करते हुये स्पष्ट कहा है कि– "शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया व्यष्टियों एवं सामाजिक समूहों के बीच की अन्तःक्रिया है जो व्यष्टियों के विकास के लिये कुछ निश्चित उद्देश्यों से की जाती है।" टी0 रेमण्ट महोदय ने शिक्षा को इस रूप में परिभाषित किया है– "शिक्षा विकास की प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य शैशवकाल से प्रौढ़काल तक विकास करता है और जिसके द्वारा वह धीरे–धीरे अपने को अनेक प्रकार से अपने प्राकृतिक सामाजिक और आध्यात्मिक पर्यावरण के अनुकूल बनाता है।"

4. **शिक्षा का आर्थिक सम्प्रत्यय** – अर्थशास्त्रियों के विचार समाज कें आर्थिक श्रोत और आर्थिक तन्त्र होते है। शिक्षा को वे एक उत्पादक क्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में शिक्षा उपभोग की वस्तुओं के साथ उत्पादन की भी कारक होती है। शोध ये परिणाम देते हैं कि शिक्षित मनुष्य की उत्पादन शक्ति और संगठन क्षमता अशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होती है। अर्थशास्त्री शिक्षा को एक निवेश के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी दर्षष्टि से– शिक्षा वह आर्थिक निवेश है जिसके द्वारा व्यक्ति में उत्पादन एंव संगठन के कौशलों का विकास किया जाता है और इस प्रकार व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उत्पादन क्षमता बढ़ाई जाती है और उनका आर्थिक विकास होता है।

5. **शिक्षा का मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्यय**– भारतीय योग मनोविज्ञान का विचार केन्द्र मनुष्य का बाह्य स्वरूप और उसका अन्तः करण दोनो होते हैं। बाह्य स्वरूप में वह उसकी कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का अध्ययन करता है और अन्तःकरण में मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और आत्मा का अध्ययन करता है। उसकी दर्षष्टि से– शिक्षा का अर्थ है मनुष्य की बाह्य इन्द्रियों और अन्तःकरण का प्रशिक्षण। शिक्षा के द्वारा सर्वप्रथम शरीर मस्तिष्क और चित्त एवं आत्मा का विकास होना चाहिए। इस विषय में जर्मन शिक्षाशास्त्री पेस्टालॉजी का मत है कि यह विकास स्वाभाविक, सम और प्रगतिशील होना चाहिये। उनके शब्दों में– "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक समरस और प्रगतिशील विकास है।

पेस्टालॉजी के शिष्य फ्रोबेल ने शिक्षा को इस रूप में परिभाषित किया है– "शिक्षा वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक अपनी आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करता हैं।"

6. **शिक्षा का वैज्ञानिक सम्प्रत्यय** – वैज्ञानिकों का विषय क्षेत्र सम्पूर्ण

ब्रह्माण्ड एवं समस्त क्रियायें है। वे किसी भी वस्तु अथवा क्रिया को वस्तुनिष्ठ ढंग से देखते हैं। शिक्षा को वे मनुष्य की शक्तियोंके बाह्य जीवनानुकूल विकास के साधन रूप में स्वीकार करते है। हरबर्ट स्पेन्सर के शब्दो में– "शिक्षा का अर्थ अन्तःशाक्तियों का बाह्य जीवन से समन्वय स्थापित करना है।"

शिक्षा की परिभाषायें

विभिन्न शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा को अपने–अपने दृष्टिकोण से देखा है।

- **सुकरात**–"शिक्षा का अर्थ है– प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में अदृश्य रूप में विद्यमान संसार के सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना।"
- **एडीसन**–"अब शिक्षा मानव मस्तिष्क को प्रभावित करती है तब वह उसके प्रत्येक गुण को पूर्णता को लाकर व्यक्त करती है।"
- **फ्राबेल**– "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियॉ बाहर प्रकट होती है।"
- **टी0पी0नन**–"शिक्षा व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है जिससे कि व्यक्ति अपनी पूर्ण योग्यता के अनुसार मानव जीवन को योगदान दे सके।"
- **पेस्टालॉजी**– "शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील विकास है।"
- **जेम्स**– "शिक्षा कार्य सम्बंधी अर्जित आदतों का संगठन है, जो व्यक्ति को उसके भौतिक और सामाजिक वातावरण में उचित स्थान देती है।"
- **हार्न**–"शिक्षा शारीरिक और मानसिक रूप से विज्ञान विकसित सचेत मानव का अपने मानसिक संवेगात्मक और संकल्पित वातावरण से उत्तम सामंजस्य स्थापित करना है।"
- **ब्राउन**–"शिक्षा चैतन्य रूप में एक नियंत्रित प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किये जाते हैं और व्यक्ति के द्वारा समूह में।"

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. 'शिक्षा' शब्द का उद्गम किस संस्कृत शब्द से हुआ ?

.....

2. शिक्षा के लिये प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द का क्या अर्थ निकलता है ?

.....

3. शिक्षा का दार्शनिक संप्रत्यय के अनुसार शिक्षा का कार्य क्या है?

.....

4. शिक्षा की कोई दो परिभाषा लिखिये।

.....

2.4 शिक्षा का व्यापक एवं संकुचित अर्थ

किसी समाज में किसी बच्चे की शिक्षा उसके परिवार, छोटे बड़े विभिन्न सामाजिक समूहों, सामुदायिक केन्द्रों और विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में चलने वाली शिक्षा को ही शिक्षा कहते हैं। इस प्रकार शिक्षा शब्द का प्रयोग दो रूपो में होता है– एक व्यापक रूप में और दूसरा संकुचित रूप में।

शिक्षा व्यापक अर्थ में– शिक्षा अपने व्यापक अर्थ में आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति अपने जन्म से मृत्यु तक जो कुछ सीखता और अनुभव करता है वह सब शिक्षा के व्यापक अर्थ के अन्तर्गत माना जाता है। शिक्षाशास्त्री जब शिक्षा की बात करते हैं तो वे शिक्षा के इसी रूप को अपनी विचार सीमा में रखते हैं। इस सम्बंध में हम विद्वानों के विचारों को नीचे अंकित कर रहे हैं। यथा–

लाज– "बच्चा अपने माता–पिता को, और छात्र अपने शिक्षकों को शिक्षित करता है। प्रत्येक बात, हम जो कहते, सोचते या करते हैं हमें किसी प्रकार भी दूसरे व्यक्तियों के द्वारा कहीं, सोची या की गयी बात से कम शिक्षित नहीं करती है। इस व्यापक अर्थ में जीवन शिक्षा है और शिक्षा जीवन है।"

टी0 रेमण्ट– "शिक्षा विकास का वह क्रम है, जिससे व्यक्ति अपने को धीरे–धीरे विभिन्न प्रकार से अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। जीवन ही वास्तव में शिक्षित करता है। व्यक्ति अपने व्यवसाय, पारिवारिक जीवन, मित्रता, विवाह, पितृत्व, मनोरंजन, यात्रा आदि के द्वारा शिक्षित किया जाता है।"

शिक्षा संकुचित अर्थ में– शिक्षा के सीमित अर्थ के अनुसार बालक को स्कूल में दी जाने वाली शिक्षा से है। दूसरे शब्दों में बालक को एक निश्चित योजना के अनुसार, एक निश्चित समय और निश्चित विधियों से निश्चित प्रकार का ज्ञान दिया जाता है। यह शिक्षा कुछ विशेष प्रभावों और विशेष विषयों तक ही सीमित रहती है। बालक इस शिक्षा को कुछ ही वर्षों तक प्राप्त कर सकता है इसको प्राप्त करने का मुख्य स्थान विद्यालय होता है। शिक्षा देने वाला शिक्षक कहलाता है। शिक्षा के संकुचित अर्थ की ओर अधिक स्पष्ट करने के लिये हम कुछ विद्वानों के विचारों को नीचे दे रहे हैं। यथा–

टी0रेमण्ट– "संकुचित अर्थ में शिक्षा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और कानून में किया जाता है। इस अर्थ में शिक्षा व्यक्ति, आत्म–विकास और वातावरण के सामान्य प्रभावों

को अपने में कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत यह केवल उन विशेष प्रभावों को अपने में स्थान देती है, समाज के अधिक आयु के व्यक्ति जानबूझकर और नियोजित रूप में अपने से छोटों पर डालते हैं भले ही ये प्रभाव परिवार, धर्म या राज्य द्वारा डाले जाये।"

बोध प्रश्न–

टिप्पणी

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थानों में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों में से अपने उत्तर मिलान कीजिए।

5. शिक्षा के व्यापक एवं संकुचित अर्थ के मध्य कोई चार अन्तर बताइये।

.....

.....

.....

.....

2.5 शिक्षा की प्रक्रिया

एडम द्वारा परिभाषित शिक्षा की प्रक्रिया को इस रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है शिक्षक शिक्षण प्रक्रिया शिक्षार्थी एडम के अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया दो ध्रुवों के बीच चलती है जिसमें शिक्षक का परिपक्व अनुभव, व्यक्तित्व, शिक्षार्थी के अपरिपक्व व्यक्तित्व में वांछित परिवर्तन लाने का कार्य करता है। शिक्षार्थी के विकास की यह प्रक्रिया न केवल संचेतन होती है, अपितु सविमर्श होती है अर्थात् शिक्षक के सम्मुख शिक्षार्थी के विकास की दिशायें स्पष्ट एवं पूर्व निर्धारित होती है। यह परिवर्तन दो माध यमों से होता है। प्रथम तो अध्यापक के व्यक्तित्व के प्रत्यक्ष प्रभाव एवं द्वितीय ज्ञान के विविध रूपों द्वारा। कठोपनिषद् में शिक्षण की प्रक्रिया जो इस रूप में व्याख्या की गयी है।

सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै।

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।

सहनाववतु– साथ–साथ हम एक दूसरे की रक्षा करे, अर्थात् शिक्षक शिक्षार्थी दोनों ही एक दूसरे के नैतिक विकास में सहायक होते हैं, तथा सम्भावित पतन से एक दूसरे की रक्षा की जाती है।

सहनौभुनक्तु– साथ–साथ उपभोग करें, अर्थात् ज्ञानार्जन से उपलब्ध सिद्धियों का उपभोग शिक्षक व छात्र मिल–जुलकर करें। अर्थात् ज्ञान की वृद्धि भी साथ–साथ होती है।

सहवीर्यं करवावहै– एक दूसरे के शौर्य की रक्षा करें।

तेजस्विनावधीतमस्तु– अध्ययन के फलस्वरूप तेजस्वी बनें।

सा विद्विषावहै– एक दूसरे की उन्नति से ईर्ष्या न करें।

उक्त व्याख्या यह स्पष्ट करती है कि शिक्षा की प्रक्रिया दो तरफा है शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थानों में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों में से अपने उत्तर मिलान कीजिए।

6. शिक्षा की प्रक्रिया किन दो ध्रवों के बीच चलती है?

.....

2.6 शिक्षा के अंग अथवा घटक

शिक्षा प्रक्रिया के मुख्यतः दो अंग होते हैं– एक सीखने वाला और दूसरा सिखाने वाला। नियोजित शिक्षा में सीखने वाले शिक्षार्थी कहे जाते हैं और सिखाने वाले शिक्षक। नियोजित शिक्षा के तीन अंग और होते हैं– पाठ्यचर्या, पर्यावरण और शिक्षण कला एंव तकनींकी।

शिक्षार्थी – इसका अर्थ है सीखने वाला। यह शिक्षा प्रक्रिया का सबसे पहला और मुख्यतम अंग होता है। शिक्षार्थी की अनुपस्थिति में शिक्षा की प्रक्रिया चलने का कोई प्रश्न ही नहीं। शिक्षा अपनी रूचि, रूझान और योग्यता के अनुसार ही सीखता है। सीखने की क्रिया शिक्षार्थी के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, उसकी अभिवृद्धि, विकास एवं परिपक्वता और सीखने की इच्छा, पूर्व अनुभव, नैतिक गुणों, चरित्र, बल, उत्साह, थकान एवं उसकी अध्ययनशीलता पर निर्भर करती है। अध्यापक सीखने में एक सहायक रूप में कार्य करता है।

शिक्षक– शिक्षा के व्यापक अर्थ में हम सब एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, सीखते हैं, इसलिये हम सभी शिक्षार्थी और सभी शिक्षक हैं। परन्तु संकुचित अर्थ में कुछ विशेष व्यक्ति, जो जान बूझकर दूसरों को प्रभावित करते हैं और उनके आचार–विचार में परिवर्तन करते हैं, शिक्षक कहे जाते हैं। शिक्षक के बिना नियोजित शिक्षा की कल्पना आज भी सम्भव नहीं है। शिक्षक बालक के विकास में पथ–प्रदर्शक का कार्य करता है।

पाठ्यचर्या– नियोजित शिक्षा के उद्देश्य निश्चित होते हैं। इन निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये बच्चों को ज्ञान की विभिन्न शाखाओं अर्थात् विषयों का ज्ञान कराया जाता है, और उन्हें विभिन्न प्रकार की क्रियायें करायी जाती हैं। सामान्यतः इन सबको पाठ्यचर्या कहा जाता है। वास्तविक अर्थ में पाठ्यचर्या और अधिक व्यापक होती है,

उनमें विषयों के ज्ञान एवं क्रियाओं के प्रशिक्षण के साथ –साथ वह पूर्ण सामाजिक पर्यावरण भी आता है, जिसके द्वारा यथा उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. "पाठ्यचर्या" शब्द से तुम क्या समझते हो?

.....

.....

.....

8. शिक्षार्थी और शिक्षक के मध्य क्या सम्बंध होता है?

.....

.....

.....

2.7 शिक्षा के रूप

समकालीन शिक्षा विचारक जिद्दू कृष्णमूर्ति के अनुसार–"शिक्षा बचपन से ही जीवन की समूची प्रक्रिया को समझने में सहायता करने की क्रिया है।" अर्थात् उनके अनुसार शिक्षा का अर्थ समग्र जीवन का विकास, सम्पूर्णता, जीवन का समूचापन। उनका मानना है कि–

"जीवन बड़ा अद्भुत है वह असीम और अगाध है, यह अनन्त रहस्यों को लिये हुये है। यह एक विशाल साम्राज्य है जहां हम मानव कर्म करते हैं और यदि हम अपने आपको केवल आजीविका के लिये तैयार करते हैं तो हम जीवन का पूरा लक्ष्य ही खो देते हैं। कुछ परीक्षायें उत्तीर्ण कर लेने और रसायनशास्त्र अथवा अन्य किसी विषय में प्रवीणता प्राप्त कर लेने की अपेक्षा जीवन को समझना कहीं ज्यादा कठिन है।"

शिक्षा के अनेक रूप माने जाते हैं हम उनका संक्षिप्त अध्ययन करेंगे–

(1) औपचारिक, निरौपचारिक एवं अनौपचारिक–

औपचारिक शिक्षा– व्यवस्था की दृष्टि से शिक्षा के तीन रूप हैं– औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक। वह शिक्षा जो विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में दी जाती है, औपचारिक शिक्षा कही जाती है। इसके उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियां सभी निश्चित होते हैं। यह योजनाबद्ध होती है और इसकी योजना बड़ी कठोर

होती है। इसमें सीखने वालों को विद्यालय समय सारिणी के अनुसार कार्य करना होता है। यह शिक्षा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह शिक्षा व्यय साध्य होती है। इसे कई स्तरों पर व्यवस्थित किया जाता है प्रत्येक स्तर पर परीक्षा और प्रमाण–पत्र की व्यवस्था की जाती है।

अनौपचारिक शिक्षा– वह शिक्षा जिसकी योजना नहीं बनायी जाती न ही निश्चित उद्देश्य होते हैं, न पाठ्यचर्या और न शिक्षण विधियॉ और जो आकस्मिक रूप से सदैव चलती रहती हैं उसे अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। इस प्रकार की शिक्षा मनुष्य के जीवन भर चलती रहती है। परिवार एवं समुदाय में रहकर हम जो सीखते हैं उसमे से वह सब जो समाज हमें सिखाना चाहता है अनौपचारिक शिक्षा की कोटि में आता है। मनौवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का तीन चौथाई निर्माण उसके पहले पॉच वर्षों में हो जाता है और इन वर्षों में शिक्षा प्रायः अनौपचारिक रूप से ही चलती है।

निरौपचारिक शिक्षा– वह शिक्षा जो न तो औपचारिक शिक्षा की भांति विद्यालयी शिक्षा की सीमा में बांधी जाती है और न अनौपचारिक शिक्षा की भांति आकस्मिक रूप से संचालित होती है, निरौपचारिक शिक्षा कहलाती है। इस शिक्षा का उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियां प्रायः निश्चित होते हैं, परन्तु औपचारिक शिक्षा की भांति कठोर नहीं होते। यह शिक्षा लचीली होती है। इसका उद्देश्य प्रायः सामान्य शिक्षा का प्रसार और सतत् शिक्षा की व्यवस्था करना होता है। इस पाठ्यचर्या को सीखने वालों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निश्चित की जाती है। समय व स्थान भी सीखने वालों की सुविधा को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता है। यह शिक्षा व्यक्ति की शिक्षा को निरन्तरता प्रदान करने का कार्य करती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9. औपचारिक शिक्षा किसे कहते हैं?

.....

.....

10 अनौपचारिक शिक्षा की दो विशेषता बताइये।

.....

.....

11 निरौपचारिक शिक्षा क्या है?

.....

.....

2.8 प्रौढ़ शिक्षा, खुली शिक्षा, दूर शिक्षा एवं जीवन पर्यन्त शिक्षा

निरौपचारिक शिक्षा के भी अनेक रूप हैं। जैसे प्रौढ़ शिक्षा, खुली शिक्षा, दूर शिक्षा और जीवन पर्यन्त शिक्षा अथवा सतत् शिक्षा।

प्रौढ़ शिक्षा – इस प्रकार की शिक्षा 15–35 वर्ष की आयु वर्ग के निरक्षर एवं अशिक्षित व्यक्तियों को शिक्षा प्रदान करने के लिये होती है। यह शिक्षा उन्हें जीवन जीने की कला, अधिकार एवं कर्तव्यों का ज्ञान, आर्थिक अभिक्षमता तथा भावी समाज के निर्माण हेतु योग्य बनाती है। यह शिक्षा देश मे सम्पूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायक है।

खुली शिक्षा– खुली शिक्षा, शिक्षा के क्षेत्र में एक नया आन्दोलन है। न आयु, न योग्यता, न समय और न स्थान न पाठ्यक्रम का बंधन और न ही कक्षा शिक्षण बंधन, इस शिक्षा की प्रमुख विशेषता है। यह शिक्षा सबका, सब जगह, सब समय उपलब्ध होने वाली शिक्षा है, इसलिये इसे खुली शिक्षा कहा गया है। खुली शिक्षा को बढ़ावा देने में इवान इलिच का बहुत बड़ा हाथ है। उनकी पुस्तक "दी स्कूलिंग सोसाइटी" में उन्होंने खुली शिक्षा के सकारात्मक पक्ष उजागर किये। यूरोप में इस शिक्षा को काफी सफलता मिली इसके पाठ्यक्रम अति विस्तृत और जीवनोपयोगी है। हमारे देश में खुली शिक्षा का शुभारम्भ सबसे पहले 1977 ई0 में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हुआ। यह शिक्षा पत्राचार, आकाशवाणी, टेपरिकार्डर, कैसेट्स, दूरदर्शन और वीडिया कैसेट्स के माध्यम से दी जाती है। इसके माध्यम से शिक्षण व्यवस्था करने में नवीनता व रोचकता रहती है।

दूर शिक्षा– दूर शिक्षा मूलतः किसी देश के दूर–दराज में रहने वाले उन व्यक्तियों को शिक्षा सुलभ कराने का एक विकल्प है जो औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। सीखने वालो को किसी भी शिक्षण संस्थान में नहीं जाना पड़ता वरन् अपने स्थान पर पत्राचार, आकाशवाणी, टेप रिकार्डर कैसेट या दूरदर्शन, विडियो कैसेट्स के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस शिक्षा का श्रीगणेश 1856 में बर्लिन(जर्मनी) में हुआ है। हमारे देश में दूर शिक्षा का श्रीगणेश सर्वप्रथम विश्वविद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में हुआ। यह उन लोगों के लिये सुअवसर उपलब्ध कराती है, जो किसी भी कारण शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते हैं। दूर शिक्षा की पाठ्य सामग्री एवं शिक्षण विधियों के क्षेत्र में निरन्तर शोध एवं परिवर्तन होते रहते हैं, ये सदैव अद्यतन एवं उपयोगी होते हैं।

जीवन पर्यन्त शिक्षा – जीवन पर्यन्त शिक्षा का अर्थ है व्यक्ति द्वारा बदली हुयी परिस्थितियों में कुशलतापूर्वक समायोजन करने के लिये जीवन पर्यन्त अद्यतन ज्ञान की प्राप्ति अथवा कौशल में प्रशिक्षण अथवा तकनीकी की जानकारी देना। काम के साथ शिक्षा ही इसकी विशेषता है। यह सतत् शिक्षा का विशिष्ट रूप है। प्राचीन काल में भी आजीवन शिक्षा सम्बंधी तथ्य या कि ज्ञान का भण्डार असीमित है अतः इसकी प्राप्ति हेतु अवकाशकाल में जीवन भर अध्ययन करना चाहिये। यह शिक्षा मनुष्य को हर समय अद्यतन ज्ञान एवं कौशल प्राप्त करने हेतु अवसर सुलभ कराती है, और उसे नयी

परिस्थितियों में समायोजन की कुशलता विकसित करती है। यह निरन्तर मनुष्य की समझ व कार्यकुशलता को विकसित करती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11. प्रौढ़ शिक्षा किस वर्ग के लोगों के लिये उपयोगी है?

.....

.....

12. दूर शिक्षा के क्या गुण है?

.....

.....

13. प्राचीन काल में जीवन पर्यन्त शिक्षा की क्या अवधारणा थी?

.....

.....

2.9 सामान्य एवं विशिष्ट शिक्षा

सामान्य शिक्षा– विषय क्षेत्र की दृष्टि शिक्षा के दो रूप होते है। सामान्य और विशिष्ट। वह शिक्षा जो किसी समाज के प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक होती है, वह सामान्य शिक्षा कहलाती है। इसके द्वारा समाज की सभ्यता एवं संस्कृति का हस्तान्तरण होता है। यह उदार शिक्षा कहलाती है। यह शिक्षा मनुष्य की परम आवश्यकता होती है। इस शिक्षा में मनुष्य के चरित्र एवं आचरण पर अधिक बल दिया जाता है। यह समाज के आर्थिक उत्थान में सहायक नहीं हो पाती है।

विशिष्ट शिक्षा– वह शिक्षा जो किसी समाज के व्यक्तियों को विशिष्ट उद्देश्य सामने रखकर दी जाती है विशिष्ट शिक्षा कहलाती है। इसके द्वारा मनुष्य को एक निश्चित कार्य– जैसे बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, कताई–बुनाई अध्यापन आदि के लिये तैयार किया जाता है। इसे व्यावसायिक शिक्षा भी कहते हैं। यह शिक्षा से मनुष्य की सृजनात्मक शक्तियों को विकसित किया जाता है। इस शिक्षा द्वारा ही कोई व्यक्ति समाज अथवा राष्ट्र में व्यावसायिक उन्नति करता है और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होता है।

दोनों ही प्रकार की शिक्षा का अपना–अपना महत्व है। मनुष्य को मनुष्य एवं

सामाजिक प्राणी बनाने के लिये सामान्य अर्थात् उदार शिक्षा की आवश्यकता होती है तो दूसरी ओर अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विशिष्ट एवं व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता होती है।

सकारात्मक एवं नकारात्मक शिक्षा

सकारात्मक शिक्षा– शिक्षण विधि के आधार पर शिक्षा को सकारात्मक एवं नकारात्मक दो रूपों में विभक्त किया जाता है। सकारात्मक शिक्षा में हम अपने नव आगन्तुक पीढ़ी को अपनी जाति के अनुभवों एवं आर्दशों से कम समय में ही परिचित कराने का प्रयास करते है। सत्य बोलना मानव धर्म निभाना, धर्म का पालन करना, झूठ न बोलना आदि सकारात्मक शिक्षा है, परन्तु इस प्रकार सीखा हुआ ज्ञान स्थायी नहीं होता है।

नकारात्मक शिक्षा– नकारात्मक शिक्षा वह है जिसमें बच्चों को स्वयं अनुभव करके तथ्यों की खोज करने एवं आर्दशों का निर्माण करने के अवसर दिये जाते हैं, अध्यापक तो केवल, इन तथ्यों की खोज एवं आर्दशों के निर्माण के लिये बच्चों को अवसर प्रदान करता है और उनका दिशा निर्देशन करता है। इस प्रकार सीखा हुआ ज्ञान स्थायी होता है।

करके सीखने एवं स्वानुभव द्वारा सीखने से ज्ञान स्थायी होता है, परन्तु इसके लिये शक्ति और परिपक्वता चाहिये। मनुष्य को अपने जाति द्वारा दिये गये पूर्व के अनुभवों से लाभ उठाना चाहिये। बच्चों को अनुभव एवं आर्दश सीधे बताकर उन्हें उनके जीवन के सम्बंधित कर दिये जाये और प्रयोग एवं तर्क द्वारा उनकी सत्यता स्पष्ट कर दिया जाना चाहिये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी--

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

15. विशिष्ट शिक्षा का क्या उपयोग है?

.....

.....

.....

16. नकारात्मक शिक्षा की क्या विशेषता होती है?

.....

.....

2.10 शिक्षा के साधन

साधन अंग्रेजी शब्द "एजेन्सी" का हिन्दी रूपान्तरण है– एजेन्सी का अर्थ है एजेन्ट का कार्य। एजेन्ट से हमारा अभिप्राय उस व्यक्ति या वस्तु से होता है, जो कोई कार्य करता है या प्रभाव डालता है। अतः शिक्षा के साधन– वे तत्व कारण स्थान या संस्थायें है जो बालक पर शैक्षिक प्रभाव डालते हैं। समाज ने शिक्षा के कार्यों को करने के लिये अनेक विशिष्ट संस्थाओं का विकास किया है। इन्हीं संस्थाओं को शिक्षा के साधन कहा जाता है। इनको इस प्रकार वर्गीकृत किया गया है।

1. औपचारिक और अनौपचारिक
2. निष्क्रिय एवं सक्रिय साधन

जॉन डी0वी0 ने शिक्षा के औपचारिक और अनौपचारिक साधनों को शिक्षा की साभिप्राय और आकस्मिक विधियां बताया है। हैण्डरसन ने लिखा है– जब बालक व्यक्तियों के कार्यों को देखता है उसका अनुकरण करता है और उनमें भाग लेता है तब वह अनौपचारिक रूप से शिक्षित होता है। जब उसको सचेत करके जान बूझकर पढ़ाया जाता है, तब वह औपचारिक रूप शिक्षा प्राप्त करता है।"

- **औपचारिक साधन–** शिक्षा के ये साधन योजनाबद्ध होते हैं। इनके नियम व योजना निश्चित होते हैं। इनमें प्रशिक्षित व्यक्ति देखभाल करते हैं। यह शिक्षा किताबी व विद्यालयीय शिक्षा भी कहलाती है। इनके अन्तर्गत स्कूल पुस्तकालय, चित्र भवन एवं पुस्तक आते हैं।
- **अनौपचारिक साधन–** शिक्षा के अनौपचारिक साधनों का विकास स्वाभाविक रूप से होता है। इसकी न तो योजना न ही नियम होते है। ये बालकों के आचरण का रूपान्तरण करते हैं पर यह प्रक्रिया अज्ञात अप्रत्यक्ष और अनौपचारिक होती है। इसके अन्तर्गत परिवार, धर्म, समाज, राज्य रेडियो, समाचार–पत्र आदि आते हैं।

औपचारिक शिक्षा बड़ी सरलता से तुच्छ निर्जीव अस्पष्ट और किताबी बन जाती है। औपचारिक शिक्षा जीवन के अनुभव से कोई सम्बंध न रखकर केवल विद्यालयों की विषय सामग्री बन जाती है। वही दूसरी ओर बालक अनौपचारिक ढंग से दूसरों के साथ रहकर शिक्षा प्राप्त करता है और साथ रहने की प्रक्रिया ही शिक्षा देने का कार्य करती है। यह प्रक्रिया अनुभव को विस्तष्त करती है।

सक्रिय व निष्क्रिय साधन–

सक्रिय साधन– सक्रिय साधन सामाजिक प्रक्रिया पर नियंत्रण रखने और उसको एक निश्चित दिशा देने का प्रयत्न करते हैं। इनमें शिक्षा देने वाले और शिक्षा प्राप्त करने वाले में प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया होती है, दोनों एक दूसरे पर क्रिया प्रतिक्रिया करते हैं। सक्रिय साधन के उदाहरण हैं– परिवार, समाज, राज्य, स्कूल, आदि।

निष्क्रिय साधन–निष्क्रिय साधन वे हैं जिनका प्रभाव एक तरफा होता है। इनकी प्रक्रिया एक ओर से होती है, क्योंकि ये एक ही को प्रभावित करते हैं। इस प्रक्रिया में एक पक्ष सक्रिय होता है और दूसरा निष्क्रिय। ये साधन दूसरों को तो प्रभावित करते हैं पर स्वयं दूसरों से प्रभावित नहीं होते हैं। निष्क्रिय साधनों के उदाहरण हैं– सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, प्रेस इत्यादि।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

17. औपचारिक और अनौपचारिक साधन के मध्य दो अन्तर बताइये?

.....

18. सक्रिय व निष्क्रिय साधन के मध्य क्या अन्तर है?

.....

2.11 शिक्षा के कार्य

शिक्षा गतिशील है। डेनियल बेक्स्टर के अनुसार– "शिक्षा का कार्य भावनाओं को अनुशासित, संवेगों को नियंत्रित, प्रेरणाओं को उत्तेजित, धार्मिक भावना को विकसित और नैतिकता को अभिवृद्धित करना है।" इसी प्रकार जॉन डी0वी0 के अनुसार– "शिक्षा का कार्य असहाय प्राणी के विकास में सहायता पहुँचाना है ताकि वह सुखी, नैतिक और कुशल मानव बन सके।" शिक्षा का कार्य देश और काल के अनुरूप बदलता रहता है, परन्तु उसके सामान्य कार्यों को हम दो भागों में विभक्त करके देख सकते हैं।

1. मानव जीवन में शिक्षा के कार्य
2. सामाजिक/राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्य

मानव जीवन में शिक्षा के कार्य :– उत्तम नागरिक उत्तम राज्य का आधार स्तम्भ होता है। और उत्तम नागरिक वह है जो कि अपने एवं राष्ट्र दोनों के लिये उपयोगी हो अर्थात् मानव जीवन में बदलाव लाने का कार्य शिक्षा का ही है। मानव जीवन में शिक्षा यह कार्य करती है–

1. **मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास मार्गान्तीकरण और उदात्तीकरण**– मनुष्य कुछ मूलभूत शक्तियों को लेकर पैदा होता है शिक्षा का कार्य इन शक्तियों का विकास करना है। मानव के शक्तियों का विकास व्यक्ति और समाज दोनों के हितों को ध्यान में रखकर किया जाता है। वह मूलभूत प्रवृत्यात्मक व्यवहार से सामाजिक व्यवहार की ओर उन्मुख होता है।

2. **संतुलित व्यक्तित्व का विकास–** शिक्षा का प्रमुख कार्य संतुलित व्यक्तित्व का विकास करना भी है। व्यक्तित्व के अन्तर्गत शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं संवेगात्मक पक्ष आते हैं। शिक्षा इन सभी पहलुओं का संतुलित विकास करती है।

3. **चरित्र निर्माण एवं नैतिक विकास–** शिक्षा का अति महत्वपूर्ण कार्य चरित्र का निर्माण एवं उसका नैतिक विकास करना है। शिक्षा के इस कार्य पर डॉ0 राधाकृष्णन ने बल देते हुये लिखा है– "चरित्र भाग्य है। चरित्र वह वस्तु है जिस पर राष्ट्र के भाग्य का निर्माण होता है। तुच्छ चरित्र वाले मनुष्य श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते हैं।"

सामाजिक भावना का समावेश – व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। समाज से दूर रहकर जीना असम्भव है, अतः यह आवश्यक है कि उसमें सामाजिक गुणों का विकास किया जाये। सामाजिक गुणों के विकास का कार्य भी शिक्षा का ही है। एच0 गार्डन के अनुसार– "शिक्षक को यह जानना आवश्यक है कि उसे सामाजिक प्रक्रिया में उन व्यक्तियों को समझना चाहिये जो इसे समझने में असमर्थ हैं।"

आवश्यकताओं की पूर्ति– समाज में शिक्षा का प्रमुख कार्य आवश्यकताओं की पूर्ति है, जीवधारी होने के कारण उसकी कुछ मूलभूत आवश्यकतायें है। रोटी, कपड़ा और मकान प्रमुख है इन सभी को प्राप्त करने योग्य बानाने का कार्य शिक्षा का है। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के इस कार्य की ओर इंगित करते हुये स्पष्ट लिखा है कि – "शिक्षा का कार्य यह पता लगाना है कि जीवन की समस्याओं को किस प्रकार से कम किया जाये और आधुनिक सभ्य समाज का ध्यान इस ओर लगा हुआ है।"

आत्मनिर्भरता की प्राप्ति– मानव जीवन में शिक्षा का एक प्रमुख कार्य व्यक्ति को आत्म निर्भर बनाना है। ऐसा व्यक्ति समाज के लिये भी सहायक होता है, जो अपना भार स्वयं उठा लेता है। भारत जैसे विकासशील समाज में व्यक्ति को आत्म निर्भर बनाने का कार्य शिक्षा का है। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा के इस कार्य को इंगित करते हुये लिखा था– "केवल पुस्तकीय ज्ञान से काम नहीं चलेगा। हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है जिससे कि व्यक्ति अपने स्वयं के पैरों पर खड़ा हो सकता है।"

व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति– हमारा देश बड़ी तेजी से विकास की ओर बढ़ रहा है। वैश्वीकरण के दौर में हमें ऐसे मानव संसाधन की आवश्यकता है जो कुशल हो और अर्थ व्यवस्था के विभिन्न पक्षों में अपना उत्तरदायित्व निभा सकें। ऐसे मानव संसाधन तैयार करने का कार्य शिक्षा का है। डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार– "प्रयोगात्मक विषयों में प्रशिक्षित व्यक्ति कर्षि और उद्योग के उत्पादन को बढ़ाने में सहायता देते है। ये विषय सरल एवं रोजगार पाने में सहायक होते है। शिक्षा का कार्य है– अर्थकारिका विद्या।"

जीवन के लिये तैयारी– विलमॉट ने स्पष्ट कहा है कि– "शिक्षा जीवन की तैयारी

है।" इससे स्पष्ट है कि शिक्षा का प्रमुख कार्य बच्चों को जीवन के लिये तैयार करना है। शिक्षा के इस कार्य पर विचार करते हुये स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट लिखा है कि– "क्या वह शिक्षा कहलाने के योग्य है जो सामान्य जन समूह को जीवन के संघर्ष के लियें अपने आपको तैयार करने में सहायता नही देती है और उनमें शेर सा साहस न उत्पन्न कर पाये।"

आध्यात्मिक विकास– भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध चिरकाल से आध्यात्मिकता रही है। शिक्षा का एक प्रमुख कार्य मानव को उस पूर्ण एवं वास्तविक शक्ति का आभास कराना है। श्री अरविन्द ने लिखा है– "शिक्षा का उद्देश्य – विकसित होने वाली आत्मा को सर्वोत्तम प्रकार से विकास करने में सहायता देना और श्रेष्ठ कार्य के लिये उसे पूर्ण बनाना है।"

वातावरण से अनुकूलन– वातावरण मनुष्य को स्वयं शिक्षित करता है और मनुष्य को प्रभावित करता है। वातावरण से अनुकूलन न कर सकने के कारण व्यक्ति का जीवन दुरूह हो जाता है। इस सम्बंध में टॉमसन ने लिखा है– "वातावरण शिक्षक है, और शिक्षा का कार्य–छात्र को उस वातावरण के अनुकूल बनाना, जिससे कि वह जीवित रह सके और अपनी मूल–प्रवर्षत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिये अधिक से अधिक सम्भव अवसर प्राप्त कर सके।"

वातवरण का रूप परिवर्तन– शिक्षा का एक प्रमुख कार्य व्यक्ति को वातावरण का रूप परिवर्तन करने या उसमें सुधार करने के योग्य बनाना है, यदि शिक्षा द्वारा व्यक्ति में अच्छी आदतों का निर्माण कर दिया जाये तो वह वातावरण में परिवर्तन कर सकता है। जॉन ड्यूवी ने लिखा है– "वातावरण से पूर्ण अनुकूलन करने का अर्थ है मृत्यु। आवश्यकता इस बात की है कि वातावरण पर नियंत्रण रखा जाये।"

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

19. मानव जीवन में शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालिये।

.....

.....

2.12 राष्ट्रीय जीवन में शिक्षा के कार्य

व्यक्तियों को श्रेष्ठता और हीनता– राष्ट्र के उत्थान और पतन का कारण होती है। मैकाइवर ने लिखा है– "राष्ट्र का गुण, उसकी सामाजिक इकाइयों का गुण है, अर्थात्

2. शिक्षा की व्याख्या संकुचित एवं उदार दृष्टिकोण से किस प्रकार की जा सकती है? मानव जीवन में शिक्षा का क्या महत्व है?

3. आपके मतानुसार भारत जैसे लोकतंत्र देश में शिक्षा के क्या कार्य होने चाहिये?

2.15 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. 'शिक्ष्' धातु।

2. प्रशिक्षण, संवर्द्धन और पथ–प्रदर्शन करने के कार्य।

3. शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करना है, जिसके कि वे योग्य है।

4. शंकराचार्य के अनुसार– सः विद्या या विमुक्तये।

   स्वामी विवेकानन्द के अनुसार– मनुष्य को अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।

5. संकुचित अर्थ में– निश्चित योजना, विधि, समय के अनुसार विद्यालय में दी जाने वाले शिक्षा।

   व्यापक अर्थ में– आजीवन चलने वाली, जन्म से मष्त्यु तक सम्पूर्ण अनुभव, बिना योजना और अपने आसपास के वातावरण से शिक्षा।

6. शिक्षक एवं शिक्षार्थी।

7. पाठ्यचर्या– विद्यालय में शिक्षण एवं शिक्षणेत्तर सभी प्रकार के क्रियाकलाप।

8. शिक्षक और शिक्षार्थी एक दूसरे से सीखते हैं। शिक्षक मार्गदर्शक के रूप में।

9. औपचारिक शिक्षा– निश्चित समय, योजना उद्देश्य एवं विधियों द्वारा शिक्षा संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा।

10. अनौपचारिक शिक्षा आकस्मिक रूप से सदैव चलती है, निरूद्देश्य बिना योजना और पाठ्यचर्या रहित होती है।

11. निरौपचारिक शिक्षा अनौपचारिक और औपचारिक शिक्षा से इतर होती है, यह लचीली होती है, और प्रायः सामान्य शिक्षा के प्रचार–प्रसार एवं सतत् शिक्षा की व्यवस्था है।

12. 15–35 वर्ष आयु वर्गके लोग।

13. दूर दराज के अधिगम कर्ताओं को अपने स्थान पर पत्राचार, आकाशवाणी एवं लिखित शिक्षण सामग्री द्वारा दिये जाने वाली बंधन रहित शिक्षा।

14. ज्ञान का भण्डार असीमित है व्यक्ति को जीवन भर इसे प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

15. विशेष उद्देश्यों को सामने रखकर समाज के निश्चित वर्ग को दी जाने वाली शिक्षा जिससे कि सामान्य जीवन आसानी से जी सके।

16. स्वयं अनुभव के द्वारा तथ्यों की खोज करने एवं आदर्शों का निर्माण करने का अवसर देती है।

17. **औपचारिक साधन**– शिक्षा के ये साधन योजनाबद्ध होते हैं। इनके नियम व योजना निश्चित होते हैं। **अनौपचारिक साधन**– शिक्षा के अनौपचारिक साधनों का विकास स्वाभाविक रूप से होता है। इसकी न तो योजना न ही नियम होते है।

18. **सक्रिय साधन**– शिक्षा देने व प्राप्तकर्ता दोनों प्रतिक्रिया कर प्रभावित होता है।

निष्क्रिय साधन– एक पक्ष सक्रिय दूसरा निष्क्रिय होता है।

19. शिक्षा का कार्य भावनाओं को अनुशासित, संवेगों को नियंत्रित, प्रेरणाओं को उत्तेजित, धार्मिक

भावना को विकसित और नैतिकता को अभिदृढ़ित करना है।

20. कुशल श्रमिकों की पूर्ति, व्यक्तिगत हित की सार्वजनिक हित से निम्नता, समाजिक कुशलता की उन्नति, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को यथोचित गति देना।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

ओ0एल0के0 (2005) : शिक्षा की दार्शनिक पष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

Brubacher J.S (1962) : *Modern Philosophies of Education*, New York, MC-Graw Hill book Company

Pandey R.S (1998) : *East-West thoughts on Education*, Vinod Pustak Mandir Agra

चतुर्वेदी एस0 आर0 (1970) : *शिक्षा दर्शन* – हिन्दी समिति सूचना विभाग, लखनऊ

Hocking W.B. (1959) : *Types of Philosophies*, New York, Charles Scribricis Sons

Adams J. : *Educational Theories*, London Ernest Berrs

इकाई–3 शिक्षा और दर्शन के बीच सम्बंध

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 दर्शन और शिक्षा

3.4 शिक्षा का दर्शन पर प्रभाव

3.5 शिक्षा के लिये दर्शन की उपयोगिता

3.6 सारांश

3.7 अभ्यास कार्य

3.8 बोध प्रश्न

3.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

पूर्व की दो इकाइयों में दर्शन और शिक्षा के स्वरूप पर विचार किया गया था। इस अध्याय में इन दोनों के सम्बंधों का वर्णन किया जायेगा। प्रत्येक कार्य का कुछ न कुछ सैद्धान्तिक आधार होता है, हम कार्य करने के पूर्व उसके प्रयोजन की जानकारी रखते हैं। निष्प्रयोजन कार्य का भी तर्क निकालकर कारण जानने का प्रयास करते हैं। हमारे कार्य का सैद्धान्तिक आधार अवश्य होता है। यही तथ्य शिक्षा प्रक्रिया पर भी लागू होती है। हम शैक्षिक क्रियाओं का सैद्धान्तिक आधार जानने के प्रयास में परम चिन्तन की सीमा में प्रवेश करते हैं। शिक्षा के लक्ष्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय प्रबंध एवं अनुशासन पर विचार करते – करते दार्शनिक विवेचन करने लगते हैं। हमारा दार्शनिक दृष्टिकोण शिक्षा के अंगों को प्रभावित करता रहता है। हमारा चिन्तन ही हमारा दर्शन है। हमारा दर्शन हमारी क्रियाओं में परिलक्षित होता है। शिक्षा के विभिन्न अंगों को दर्शन कैसे प्रभावित करता है, इसको इस इकाई में वर्णित किया गया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे–

- जीवन दर्शन एवं शिक्षा के मध्यम सम्बंध को समझ सकेंगे।
- दर्शन एवं शिक्षा के अनन्योन्याश्रितता का वर्ण कर सकेंगे।
- शिक्षा का दर्शन पर प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा के लिये दर्शन की उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे।

3.3 दर्शन और शिक्षा

दर्शन शब्द संस्कृत की दृश् धातु से बना है। "दृश्यते यथार्थतत्वमनेन" अथार्त

जिसके द्वारा यर्थाथ तत्व की अनुभूति ही वही दर्शन है। अंग्रेजी के शब्द फिलॉसफी का शाब्दिक अर्थ ज्ञान के प्रति अनुराग हेाता है। भारतीय व्याख्या में अधिक गहराई तक पैठ बनाती है। क्योंकि भारतीय अवधारणा के अनुसार सम्पूर्ण जीवन दर्शन का क्षेत्र है। दर्शन चिन्तन का विषय न होकर अनुभूति का विषय माना जाता है। दर्शन के द्वारा बौद्धिक तृप्ति का भी आभास न होकर समग्र व्यक्तित्व बदल जाता है। भारतीय दृष्टिकोण में दर्शन केवल आत्म–ज्ञान ही न होकर आत्मानुभूति है। दर्शन का कार्य निहित सत्य पर प्रकाश डालना है। इस निहित तथ्य को जान लेने पर व्यक्ति समस्या को हल कर लेता है और शिक्षा व्यक्ति को वह क्षमता प्रदान करती है जिसके द्वारा वह समस्या में निहित सत्य का ज्ञान प्राप्त करता है। अर्थात् बिना सम्यक शिक्षा के व्यक्ति दर्शन को नहीं समझ पाता । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का कोई न कोई दर्शन अवश्य होता है चाहे व्यक्ति उसके सम्बंध में संचेतन हो या न हो। जैसा कि अल्डूस हक्सले लिखते हैं– "सभी लोग अपने जीवन के अनुरूप अर्थात् जगत के सम्बंध में अपनी धारणा के अनुसार जीवन बिताते हैं। यह बात चिन्तन–शून्य लोगों के लिये भी सही है। तत्व–ज्ञान के बिना जीना असम्भव है। तत्व चिन्तन अथवा तत्व चिन्तन शून्यता के बीच हमारे पास कोई विकल्प नहीं है, अपितु विकल्प केवल सत्सत्व–चिन्तन और मुतत्व–चिन्तन के बीच है।"

दर्शन हमारी भावनाओं तथा मनोदशाओं की प्रतिबिम्बत करता है और ये भावनायें कार्यों को नियंत्रित करती हैं। शिक्षा का एक प्रमुख कार्य स्वस्थ मनोवष्त्तियों का निर्माण करना है, अतः दर्शन से शिक्षा को प्रयोग करनी पड़ती है।

मानव एक विचारशील प्राणी है, और सभी मनुष्य अपने जीवन दर्शन संसार के सम्बधं में अपने विचार के अनुसार रहते हैं, यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति सोच समझकर जीवन के सत्य खोजता है और उन्हीं के अनुसार अपना निर्वाह करता है। और जीवन निर्वाह के पीछे जो सत्य सिद्धान्त आदर्श एवं मूल्य जो कुछ भी होते हैं उस व्यक्ति के जीवन दर्शन कहलाते है। इस जीवन दर्शन पर व्यक्ति की शिक्षा का प्रभाव पड़ता है। इसी कारण विभिन्न जीवन दर्शन के अनुसार विभिन्न शैक्षिक एवं दार्शनिक मत हुये। महात्मा गांधी ने सत्य को अपनाया और अहिंसा के मार्ग पर चलकर अपना अंहिसात्मक आदर्शवादी दर्शन स्थापित किया। चार्वाक ने जीवन के मौज उठाने का दर्शन दिया और यही उनका भोगवादी दर्शन स्थापित हुआ, दूसरी भोगवादी जीवन के विपरीत कष्टमय जीवन बिताने को कहा गया और यौगिक दर्शन का उदय हुआ। ईश्वर के एक दो एवं बहुरूप मानने वालों ने एकतत्ववाद, द्वितत्ववाद और बहुतत्ववादी दर्शन स्थापित किये, और इनका प्रभाव शिक्षा पड़ा और फिर शिक्षा ने को प्रभावित किया।

शिक्षा के दो पक्ष होते हैं– प्रथम चिन्तन पक्ष तथा द्वितीय पक्ष व्यवहार पक्ष। अनुभव अथवा व्यवहार करते समय अनेक समस्यायें हमारे सम्मुख उपस्थित होती हैं। इन समस्याओं पर चिन्तन करके उनके आधार पर सिद्धान्तों का निरूपण करना दर्शन का कार्य होता हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षा भी जीवन एक पक्ष है, और जीवन के मौलिक

प्रश्नों से शिक्षा के प्रश्न अन्ततः जुड़े हुये है। जीवन के मौलिक प्रश्नों की व्याख्या दर्शन करता है। इस दृष्टि से भी दर्शन तथा शिक्षा एक दूसरे से जुड़े हुये हैं। हमें दर्शन के शिक्षा पर प्रभाव और दर्शन पर शिक्षा के प्रभाव को अलग–अलग से देखना चाहिये।

शैक्षिक सिद्धान्त : दार्शनिक विचारों के व्यावहारिक प्रयोग– प्रत्येक जीवन दर्शन एक निश्चित विश्वास पर निर्भर करता है। विश्वास जीवन को दिशा और स्थायित्व देता है। तब इन विश्वास को व्यक्ति अपने भावी पीढ़ी को देना चाहता है और इनका शैक्षिक महत्व बढ़ जाता है। डी0वी0 का कहना है कि "दर्शन अपने सामान्यतम रूपों में शिक्षा का सिद्धान्त है।" विश्व के महान दार्शनिकों महात्मा गांधी, प्लेटो, अरस्तु, डी0वी0 आदि को देखे तो उनके दार्शनिक विचार उनके शैक्षिक विचारों एवं सिद्धान्त के रूप में परिलक्षित हुये।

जीवन में शिक्षा के महत्व के स्थापन में दर्शन– दर्शन ही शिक्षा का जीवन में महत्व स्थापित करता है, शिक्षा मानव की नितान्त आवश्यकता है, उसकी समस्त क्रियायें और प्रतिक्रियायें अनवरत चलती रहती है। दर्शन जीवन के लक्ष्य, उसके रहस्य सत्यं शिवम् सुन्दरं को प्राप्त करने, उसको आदर्श रूप में आगे बढ़ने एवं आदर्श स्थापित करने में भी आधार रूप में कार्य करता है। जीवन का मूल्य और दर्शन शिक्षा में निहित होता है। जीवन के सत्य तथ्यों की खोज दर्शन है और उसे खोजने का और व्यवहार करने का क्षेत्र शिक्षा से प्राप्त होती है। दर्शन प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को एक रंग जीवन प्रवाह देता है एवं उसके नीजी विशेषताओं विचारों और क्रियाओं को प्रचारार्थ उत्तेजना तथा साधन भी प्रदान करता है, विचारों एवं कार्यों को देने और दूसरेां से लेने में शिक्षा की प्रक्रिया निहित होती है। इस प्रकार दर्शन एवं शिक्षा दोनों का अटूट सम्बंध जीवन से है।

एच0एन0हार्न के अनुसार– सभी तथ्य अन्त में एकसा अर्थ रखते हैं, पर उनके अर्थों की समानता में अपना स्वयं का अनोखापन है। जिस प्रकार सड़को पर लगे संकेत बोर्ड विभिन्न मार्गों से एक ही नगर को जाने का संकेत करते हैं, उसी प्रकार विविध तथ्य एक ही अर्थ कह ओर संकेत करते है। वस्तुतः जीवन की वास्तविकता ही दर्शन का ईश्वरीय नगर है और संकेत बोर्डों में "शिक्षा" भी एक है।

शिक्षा का आधार दर्शन है – खोज एवं प्रयोग वर्तमान शिक्षा पद्धति की नवीन प्रवषति है। खोज एवं प्रयोग वैज्ञानिक दषष्टिकोण के द्योतक है पर वैज्ञानिक प्रवषति एवं दर्शन में सामंजस्य है, क्योंकि आधारभूत प्रत्ययों को समझने में दर्शन आधार देता है। फिक्टे के अनुसार शिक्षा दैवी स्वेच्छा शक्ति की एक खोज है। रूसो ने स्वीकार किया कि, वास्तव में मानव को धरोहर का अध्ययन ही शिक्षा है और वास्तव में जब तक दार्शनिक दषष्टिकोण है तब तक प्रश्न निकलेंगे और इन प्रश्नों का हल करना ही तो शिक्षा है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा को दर्शन एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

दर्शन व शिक्षा–एक सिक्के के दो पहलू– शिक्षा एक सामान्य एवं व्यापक प्रक्रिया

है जो कि मानव को उसके पूरे जीवन भर अनुभवों से परिपूर्ण कर सम्पूर्ण बनाती हैं और यह अनुभव समय काल एवं परिस्थिति के अनुसार व्यापक एवं स्वच्छ होते जाते हैं, और इन अनुभवों के निर्माण का कार्य दर्शन करता है। इस प्रकार दर्शन और शिक्षा दोनों की घनिष्ठता का प्रतिबिम्ब उभरता है। रॉस ने इन शब्दों में कहा–"दर्शन और शिक्षा–एक सिक्के के दो पहलुओ के समान है। एक में दूसरा निहित है। दर्शन जीवन का विचारात्मक पक्ष है और शिक्षा क्रियात्मक पक्ष।"

एडमस ने लिखा है– "शिक्षा दर्शन का गतिशील पहलु है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पक्ष और जीवन के आदर्शों को प्राप्त करने का व्यावहारिक साधन है। दर्शन सैद्धान्तिक एवं विचारमूलक तथा शिक्षा व्यवहार है।"

दर्शन व शिक्षा का पारस्परिक निर्भरता– दर्शन जीवन का विचारात्मक पक्ष है और अमूर्त है, जबकि शिक्षा क्रियात्मक पक्ष है, और उसका मूर्त प्रत्यक्षीकरण हैं। दर्शन को शिक्षा प्रत्यक्ष करती है तो दर्शन शिक्षा को आधार देता है। दर्शनशास्त्री सर्वदा शिक्षा शास्त्री होते हैं क्योंकि दर्शन को वे शिक्षा व्यवस्था सम्बंधी दृष्टिकोण में मूर्त रूप दे देते हैं। यही कारण है कि विश्व के सभी महान शिक्षाशास्त्री– महान दार्शनिक हुये हैं। दर्शन और शिक्षा की पारस्परिक निर्भरता को अनेक विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। कुछ विद्वानों के दृष्टिकोण निम्नलिखित है।

फिक्टे– "दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा के उद्देश्य कभी भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो सकते है।"

जी0ई0पर्टिज– "अत्यन्त गम्भीर अर्थ में, यह कहना बिल्कुल उचित है कि जिस प्रकार शिक्षा दर्शन पर आधारित है उसी प्रकार दर्शन शिक्षा पर आधारित है।"

दर्शन शिक्षा की अमूल्य सहायक के रूप में – बटलर महोदय के अनुसार दर्शन विस्तार में जगत की यथार्थता को समझने का प्रयत्न करता है। शिक्षा के क्षेत्र में इसके प्रयोग से ही विविध क्षेत्रों में नित नवीनता आती है, और निर्देशन और विधिता प्राप्त होती है। वास्तव में दर्शन में सूक्ष्म चिन्तन के लिये प्रयत्न तो शिक्षा में व्यवहार के लिये प्रयत्न होता है। दर्शन में क्यों का उत्तर मिलता है, जो कि शैक्षिक प्रक्रिया से सम्बंधित होते हैं। इसके फलस्वरूप शिक्षक जगत यर्थाथता को जानकर अनुभवों के सहारे बालकों को विकास करता है और दार्शनिक निर्णयों को प्रत्यक्ष करता है।

दर्शन शिक्षा के पूरक के रूप में– शिक्षा जीवन के सर्वांगीण विकास में सहायक है और दर्शन परिपक्व चिन्तन एवं स्पष्ट विचार से सम्बंधित होता है। शिक्षा की प्रक्रिया को सार्थक एवं उपयोगी बनाने हेतु दर्शन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। अतः शिक्षा की प्रक्रिया एवं व्यवस्था निर्बाध गति से संचालित होने हेतु दर्शन का ही प्रश्रय लेती है। अगर हम देखें तो पायेंगे कि किसी भी समाज की शिक्षा प्रणाली किसी दर्शन के आधार को ही लेकर चलती है।

शिक्षा का विभिन्न अर्थों एवं कार्यों के रूपमें दर्शन के साथ सहसम्बंध– शिक्षा

मानव जीवन को आजीवन ज्ञान से पोषित करती है और उसे मानव महामानव बना देते हैं और इस कार्य में उसका साथ दर्शन देता है क्योंकि दर्शन ज्ञान की चरम सीमा है और मनुष्य के समक्ष क्या और क्यों को उपस्थित करता है। दर्शन का एक मात्र यथार्थ ज्ञान से सम्बंधित है जिसे आध्यात्मशास्त्र कहते हैं। इसका दूसरा भाग बताता है कि ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग क्या है। यह मात्र ज्ञान शास्त्र कहलाता है। इस प्रकार शिक्षा और दर्शन दोनों सह सम्बंधित है।

अगर शिक्षा को परिस्थिति का अनुकूलन मान लिया जाये तब इस अनुकूलन की प्रक्रिया में व्यक्ति का व्यवहार महत्वपूर्ण है।

दूसरे विचार के अनुसार **शिक्षा मानसिक अनुशासन है**। स्मषति, कल्पना, तर्क, निर्णय, चिन्तन आदि मानसिक शक्तियां होती है। मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण एवं विकास शिक्षा के द्वारा होता है। शिक्षा मानव की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास है और दर्शन भी मानसिक शक्तियों की उपज है और मन और आत्मा का विवेचन दर्शन करता है।

एक दूसरे कथन के अनुसार **शिक्षा को परिस्थितियों के साथ अनुकूलन** माना गया है। अनुंकूलन क्षमता में व्यवहार महत्वपूर्ण होता है। व्यवहार का सम्बंध नीतिशास्त्र से है जो कि द्रर्शन का एक भाग है। फ्राबेल आध्यात्मवाद में विश्वास करता था और उसकी शिक्षा योजना में यह परिलक्षित होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा अपने विविध अर्थों में भी दर्शन के साथ सह सम्बंध रखती है।

दर्शन शिक्षा का मार्गदर्शन– शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पहलु है शिक्षा उस रूप को प्रदर्शित करती है जो समाज का दर्शन होता है। दर्शन मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को अपना कार्य क्षेत्र मानता है। दर्शन इस ब्राह्मण्ड और उसमें मानव जीवन की व्याख्या करता है। इसमें मनुष्य जीवन के अन्तिम उद्देश्य और उस उद्देश्य की प्राप्ति के साधन मार्गों पर भी विचार किया जाता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति का मार्ग में शिक्षा सहायक होती है। शिक्षा आचार–विचार में परिवर्तन कर समाज के दर्शन की ओर मनुष्य को उन्मुख करती है। दर्शन नित नये खोज करने के लिये मस्तिष्क को तैयार करता है। शिक्षा परीक्षण, चिन्तन और मनन शक्तियों का विकास करती है इस ज्ञान और कौशल के आधार पर हम दर्शन का पुनर्निमाण करते है। नया दर्शन नई शिक्षा को जन्म देता है और नई शिक्षा से नया दर्शन का जन्म होता है और यह चक्र सदैव चलता रहता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. दर्शन का अध्ययन किन कारणों से होता है?

.....

2. दर्शन और शिक्षा का सम्बंध कैसा प्रतीत होता है?

.....

3. दर्शन व शिक्षा एक सिक्के के दो पहलू है। कैसे?

.....

3.4 शिक्षा का दर्शन पर प्रभाव–

पूर्व में हम दर्शन एंव शिक्षा की अनन्योश्रितता को विभिन्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझ चुके है। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं अन्तः अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि शिक्षा कैसे दर्शन को प्रभावित करती है।शिक्षा मानव विकास की आधारशिला है। उचित शिक्षा के अभाव में मनुष्य दर्शन जैसे विषयों का विकास नहीं कर सकता है। दर्शन के निर्माण, विकास एवं कार्यान्वयन हेतु उचित शिक्षा का आधार आवश्यक है।

शिक्षा दर्शन के आधार के रूप में– शिक्षा की जन्मजात अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है, अन्तर्निहित शक्तियों में शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विकास आता है। शिक्षा मानव को इस योग्य बनाती है वह निर्माण और विकास के लिये अवलोकन, चिन्तन और मनन कर सके। मानव मस्तिष्क अगर चैतन्य और विकसित न हो तो वह उसमें अन्तदृष्टि सृजित नहीं हो सकती है। शिक्षा के द्वारा हम भाषा सीखते हैं और विचारणा की शक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार से यह स्पष्ट होता है कि प्लेटो के अनुसार शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करना है, जिसके कि वे योग्य हैं और दर्शन इस पूर्ण मन और आत्मा के नींव पर खड़ा होता है।

शिक्षा दर्शन को जीवन देती है– दार्शनिक सष्टि–सष्टा, आत्मा–परमात्मा, जीव जड़ और जन्म तथा मष्त्यु आदि की व्याख्या करते हैं। उनके द्वारा निश्चित सिद्धान्तों से दर्शन विषय का विकास होता है। कोई भी समाज अपने पूर्वजों द्वारा निश्चित इन सिद्धान्तों को अपनी नयी पीढ़ी को शिक्षा प्रक्रिया के माध्यम से पहुँचाता है। शिक्षा इन सिद्धान्तों एवं विचारों को जीवित रखता है और दर्शन के ज्ञान को सुरक्षित रखती है।

शिक्षा दार्शनिक तत्वों को मूर्त रूप प्रदान करती है– दर्शन इस ब्राह्माण्ड और उसमें मानव जीवन की व्याख्या करता है, मनुष्य जीवन के उद्देश्य निश्चित करता है, और यह स्पष्ट करता है कि इन उद्देश्यों को प्राप्ति कैसे की जा सकती है। शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम दर्शन के निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं। शिक्षा दर्शन के तत्वों को मूर्त रूप प्रस्तुत करती है। जैसे कि प्राचीन कालीन में आदर्शवाद एवं अध

यात्मवाद भारतीय समाज का दर्शन था और यह शिक्षा व्यवस्था में परिलक्षित हुया। जीवन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति था और शिक्षा व्यवस्था को उस दर्शन एवं जीवन के अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उसी के अनुसार व्यवस्थित किया।

शिक्षा दर्शन हेतु नई समस्या को उत्पन्न करती है– शिक्षा के दो प्रधान पक्ष हैं – प्रथम चिन्तन पक्ष और द्वितीय व्यवहार पक्ष। अनुभव अथवा व्यवहार करते समय नेक समस्यायें हमारे सम्मुख उपस्थित होती हैं, इन समस्याओं पर चिन्तन करके उनके आधार पर सिद्धान्तों का निरूपण दर्शन करता है। शिक्षा दर्शन के लिये समय, काल, परिस्थिति के अनुसार अनेक अन सलुझे प्रश्न उत्पन्न करती है। शिक्षा सदैव, क्यों, किसको, कैसे, किसलिये, कौन जैसे प्रश्नों से जूझती रहती हैं, और दर्शनशास्त्रियों के समक्ष एक समस्या उत्पन्न करती है कि वे सब ज्वलंत समस्याओं पर चिन्तन, मनन और मंथन करें।

शिक्षा दर्शन को गतिशीलता देती है– शिक्षा हममें निरीक्षण और चिन्तन शक्ति का विकास करती है और जीवन की नयी–नयी समस्याओं के प्रति संवेदनशील बनाती है और दार्शनिक इन नई समस्याओं का दार्शनिक हल ढूंढते है। इस समस्या समाधान की क्रिया में नई दार्शनिक सिद्धान्तों का निर्माण होता है। यह सब ज्ञान दर्शन अथवा दर्शनशास्त्र विषय का अंग बनता जाता है। ज्ञान को अन्य शाखाओं की भांति दर्शन भी उन सिद्धान्तों का त्याग करता है जो असत्य एवं भ्रमपूर्ण प्रतीत होते हैं और उन सिद्धान्तों को अपनाता है जिसके आधार पर जीवन जगत की व्याख्या की जा सकती है। यही उसकी गतिशीलता है। शिक्षा दर्शन के विकास को आधार प्रदान करती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. शिक्षा दर्शन को जीवन देती है। कैसे?

.....

5. शिक्षा दर्शन को आधार देती है। समझाइये।

.....

6. शिक्षा दर्शन को कैसे गतिशील करती है?

.....

3.5 शिक्षा के लिये दर्शन की उपयोगिता

बटलर का कथन है– "दर्शन शिक्षा के प्रयोगों के लिये पथ–प्रदर्शक है।"

शिक्षा– अनुसंधान के क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णय के लिये निश्चित सामग्री को आध ार के रूप में प्रदान करती है। दर्शन शिक्षा का विचारात्मक पक्ष है और अति आवश्यक है, क्योंकि जीवन के लिये शिक्षा की आवश्यकता है। अतः दर्शन की उपयोगिता शिक्षा हेतु सर्वमान्य है। दर्शन द्वारा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय संगठन, अनुशासन आदि को एक निश्चित रूप प्रदान किया जाता है। किसी समाज की शिक्षा मुख्य रूप से उस समाज के दार्शनिक चिन्तन, उसकी संरचना, राजनीतिक व्यवस्था,आर्थिक व्वस्था और मनोवैज्ञानिक तथ्यों तथा वैज्ञानिक प्रगति पर आधारित होती है। रस्क ने स्पष्ट किया है कि– "शैक्षिक समस्या के प्रत्येक दष्टिकोण से शिक्षा के दार्शनिक आधार की मॉग उठती है। इसीलिये जीवन दर्शन और शिक्षा दर्शन से छुटकारा नहीं पाया जा सकता है।" दर्शन के तत्व मीमांसा से शिक्षा के उद्देश्य, ज्ञान मीमांसा से पाठ्यचर्या एवं शिक्षण विधियां और आचार मीमांसा से शिक्षक शिक्षार्थी सम्बंध ा कर्तव्य और अनुशासन का स्वरूप निश्चित होता है। शिक्षा के विभिन्न अंगो पर दर्शन की उपयोगिता हम बिन्दुवार समझेंगे–

- **दर्शन शिक्षा का सम्प्रत्यय**– दर्शन 'शिक्षा क्या है' इसे स्पष्ट करता है। व्यक्ति विशेष एवं समाज विशेष का दर्शन शिक्षा में उसके स्वरूप को परिलक्षित करने का प्रयास किया जाता है। दर्शन शिक्षा के सही सम्प्रत्यय का ज्ञान देता है, क्योंकि दर्शन शिक्षा के स्वरूध की व्याख्या करता है।
- **दर्शन और शिक्षा के उद्देश्य** – दर्शन से हमें जीवन के मूल्यों का ज्ञान कराता है और शिक्षा के द्वारा इन मूल्यों की प्राप्ति होती। जीवन के उद्देश्य भी दर्शन की सहायता के निश्चित होते और शिक्षा के उद्देश्य भी दर्शन की सहायता से निर्धारित होते हैं। दर्शन का सर्वप्रथम भाग तत्व मीमांसा होता है और सष्टि–सष्टा, आत्मा और परमात्मा जीव–जगत और जन्म–मष्यु आदि की व्याख्या होती है, और इसके आधार पर मानव जीवन के उद्देश्य निर्धारित होते हैं और शिक्षा के द्वारा इन उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ भारत में वैदिक युग में धर्म मोक्ष की प्राप्ति जीवन के उद्देश्य रखे गये और इसी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य भी निर्धारित हुये। जिससे कि शैक्षिक प्रयत्न सफल हो। शिक्षा के उद्देश्य दर्शन के द्वारा ही निर्धारित होते हैं इसकी पुष्टि नन महोदय के कथन से होती है–"शिक्षा की प्रत्येक योजना अन्ततोगत्वा व्यावहारिक दर्शन है और जीवन के प्रत्येक बिन्दु को अवश्य छूती है।" अस्तु शिक्षा का कोई भी उद्देश्य जो निश्चित निर्देशन दे वे इतने ठोस है कि वे जीवन के आदर्शों के साथ सहसम्बंध रखते हैं और चूँकि जीवन के आदर्श भिन्न होते हैं, इसीलिये इनकी भिन्नता शैक्षिक सिद्धान्त में परिलक्षित होती है।
- **दर्शन और शिक्षा का पाठ्यक्रम**– शिक्षा में पाठ्यक्रम शिक्षा प्रक्रिया की तीसरी धुरी है। पाठ्यक्रम शिक्षा के मार्ग का पथ प्रदर्शक भी है। शिक्षा को

व्यवहारिक केवल दार्शनिक ही बना सकता है और सही मार्ग दर्शन ही दिखाता है। दर्शन का दूसरा भाग ज्ञान मीमांसा होता है। इसमें ज्ञान के स्वरूप की व्याख्या की जाती है और इसके आधार पर शिक्षा की पाठ्यचर्या में उसी ज्ञान को समावेशित किया जाता है जिसे मानव के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के लिये आवश्यक समझते है। ऐतिहासिक तथ्य भी इस बात का समर्थन करते हैं कि शैक्षिक उद्देश्यों के आधार पर पाठ्यचर्या का निर्धारण किया जाता है। पाठ्यचर्या का वर्गीकरण दर्शन के अनुसार ही होता है। प्रयोगवादी विचारधारा के अनुसार बालकों को वर्तमान एवं भविष्य के लिये उपयोगी विषय पढ़ाये जायें। प्रकृतिवादी विचारधारा के अनुसार पाठ्यक्रम बालक की रूचि, प्रकृति, अध्ययन स्वास्थ्य रक्षा (भूगोल, इतिहास, भाषा, खेल–कूद) तथा अन्य क्रियायें पाठ्यक्रम में रखी जायें।

- **दर्शन और शिक्षण विधियॉ–** शिक्षा के प्रत्येक पक्ष एक दूसरे से जुड़े एवं पूरक हैं, और शिक्षा और दर्शन एक दूसरे के पूरक है। दर्शन की ज्ञान मीमांसा में मानव बुद्धि ज्ञान और ज्ञान को प्राप्त करने की विधियों की व्याख्या होती है। इसी के आधार पर दार्शनिक शिक्षण विधियों का विधान करते हैं। इससे स्पष्ट है कि शिक्षण विधियां दार्शनिक आधार लिये हुये होती है। इसी कारण किलपैट्रिक महोदय ने शिक्षा विधि का दर्शन खोज निकाला और प्रचलन किया। विधि से तात्पर्य उस क्रिया से है जिसके द्वारा छात्र तथा विषय सामग्री के बीच सम्बंध स्थापित और उपस्थित होता है और उचित दर्षष्टिकोण के विकास के साथ शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। दर्शन के आधार के बिना शिक्षा विधि अप्रभावकारी हो जाता है। दर्शन एक प्रकार से तर्क एवं आलोचना करता है जिसके फलस्वरूप शिक्षा विधियों के गुण दोष स्पष्ट हो जाते हैं। पद्धतियों की व्यावहारिकता, रचनात्मकता, विध्वंसात्मकता आदि गुण–दोष इस ढंग से पता करते हैं। उदाहरणार्थ प्रकर्षतिवादी रूसो नें निषेधात्मक शिक्षा की पद्धति निकाली। माण्टेसरी ने इन्द्रिय यथार्थवाद के आधार पर इन्द्रिय प्रशिक्षण पर बल दिया।
- **दर्शन और शिक्षक तथा शिक्षार्थी–** दर्शन के तत्वस्वरूप मीमांसा में मनुष्य के स्वरूप और आचार मीमांसा में करणीय तथा अकरणीय कर्मो की विषद व्याख्या की जाती है। दर्शन के इसी व्याख्या के अनुसार शिक्षक और शिक्षार्थी के गुण व्यक्तित्व एवं आचार विचार एवं कर्तव्यों का निर्धारण होता है। दर्शन की सहायता से शिक्षक का ज्ञान विस्तष्त एवं परिपक्व हो जाता है और तद्नुसार उच्च कोटि के शिक्षक सुलभ गुणों का विकास होते हैं। प्रत्येक दर्शन के अनुसार शिक्षक कै कुछ न कुछ चारित्रिक एवं व्यावसायिक मूल्य वांछनीय है। आदर्शवादी विचारधारा शिक्षक की उत्तम चरित्र एवं सर्वोपरि मानती हैं तो

प्रकर्षतिवादी शिक्षक का कार्य पर्दे के पीछे से मार्गदर्शन करना मानते हैं। अध्यापक का दार्शनिक प्रभाव बालक पर भी पड़ता है अतः शिक्षक का स्वमेंव एक दर्शन होना चाहिये।

- **शिक्षा संस्थान तथा दर्शन–** शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षा की संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार विद्यालय समुदाय, राष्ट्र आदि सभी शिक्षा की संस्थायें है, अतः इन सब के लिये भी दर्शन की उपयोगिता है। समाज अपनी शिक्षा, अपने अनुभव तथा अपनी परिस्थितियों के अनुसार स्वयं अपना दर्शन निश्चय करते हैं। इस निश्चित दर्शन का प्रभाव शिक्षा पर पड़ता है। दर्शन शिक्षा संस्थानों की स्थापना एवं संचालन में सहयोग करता है क्योंकि यह अमूर्त विचारधारा मूर्त उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयास करवाता है। हमारे देश में शान्तिनिकेतन एवं गुरूकुल आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद के विचारधारा से ओतप्रोत है तो बहुद्देशीय विद्यालय भौतिक वर्ष विचारधारा से प्रेरित है।
- **दर्शन और अनुशासन–** दर्शन इस प्रश्न का उत्तर देता है कि दण्ड क्यों और कैसे? दर्शन का तीसरा प्रमुख भाग होता है– आचार मीमांसा। इसमें मनुष्य को क्या कर्म करना चाहिये क्या नहीं इसकी विशद व्याख्या होती है। इसके आधार पर ही शिक्षा व्यवस्था में अनुशासन का सम्प्रत्यय निश्चित किया जाता है। दर्शन नैतिकता को विकसित करता है और नैतिकता अनुशासन को। मैकनन ने अनुशासन को स्थापित करने हेतु तीन प्रकारों में विभाजित किया है जिसमें दमन, प्रभाव और मुक्ति को आधार बनाया है। इन तीनों प्रकार के अनुशासन की जॉच दर्शन करता है और समय काल परिस्थिति के अनुसार कौन सर्वोत्तम होगा यह स्पष्ट करता है।
- **दर्शन और शिक्षा की अन्य समस्यायें–** दर्शन शिक्षा की अन्य समस्यायें जैसे जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा और राज्य हस्तक्षेप आदि पर भी विचार करता है। इसके अतिरिक्त दार्शनिक सिद्धान्तों की उपयोगिता सर्वदा रही है जैसे कि शिक्षा के समान अवसर अगर राष्ट्रीय लक्ष्य है तो क्यों? समान अवसर क्यों दिये जाये और कैसे दिये जायें। इसके लिये दार्शनिक विचार आधार प्रदान करते हैं कि हम इन समस्याओं को कैसे सुलझाय, इसका मार्ग दिखाता हैं।
- **दर्शन एवं शिक्षा में मूल्यांकन–** शिक्षा में मूल्यांकन एक महत्वपूण अंग है और मूल्यांकन पर दर्शन की छाप प्रतीत होता है। इसे आरम्भ करने का श्रेय मेक–काल को है जिन्होनें अपनी रचना मेजरमेन्ट में प्रथम अध्याय को "मापन का दर्शन" नाम दिया है। इसके पश्चात् लिंडक्विस्ट ने भी घोषित किया है कि यदि शैक्षिक मापन को अधिक महत्वपूर्ण कार्य करना है तो परीक्षकों को केवल तकनीकी नहीं वरन् दार्शनिक भी होना चाहिये क्योंकि तभी उनका कार्य प्रभावकारी होगा। मापन की क्रिया सौद्देश्यपूर्ण हो इसके लिये दर्शन की आवश्यकता होती है।

निष्कर्षतः शिक्षा और दर्शन का घनिष्ठ और अटूट सम्बंध आज से नहीं परन्तु युग युगान्तर से है दर्शन एक प्रकार से शिक्षा का मूलाधार है। बटलर महोदय ने स्पष्ट किया है कि दर्शन एक प्रकार से शिक्षा का मूलाधार कहा जा सकता है। शिक्षा अन्वेषण के एक क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णयों के लिये निश्चित प्रदत्तों को आधार स्वरूप देती है और दर्शन पथ–प्रदर्शन एवं निर्णय देता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7. शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण में दर्शन की भूमिका क्या है?

.....

8. दर्शन के बिना शिक्षण की कला को पूर्णता प्राप्त करना असम्भव है, क्यों?

.....

3.6 सारांश

इस सम्पूर्ण इकाई में आपने दर्शन एंव शिक्षा के सम्बंध के विषय में विस्तार से अध्ययन किया है। इस अध्ययन से हमें यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि दर्शन शिक्षा के लिये परमावश्यक है क्योंकि जीवन के लिये दर्शन की आवश्यकता हैं दर्शन शिक्षा एवं शिक्षा दर्शन का प्रमुख आधार है। दर्शन शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय संगठन, अनुशासन एवं मूल्यांकन प्रक्रिया को एक निश्चित प्रभावी रूप प्रदान करता है। अतः शिक्षा योजना को सफल बनाने के लिये दर्शन परमावश्यक है। शैक्षिक दृष्टिकोण से दर्शन अध्ययन परमावश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा शिक्षा का पथ प्रदर्शन किया जाता है और शिक्षा के व्यवहार क्षेत्र में दर्शन निर्णय देता है।

3.7 अभ्यास कार्य

1 शिक्षा और दर्शन का पारस्परिक सम्बंध किस प्रकार का होता है? विस्तार से बताइये।

2 शिक्षा में दर्शन की क्या उपयोगिता है? स्पष्ट कीजिये।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. सम्यक ज्ञान प्राप्ति के लिये–

2. दर्शन और शिक्षा एक–दूसरे के पूरक हैं, एक–दूसरे के बिना अपूर्ण दर्शन विचारात्मक पक्ष और शिक्षा क्रियात्मक पक्ष।

3. शिक्षा दर्शन का गतिशील पहलू है। यह दार्शनिक विश्वास का सक्रिय पक्ष और जीवन के आदर्शों का प्राप्त करने का व्यावहारिक साधन है।

4. समाज अपने संस्कृति एवं पूर्वजों द्वारा निश्चित इन सिद्धान्तों को अपनी नयी पीढ़ी को शिक्षा प्रक्रिया के माध्यम से पहुँचाता है। शिक्षा दार्शनिक सिद्धान्तों एवं विचारों को सुरक्षित रख जीवन देती है।

5. शिक्षा मानव के मानसिक एवं शारीरिक विकास कर इस योग्य बनाती है कि विचारणा शक्ति का उत्थान हो जाये और दर्शन को आधार देती है।

6. शिक्षा दर्शन को नित नयी समस्यायें एवं चिन्तन योग्य आयाम प्रदान कर सदैव सक्रिय रखती है।

7. दर्शन के द्वारा जीवन के मूल्यों का ज्ञान और शिक्षा के द्वारा इन मूल्यों की प्राप्ति होती है। शिक्षा का परम उद्देश्य व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास है अतः दर्शन शिक्षा को उद्देश्य निर्धारण करने में सहायता देता है जिससे कि शैक्षिक प्रयत्न सोद्देश्य हों।

8. शैक्षिक उद्देश्य और विधियां दार्शनिक सिद्धान्तों के सहसम्बंधी हैं, शिक्षा की विधियां दार्शनिक आधार लिये रहती है। दर्शन का आधार न होने से शिक्षा विधि अप्रभावकारी हो जाती है क्योंकि ऐसी स्थिति में विद्यार्थी आदर्शों तथा पठित सामग्री के बीच सम्बंध स्थापित नहीं कर पाता है।

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रस्क आर0आर0(1972) : *शिक्षा के दार्शनिक आधार,* जयपुर हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

Saiyidain K.G.(1966) : *The Humanist Tradition in Indian Educational Thought,* Bombay: Asia Publicity House.

Brubacher J.S.(1962) : *Modern Philosophies of Education,* New Yark, Mc-Graw Hill Book Company

चतुर्वेदी एस0आर0(1970) : *शिक्षा दर्शन,* हिन्दी समिति सूचना विभाग,लखनऊ

RadhaKrishnan R.(1927): *Indian Philosophy,* Volume I & II London George Allen & Unwin Ltd.

Adme J : *Educational Theories,* London Ernest Benn.

ओड एल0के0(2005) : *शिक्षा की दार्शनिक पष्ठभूमि,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

इकाई– 4 शिक्षा दर्शन का स्वरूप एवं आवश्यकता

संरचना–

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शिक्षा दर्शन का सम्प्रत्यय

4.4 शिक्षा दर्शन का स्वरूप

4.5 शिक्षा दर्शन की व्याप्ति

4.6 शिक्षा दर्शन की आवश्यकता

4.7 सारांश

4.8 अभ्यास कार्य

4.9 बोध प्रश्न

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

पूर्व इकाईयों में आपने शिक्षा और दर्शन के सम्प्रत्यय स्वरूप तथा दोनों के मध्य सम्बंध के विषय में अध्ययन किया है। इस इकाई में हम शिक्षा दर्शन के विषय में अध्ययन करेंगे। शिक्षा और दर्शन का सम्बंध एक पक्षीय न होकर दोनों ओर से है। दर्शन शिक्षा के लिये क्या करता है। इस इकाई में हम यह अध्ययन करेंगे कि शिक्षा दर्शन क्या है, इसका विषय क्षेत्र एवं स्वरूप क्या है तथा यह शिक्षा के लिये क्या भूमिका निभाता है। दर्शन के विभिन्न अंग शिक्षा के विभिन्न पक्षों से गुंथे हुए हैं। यह सत्य है कि दर्शन शिक्षा के विभिन्न पक्षों को प्रभावित करता है और इस प्रकार जो समाहोरात्मक स्वरूप उभरता है, उसी को शिक्षा दर्शन की संज्ञा दी जाती है, जो न केवल शैक्षिक दर्शन है न शिक्षा का दर्शन है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- शिक्षा दर्शन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा दर्शन के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे।
- शिक्षा दर्शन का विषय क्षेत्र बना सकेंगे।
- शिक्षा दर्शन की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।

4.3 शिक्षा दर्शन

शिक्षा का कुछ अंश विज्ञान है और कुछ दर्शन। दुर्भाग्यवश इसका वह पक्ष अभी तक उपेक्षित है जो दर्शन की सीमा में आता है इसीलिये शिक्षा के दार्शनिक

आधार का विवेचन महत्वपूर्ण है। इस आधार के विश्लेषण से शिक्षा में स्पष्टता आती है और शैक्षिक क्रियायें सोद्देश्य हो जाती है। किसी भी देश की शिक्षा उस समाज के दार्शनिक चिन्तन तथा उसकी संरचना, राजनैतिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, और वैज्ञानिक प्रगति पर आधारित होती है। अब किसी समाज की शिक्षा पर दर्शन का सबसे अधिक प्रभाव हेाता है अतः दर्शन की महत्ता को ठुकराया नहीं जा सकता है।

शैक्षिक दर्शन एवं शिक्षा का दर्शन– शिक्षा दर्शन की व्याख्या करने में दो शब्द सम्मुचयों का प्रयोग होता है। शैक्षिक दर्शन के अनुसार दर्शन जीवन के विभिन्न पक्षों को स्पर्श करता है और जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष शिक्षा हे जो कि दर्शन से प्रभावित होती है जैसा कि हम पढ़ चुके हैं इस मान्यता के अनुसार दार्शनिक सिद्धान्तों एवं मान्यताओं का शिक्षा के लिये जो अभिप्रेतार्थ निकलता है उसका विवेचन किया जाता है। अर्थात् शैक्षिक दर्शन, दर्शन शास्त्र का अनुप्रयुक्त शाखा है। इसके अनुसार हम यह मान सकते हैं कि व्याख्याता के मुख्य बिन्दु दर्शन ही होता है तथा विचारार्थ बिन्दु शिक्षा के विभिन्न अंग जैसे पाठ्यक्रम, अनुशासन, छात्र आदि होते हैं। दूसरा दृष्टिकोण जान डी0वी0 का है उनके अनुसार– "शिक्षा का अपना स्वतंत्र दर्शन हेाता है जिसे हम शिक्षा का दर्शन शास्त्र कहते हैं।" वस्तुतः शिक्षा के दर्शन शास्त्र का उद्भव शिक्षा की ज्वलंत समस्याओं से हुआ। शिक्षा से उद्भूत समस्याओं पर विचार करना दर्शनशास्त्र का काम है न कि दार्शनिक सिद्धान्तों का शिक्षा के लिये अभिप्रेतार्थ निकालना । डी0वी0 के अनुसार– छात्र संकल्पना शिक्षा के अवसरों की समानता, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम आदि सभी शिक्षा के ऐसे प्रश्न है जिन पर विभिन्न मत है। वास्तव में ये मत एवं तर्क ही शिक्षा दर्शन का क्षेत्र हैं।

शिक्षा दर्शन का अर्थ एवं सम्प्रत्यय– साधारण अर्थ में शिक्षा पद्धति दर्शन की ही एक शाखा होती है जिसमें दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रयोग शिक्षा के सम्बंध में होता है। शिक्षा दर्शन शिक्षा से सम्बंधित विचारों पर विचार करता है और उनके समाधान के लिये दार्शनिक अर्थात् चिन्तनपूर्ण एवं निर्णयात्मक दृष्टि से प्रयत्न करता है। कनिंघम महोदय ने शिक्षा दर्शन एवं दर्शन को साथ–साथ रखकर विचार प्रकट किया है। उनका कथन है कि शुद्ध दर्शन की परिभाषा से हम शिक्षा दर्शन की परिभाषा को समझ सकते हैं। प्रथम दर्शन सभी वस्तुओं का विज्ञान है। इसीलिये शिक्षा दर्शन शिक्षा की समस्याओं को मुख्य बिन्दुओं से देखता है।

कुछ विचारकों के अनुसार– दर्शन ने मौलिक सिद्धान्तों की खोज होती है और उन सिद्धान्तों को शिक्षा में व्यवहष्त किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा दर्शन में दार्शनिक सिद्धान्तों का शिक्षा के क्षेत्र में व्यवहार किस प्रकार होता है और होना चाहिये इसे बताया जाता है।

कुछ विचारक शिक्षा को ही मुख्य मानते हैं– और उनके अनुसार दर्शन तो

शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त है। कुछ विचारक यह मानते हैं कि "दर्शन सभी वस्तुओं को उनके अन्तिम तर्कों एवं कारणों के जरिये जानने का विज्ञान है।" हेन्डरसन महोदय के शब्दों में– "शिक्षा दर्शन, शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन में दर्शन का प्रयोग है।"

इस परिभाषा में पूर्णता नहीं है। हमारी दृष्टि में शिक्षा दर्शन को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

"शिक्षा दर्शन शिक्षाशास्त्र की वह शाखा है जिसमें शिक्षा के सम्प्रत्ययों, उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों एवं शिक्षा सम्बंधी अन्य समस्याओं के संदर्भ में विभिन्न दार्शनिकों एवं दार्शनिक सम्प्रदायों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है।"

अतः शिक्षा दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में गहनतम समस्याओं का सम्पूर्ण रूप से अध्ययन करता है और विज्ञान के लिये उन समस्याओं को छोड़ देता है, जो तात्कालिक है और वैज्ञानिक विधि से सर्वोत्तम ढंग से अध्ययन किया जा सकता है। शिक्षा की प्रक्रिया के लिये आवश्यक संकेतों एवं साधनों को शिक्षा दर्शन एक निश्चित रूप भी प्रदान करता है और शिक्षा प्रक्रिया के अंगो को निर्धारित भी करता है।

बोध प्रश्न

निर्देश–

क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. शैक्षिक दर्शन क्या है?

.....

2. शिक्षा दर्शन का क्या अर्थ है?

.....

4.4 शिक्षा दर्शन का स्वरूप

शिक्षा दर्शन को मुख्यतः शिक्षा एवं दर्शन दोनों के योग के रूप में देखा जाता है। शिक्षा दर्शन शिक्षा की एक शाखा के रूप में है। इसमें शिक्षा प्रमुख है और दर्शन तो शिक्षा का सामान्य सिद्धान्त ही है। इसमें दर्शन का वास्तविक कार्य शिक्षा की समस्याओं को ढूढना है। इस युक्ति से तो सम्पूर्ण दर्शन ही शिक्षा दर्शन है। जॉन डी0वी0 ने स्पष्ट किया है कि "शिक्षा दर्शन में तो तत्कालीन सामाजिक जीवन की कठिनाइयों के प्रति उचित दृष्टिकोण बनाने की समस्या का स्पष्टीकरण होता है अतः शिक्षा दर्शन को बाह्य सिद्धान्तों का व्यवहृत रूप नहीं समझना चाहिये। उनके अनुसार दर्शन स्वयं ही शिक्षा का सिद्धान्तीकरण है।" शिक्षा दर्शन कुछ विचारकों के अनुसार

एक नया क्षेत्र है जिमसें शैक्षिक समस्याओं पर दाशर्निक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है।

शिक्षा दर्शन के स्वरूप पर चार दृष्टिकोण प्रचलित है–

- दर्शन के अंग स्वरूप
- शिक्षाशास्त्र के अंग स्वरूप
- शिक्षा में दर्शन के प्रयोग स्वरूप
- स्वयमेव एक स्वतंत्र विषय स्वरूप

दर्शन के अंग स्वरूप– शिक्षा दर्शन वास्तव में दर्शन होता है, क्योंकि उसमें भी अन्तिम सत्यों, मूल्यों, आदर्शों, आत्मा–परमात्मा, जीव, मनुष्य, संसार, प्रकृति आदि पर चिन्तन एवं उसके स्वरूप को जानने का प्रयत्न होता है, अतएव यह दर्शन एक अभिन्न अंग ही होता है और प्रारम्भिक शिक्षा दार्शनिक दर्शन पर ही बल देते रहे। कुछ विचारकों ने शिक्षा दर्शन को अंग स्वरूप ही माना है।

शिक्षाशास्त्र के अंग स्वरूप– शिक्षाशास्त्र के विकास करने वाले शिक्षाशास्त्रियों ने इस दष्टिकोण को अपनाया है। शिक्षा शास्त्र के चार आधार स्तम्भ है जिसमें एक शिक्षा दर्शन भी है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षा दर्शन शिक्षा शास्त्र का अभिन्न अंग बना है।

स्वमेव एक स्वतंत्र विषय स्वरूप– आधुनिक शिक्षा दर्शन ने एक स्वतंत्र विषय का रूप ले लिया। इसमें शिक्षा को दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन कियाजाता है, अर्थात् शिक्षा को अन्तिम परिभाषा, सर्वमान्य उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं चिन्तन आधारित शिक्षा विधियों का निर्माण होता है, यही दर्शन शिक्षा के नाम से पुकारा जाता है जो केवल शिक्षाशास्त्र नहीं केवल दर्शनशास्त्र नहीं परन्तु नव–निर्मित विषय शिक्षा दर्शन हो जाता है। इस विचार से दर्शन के विभिन्न अंग (ज्ञान दर्शन, मूल्य दर्शन, नीति दर्शन, सौन्दर्य दर्शन आदि) के समान ही शिक्षा दर्शन के भी विभिन्न अंग निश्चित किये जाते हैं। इसमें अंतिम, शाश्वत एवं सूक्ष्म, ज्ञान, तर्क, नैतिकता, सौन्दर्यानुभूति आदि का अध्ययन शिक्षा के रूप, उद्देश्य, मूल्य, आदर्श, विधि, भावनात्मक दृष्टिकोण आदि प्रसंग में होता है।

शिक्षा में दर्शन के प्रयोग स्वरूप– शिक्षा दर्शन का यह स्वरूप एक प्रकार का साधन स्वरूप होता है वास्तव में यह स्वरूप एक और दर्शन का अंग है तो दूसरी ओर शिक्षा का एक साधन है। इसमें इसके साधन एवं प्रयोग तत्व पर बल दिया जाता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि शिक्षा के अध्ययन में दर्शन के सिद्धान्त एवं अंग–प्रत्यंग सहायता देते हैं तभी शिक्षा की प्रक्रिया पूरी होती है। यदि दर्शन का प्रयोग न हो तो शिक्षा की निर्णयात्मक स्थिति नहीं होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–

क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

3. दर्शन शिक्षा के लिये क्या है?

.....

4 शिक्षा में दर्शन का प्रयोग किसलिये होता है?

.....

4.5 शिक्षा दर्शन की व्याप्ति

शिक्षा दर्शन शिक्षा की सभी पहलुओं पर विचार करता है। सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया का विश्लेषण करने पर निम्नांकित प्रश्न उभरते हैं और दर्शन के क्षेत्र बन जाते हैं।

- शिक्षा क्यों दी जानी चाहिये? शिक्षा के द्वारा हम क्या उपलब्धि चाहते हैं?
- शिक्षा किसे दी जानी चाहिये? शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी कौन है? क्या शिक्षा सार्वजनिक होनी चाहिये अथवा योग्य को दी जाये?
- शिक्षा प्राप्त करने वाले की प्रकृति क्या हो? कौन शिक्षा पाने के योग्य है? शिक्षक अथवा शिक्षार्थी के मध्य कैसे सम्बंध होने चाहिये?
- शिक्षक के क्या गुण, योग्यतायें एवं क्षमतायें होनी चाहिये? तथा उसे शिक्षा के दायित्व का किस प्रकार निर्वाह करना चाहिये?
- सीखने या सिखाने योग्य क्या सामग्री है? ज्ञान से हमार क्या आशय है? किस प्रकार का ज्ञान ग्राह्य है? ज्ञान के अतिरिक्त किस अभिक्षमता योग्यता एवं आदतों का विकास किया जाना चाहिये?
- अध्ययन अध्यापन किस प्रकार किया जाये, जिससे कि सुविधापूर्वक वांछित ज्ञान, योग्यतायें एवं क्षमतायें अर्जित की जा सके?
- अध्ययन (शिक्षण) सामग्री का स्वरूप कैसा हो? इसे किस प्रकार से प्रस्तुत किया जाये? अध्ययनीय सामग्री को कैसा बनाया जाये कि वह समुग्राह्य हो?
- शिक्षण अधिगम के उचित वातावरण का सृष्जन कैसे हो पायेगा? उचित वातावरण के गुण क्या होंगे? अर्जित ज्ञान का प्रशिक्षण कैसे किया जाये?
- अनुशासन से क्या अभिप्राय है? विद्यालय अनुशासन कैसा हो? विद्यार्थियों को अनुशासित कैसे रखा जाये?
- विद्यालय में संसाधन कैसे प्रबंध किये जाये? प्रशासन प्रबंधन कैसे करें। कौन सा प्रबंधन प्रभावशाली होता है? प्रशासन एवं अध्यापक के मध्य कैसा सम्बंध

हो? अध्यापको एवं विद्यालय के अन्य मानवीय संसाधनों के मध्य कार्य वितरण कैसे किया जाये।

उपरोक्त सभी प्रश्न मूलतः प्रथम पॉच प्रश्नों से सम्बद्ध है और प्रथम प्रश्न पूर्णतया दर्शन का प्रश्न है, परन्तु शेष प्रश्न भी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से दर्शन की परिधि में आ जाते हैं। शिक्षा विधियों पर मुख्यतः शिक्षा विज्ञान पर विचार होता है और शिक्षा विज्ञान भी शिक्षा दर्शन से प्रभावित होता है। प्रारम्भ मे विज्ञान दर्शन का ही एक भाग था और ज्ञान की सभी शाखायें दर्शन ही थीं। बाढ़ में थेल्स पश्चिमी दर्शन के जन्मदाता ने सर्वप्रथम वैज्ञानिक पद्धति अपनायी परन्तु अरस्तु उच्च कोटि का दार्शनिक था पर विज्ञान का जन्मदाता माना जाता है, और धीरे–धीरे गणित एवं अन्य विज्ञान की शाखाओं ने अपना पृथक अस्तित्व बना लिया। परन्तु सभी विज्ञानों को गणित का प्रश्रय लेना पड़ता है। सभी विज्ञान गणित की निश्चितता का आश्रय लेते हैं, और पदार्थों के सम्बंधों को भी अन्ततः देखने का प्रयत्न करते हैं। गणित दर्शन की मनन पद्धति पर आधारित है और गणित भी अन्ततः दर्शन का आश्रय लेते हैं इसीलिये दर्शन को विद्वानों का विज्ञान कहा गया। दर्शन को विचार एवं समस्यायें शिक्षा प्रक्रिया में मिलते हैं और शिक्षा दर्शन की उत्पत्ति होती है।

बोध प्रश्न

निर्देश–

क– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

5 शिक्षा दर्शन का मुख्यतः विषय क्षेत्र क्या है?

.....

.....

.....

5.1 शिक्षा दर्शन की आवश्यकता

जीवन और शिक्षा में तादात्म्य है तो जीवन दर्शन और दर्शन तथा शिक्षा दर्शन में भी वही सम्बंध है। दर्शन इसी कारण शिक्षा का एक प्रमुख आधार है। शिक्षा दर्शन की आवश्यकता शिक्षा को अपनी पूर्ण व्यवस्था निर्धारण में पड़ती है।

- **ब्रह्माण्ड और उसमें जीवन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण का ज्ञान–** दर्शन हमें इस ब्रह्माण्ड और उसमें मानव जीवन के रहस्य से अवगत कराता है जो रहस्य शेष रह जाता है उसे समझने के लिये अन्तदृष्टि प्रदान करता है। बिना पूर्व और वर्तमान को जाने कुछ भी सोचना गलत होता है अतः शिक्षा दर्शन

विभिन्न दर्शनों के मूल सिद्धान्तों की व्याख्या करता हैं और हम इस ब्रह्माण्ड और उसमें मानव जीवन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों का ज्ञान प्राप्त करते हैं और सही दर्शन का चुनाव करते हैं जो हमारी संस्कर्षति की पोषक हो और वर्तमान परिस्थिति में समायोजन लायक क्षमता हममें विकसित कर सकें।

- **मानव जीवन के विभिन्न उद्देश्यों का ज्ञान एवं प्राप्त करने का उपाय–** शिक्षा दर्शन अध्यापक के लिये मार्ग प्रशस्त करता है कि वह जीवन के स्वरूप और अन्तिम उद्देश्यों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सके। इस ज्ञान के आधार पर अपने स्वयं के अनुभव एवं तर्क पर वह अपना दृष्टिकोण बनाता है। जैसे कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो आज भी शिक्षा का उद्देश्य निष्कलंक एवं पवित्र जीवन की प्राप्ति है जो कि आदर्शवादियों के दृष्टिकोण से मिलता है। शिक्षा दर्शन के अध्ययन से अध्यापक मानव जीवन के विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के उपायों का भी ज्ञान प्राप्त करता है और उस ज्ञान के आधार पर अपना मार्ग निर्धारण करता है।
- **शिक्षा के सम्प्रत्यय का ज्ञान–** शिक्षा का सम्प्रत्यय दर्शन का विषय क्षेत्र है। जिस दर्शन का इस ब्रह्माण्ड और उसमे मानव जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण होता है उसी के अनुरूप– 'शिक्षा क्या है' निर्धारित किया जाता है। आदर्शवाद प्लेटो के अनुसार– "शिक्षा से मेरा अभिप्राय उस प्रशिक्षण से है जो, अच्छी आदतों के द्वारा बच्चों में नैतिकता का विकास करती हैं।" प्रकृतिवादी एडम्स के अनुसार– "शिक्षा का सामान्य अर्थ उन सभी शिक्षा पद्धतियों से है जो विद्यालयों और पुस्तकों पर निर्भर न होकर, छात्र के वास्तविक जीवन के अध्ययन पर निर्भर रहती है।" प्रयोजवादी जॉन रस्किन के अनुसार– "शिक्षा वह प्रक्रिया है जो बच्चों को अच्छे स्थान प्राप्त करने, बड़े और धनी व्यक्तियों के समाज में महत्वपूर्ण स्थान पाने और आराम और ऐश्वर्य का जीवन जीने के लिये तैयार करती है।" इस प्रकार से विभिन्न दार्शनिकों ने अपने दर्शन के अनुरूप शिक्षा के सम्प्रत्यय को स्पष्ट किया।
- **उद्देश्य निर्धारण में–** दर्शन का प्रथम भाग तत्व मीमांसा होता है। रस्क का मत है कि शिक्षा के उद्देश्यों का सम्बंध जीवन के साध्यों के साथ है। दर्शन इस बात का निर्धारण करता है कि जीवन के उद्देश्य क्या होना चाहिये और इन उद्देश्यों का प्रत्याक्षीकरण शिक्षा दर्शन द्वारा होता है। टी0पी0 नन ने लिखा है– "शिक्षा की प्रत्येक योजना अन्ततोगत्वा व्यावहारिक दर्शन है और जीवन के प्रत्येक बिन्दु को आवश्यक रूप से स्पर्श करती है।" अतः शिक्षा का

कोई भी उद्देश्य जो निश्चित रूप से पथ प्रदर्शन करने के लिये पर्याप्त रूप से स्थूल है, जीवन के आदर्शों से सम्बंध रखते हैं, क्योंकि जीवन के आदर्श भिन्न होते हैं, इनकी भिन्नता शैक्षिक सिद्धान्तों में अवश्य प्रतिबिम्बित होगी जैसे –

- आदर्शवाद के अनुसार सच्ची वास्तविकता, आध्यात्मिकता और विचार है। तो रॉस एवं रस्क के अनुसार "शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का उत्कर्ष एवं आत्मनुभूति और व्यक्तित्व का मुख्य लक्षण सार्वभौमिक मूल्य से युक्त होना।
- प्रकृतिवाद के अनुसार मनुष्य इन्द्रियों एवं विभिन्न शक्तियों का समन्वित रूप है और ज्ञान एवं सत्य का आधार इन्द्रियानुभव होता है तो शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये उचित सहज सम्बद्ध क्रियाओं का निर्माण, जीवन की तैयारी, आत्मसंरक्षण, मूल प्रवृत्तियों का शोधन।
- यथार्थवाद के अनुसार– जगत में जिसका अस्तित्व है वही सत्य है। सत्य वास्तविकता का सारतत्व प्रक्रिया है। इस का प्रभाव इनके शिक्षा पर स्पष्ट परिलक्षित हुआ और शिक्षा का उद्देश्य जॉन लॉक के अनुसार– "बालक में सद्गुण, बुद्धिमान, सदाचरण तथा सीखने की शक्ति का विकास करना ही शिक्षा है।"
- प्रयोजनवाद अर्थ का सिद्धान्त– सत्य का सिद्धान्त, ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है और प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य स्थायी रूप से बनाये नहीं जा सकते। उनमें समय और मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन किया जाना चाहिये।
- **पाठ्यक्रम निर्धारण में–** दर्शन का दूसरा भाग ज्ञान मीमांसा होता है और इसमें ज्ञान के स्वरूप की व्याख्या की जाती है। शिक्षा दर्शन के लिये प्रश्न की उत्पत्ति होती है। क्या पढ़ाया जाय ? और क्यों पढ़ाया जाय? इस आधार पर शिक्षा की पाठ्यचर्या का निर्धारण भी शिक्षा दर्शन के सहयोग के बिना नहीं हो सकता क्योंकि पाठ्यचर्या शिक्षा के उद्देश्य जीवन के उद्देश्यों से प्रभावित होते हैं और उद्देश्यों की विविधता के कारण पाठ्यक्रम में भी विविधता होगी। पाठ्यक्रम निर्धारण में शिक्षा दर्शन विविध काल एवं परिस्थितियों के अनुसार पाठ्यचर्या की जानकारी देता है और अपने लिये उपयुक्त पाठ्यक्रम के चुनाव में सहयोग देता है। उदाहरणार्थ–
  - आदर्शवादी शिक्षा का उद्देश्य जीवन के शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति है, तो उन्होनें पाठ्यक्रम में मानवीय विचारों एवं मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है, और पाठ्यक्रम विचार केन्द्रित है।

- प्रकृतिवादी बालक के स्वाभाविक विकास पर अधिक बल देता है। इनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिकता का विकास करना है अतः पाठ्यक्रम में बालक की तत्कालीन आवश्यकताओं, रूचियों, क्षमताओं आदि को आधार बनाया जाता है, पाठ्यक्रम बात केन्द्रित होता है।
- प्रयोजनवादी उपयोगिता एवं व्यावहारिकता पर बल देते हैं। यह बालक को अपने मूल्यों को स्वयं निर्मित करने वाला मानते है। अतः पाठ्यक्रम में बालक की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उपयोगी क्रियाओं को स्थान दिया जाता है।
- यथार्थवादी प्रत्यक्ष पर विश्वास करते हैं, अतः पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक के बजाय अधिक व्यावहारिक होता है और जीवन की वास्तविक क्रियाओं को अधिक महत्व दिया जाता है।

इन सभी के आधार पर हम यह विचार कर सकते हैं कि प्रत्येक स्तर की शिक्षा में हमारा पाठ्यक्रम विचार से आदर्शवादी, कर्म से प्रकृतिवादी एवं प्रयोजन से यथार्थवादी होना चाहिये।

रस्क ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "शिक्षा दर्शन पर पाठ्यक्रम के सम्बंध में शिक्षा जितना निर्भर है, उतनी अन्य किसी शैक्षिक प्रश्न के सम्बंध में नहीं है।"

- **शिक्षण विधियों का ज्ञान**– दर्शन के ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत मानव बुद्धि, ज्ञान और ज्ञान प्राप्त करने की विधियों पर प्रकाश डाला जाता है। शिक्षा दर्शन शिक्षा व्यवस्था हेतु उपयोगी शिक्षण विधियों की जानकारी भी देता है, और किसको कब और किस प्रकार, पढ़ाना चाहिये, इस प्रकार के विचार अनेक शिक्षा शास्त्रियों के मिलते हैं, जिससे कि अध्यापक वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अपने आदर्श एवं शिक्षण उद्देश्यों के लिये उचित शिक्षण विधियों का चुनाव कर सकता है। उदाहरणार्थ सुकरात ने अपने दार्शनिक विचारों के अनुकूल प्रश्नोत्तर विधि को जन्म दिया। प्लेटो ने संवाद विधि अरस्तु ने आगमन एवं निगमन विधि को खोजा। प्रकृतिवादी रूसो ने बालक की अत्यधिक स्वतंत्रता को महत्व देते हुये स्वानुभव तथा स्वक्रिया बल दिया। मान्टेसरी ने इन्द्रिय यथार्थवाद के आधार पर इन्द्रिय प्रशिक्षण को शिक्षण पद्धति के रूप में अपनाया। फ्राबेल ने किण्डरमार्टन पद्धति को जन्म दिया इस प्रकार भिन्न–भिन्न शिक्षाशास्त्रियों द्वारा भिन्न पद्धति को खोजा गया शिक्षा दर्शन इन शिक्षण पद्धति के प्रयोग का कारण एवं महत्व की विवेचना कर हमारा दृष्टिकोण और स्पष्ट करता है।

- **शिक्षा में अनुशासन सम्बंधी दृष्टिकोणों का ज्ञान–** शिक्षा दर्शन में विभिन्न दर्शनों एंव उनके द्वारा व्यक्त अनुशासन की समस्या एवं विचारों का अध्ययन किया जाता है। यह भावी शिक्षक को उपयुर्क्त अनुशासन विधियों को समझने तथा चुनाव करने में सहायक होती है। रस्क का कथन है– "विद्यालय कार्य के अन्य किसी भी पक्ष की अपेक्षा अनुशासन किसी व्यक्ति या युग की दार्शनिक पूर्व धारणाओं को अधिक प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिम्बित करता है। उदाहरणार्थ– आदर्शवादी मुख्यतः आत्म नियंत्रण एंव शिक्षक के प्रभाव द्वारा अनुशासन की स्थापना को महत्व देते है, तो प्रकृतिवादी प्राकृतिक नियमों द्वारा दण्ड विधान को महत्व देते थे। प्रयोजनवादी अनुशासन स्थापना हेतु रूचि, आनन्दपूर्ण सहयोगी क्रियाओं को महर्त्व देते हैं। इस प्रकार अनुशासन मुख्यतः दमनात्मक, प्रभावात्मक, मुक्त्यात्मक एवं साम्राजिक अनुशासन के रूप में पाया जात हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में हम प्रभावात्मक, मुक्त्यात्मक एवं सामाजिक अनुशास को महत्व देते हैं। रस्क ने लिखा है– "प्रकृतिवादी दर्शनशास्त्र में नैतिक मानदण्डों की प्रमाणिकता को अस्वीकार करके बालक की जन्मजात मूल प्रवृत्तियों को प्रकट होने में सहयोग देता है। प्रयोजनवादी छात्रों के आचरण को सामाजिक स्वीकृति पर ही नियत्रित करता है। दूसरी ओर आदर्शवादी मानव व्यवहार को नैतिक आर्दशों के अभाव में अपूर्ण मानता है।"
- **शिक्षक–शिक्षार्थी के सम्बन्धों का ज्ञान–** दर्शन की तत्व मीमांसा में मनुष्य के स्वरूप और आचार मीमांसा में करणीय और अकरणीय कर्मों की विषद व्याख्या की जाती है। शिक्षा दर्शन विभिन्न विचार धाराओं के अनुसार शिक्षक एवं शिक्षार्थी का स्वरूप एवं उनके कर्तव्य निश्चित करता हैं। उदाहरणार्थ– प्रकृतिवादी मानव का विकास मूल शक्तियों के आधार पर ही होता है। अतः वे शिक्षक का कर्तव्य शिक्षार्थी के स्वभाविक विकास में सहयोग मानते हैं। आदर्शवादी शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देता हैं रास के अनुसार प्रकृतिवादी कंटीली झाड़ियों से सन्तुष्ट हो सकता है पर आदर्शवादी सुन्दर गुलाबी फूल ही पसन्द करता हैं। शिक्षक छात्र को उच्चतर सीमा तक पहुँचाने का प्रयास करता है, जहां वह अपने आप नहीं पहुँच पाता। भारतीय शिक्षा में भी गुरू का स्थान सर्वोपरि माना गया है।
- **शैक्षिक प्रशासन का ज्ञान–** शिक्षा दर्शन इस बात का अध्ययन करता है कि नियोजित शिक्षा की प्रक्रिया को चलाने के लिये विद्यालयों का क्या स्वरूप होना चाहिये। शिक्षा दर्शन के अभाव में हम विद्यालय प्रशासन का स्वरूप निर्धारित नहीं कर सकते। विद्यालय का आन्तरिक प्रशासन कैसा हो और आचार्य एवं अध

यक्ष कैसा हो यह दर्शन का प्रश्न है। विद्यालय की आन्तरिक व्यवस्था समाज के दर्शन पर निर्भर करती है यदि समाज लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का है तो हम यह तय कर लेते हैं कि विद्यालय की प्रशासन लोकतांत्रिक होगा।

- **शिक्षा की अन्य समस्याओं का दार्शनिक हल**– दर्शन के अभाव में शैक्षिक समस्याओं का वास्तविक समाधान, ढूँढना कठिन है। शिक्षा दर्शन, दर्शन के विभिन्न विचार धाराओं को अपने कसौटी में कसकर वास्तविक हल ढूढंने में सहायक होता है विश्व परिवर्तनशील है और आजकल यह परिवर्तन बड़ी तेजी से हो रहा है। हमारी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति भी तेजी से बदल रही है। विज्ञान के आविष्कारों ने हमारे जीवन को पूर्णतया बदल दिया है। शिक्षा को इसके साथ कदम मिलाकर चलना है अन्यथा हम आने वाले समय में अपने आपको सुरक्षित नहीं रख सकेंगे। पर हमें कितना बदलना है और कितना नहीं जितना बदलना है, वह क्यों और जितना नहीं बदलना है वह क्यों इस सबका उत्तर तो वही दे सकता है जिसने शिक्षा दर्शन का अध्ययन किया हो।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

6 शिक्षा दर्शन उद्देश्य निर्धारण में क्या सहायता करता है?

.....

7 शिक्षा दर्शन की पाठ्यक्रम निर्धारण में क्या भूमिका है?

.....

7.1 सारांश

इस सम्पूर्ण इकाई में हमने पढ़ा कि जब हम शिक्षा में दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाते हैं तो शिक्षा दर्शन का जन्म होता है। यह शिक्षा दर्शन शिक्षा के एक शाखा के रूप में जिसमें यह बताया जाता है कि दर्शन में मौलिक सिद्धान्तों की खोज होती है और उन सिद्धान्तों को शिक्षा में व्यवहष्त किया जाता है। शिक्षा दर्शन में दार्शनिक सिद्धान्तों का शिक्षा के क्षेत्र में व्यवहार किस प्रकार होता है और होना चाहिये, इसे बताया जाता है। हमने यह भी पढ़ा है कि शिक्षा दर्शन एक नया क्षेत्र है, जिसमें शैक्षिक

समस्याओं पर दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार किया जाता है। पहले से सिद्धान्तों को नहीं बनाया जाता है, वरन् शैक्षिक समस्याओं को हल करने के लिये ही विचार होता है।

4.8 अभ्यास कार्य

1. शिक्षा दर्शन की क्या परिभाषा है? इसके अध्ययन की क्यों आवश्यकता है?
2. शिक्षा पद्धति का अध्ययन विस्तार क्या है? इसका शिक्षण की क्रिया में क्या महत्व है?

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. शैक्षिक दर्शन शिक्षा में दर्शनशास्त्र की अनुप्रयुक्त शाखा है।
2. शिक्षा दर्शन की समस्याओं के अध्ययन में दर्शन का प्रयोग होता है।
3. दर्शन शिक्षा के लिये विचारात्मक पक्ष एवं प्रयोग के रूप में है।
4. शिक्षा में दर्शन का प्रयोग उसके विभिन्न अंगों के निर्धारण हेतु किया जाता है।
5. शिक्षा दर्शन का मुख्य विषय क्षेत्र उसके सम्प्रत्यय, प्रशासन, आवश्यक पाठ्यक्रम शिक्षण विधियों, संसाधन, अध्ययन, अध्यापन का वातावरण है।
6. दर्शन जीवन दर्शन का निर्धारण करता है, तो शिक्षा उसका प्रत्यक्षीकरण करता है शिक्षा दर्शन विभिन्न सम्प्रदायों के अनुसार जीवन दर्शन का एवं शिक्षा के उद्देश्यों की जानकारी दे अपने शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण का मार्ग प्रशस्त करता है।
7. क्यों पढ़ाया जाय? क्या पढ़ाया जाय? यह दर्शन के ज्ञान मीमांसा का विषय क्षेत्र है। और इस आधार शैक्षिक उद्देश्यों की प्रति हेतु पाठ्यचर्या के निर्धारण का मार्ग प्रशस्त हेाता है।

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रस्क आर0आर0 (1972) : *शक्षा के दार्शनिक आधार,* राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

Adams J : *Educational Theories, London Erenest Benn*

चतुर्वेदी एस0आर0(1970) : *शिक्षा दर्शन,* हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ

ओड0एल0के0(2005) : *शिक्षा की दार्शनिक पष्ठभूमि,* राजस्थान, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

पाल गुप्ता एवं मोहन (1994) *शक्षा दर्शन,* कैलाश प्रकाशन, कल्याणी देवी, इलाहाबाद।

Bhatia B.D. (1960) : *Theory & Principles of Education,* D Doaba House.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-01
शिक्षा के दार्शनिक एवं
समाजशास्त्रीय आधार

खण्ड

2

शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय

इकाई-5 5
प्रकृतिवाद

इकाई-6 27
आदर्शवाद

इकाई-7 50
प्रयोजनवाद

इकाई-8 75
यथार्थवाद तथा अस्तित्ववाद

MAED-01- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

खण्ड-1	**शिक्षा के दार्शनिक आधार**
इकाई-1	दर्शन का स्वरूप एवं विषय क्षेत्र
इकाई-2	शिक्षा की अवधारणा एवं कार्य
इकाई-3	शिक्षा और दर्शन के बीच सम्बन्ध
इकाई-4	शिक्षा दर्शन का स्वरूप एवं आवश्यकता
खण्ड-2	**शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय**
इकाई-5	प्रकृतिवाद
इकाई-6	आदर्शवाद
इकाई-7	प्रयोजनवाद
इकाई-8	यथार्थवाद तथा अस्तित्ववाद
खण्ड-3	**शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार**
इकाई-9	धर्म और शिक्षा
इकाई-10	जनतंत्र और शिक्षा
इकाई-11	शैक्षिक मूल्य
इकाई-12	अनुशासन और स्वतंत्रता
खण्ड-4	**शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार**
इकाई-13	शिक्षा और समाज
इकाई-14	शिक्षा और राष्ट्रीयता
इकाई-15	शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीयता
इकाई-16	शिक्षा के विज्ञान

खण्ड–2 शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय

खण्ड परिचय –

खण्ड–2 में शिक्षा दर्शन के विभिन्न सम्प्रदाय आदर्शवाद, प्रकर्षतिवाद प्रयोजनवाद एवं यथार्थवाद की संकल्पना, विशेषताओं एवं शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर इनके दार्शनिक चिन्तन से सम्बन्धित है।

इकाई 5 में प्रकृतिवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, संकल्पना, दार्शनिक दृष्टिकोण, मूल सिद्धान्त की चर्चा की गयी है। इसके साथ ही प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, शिक्षक, अनुशासन तथा आधुनिक शिक्षा पर इसके प्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया है।

इकाई 6 में आदर्शवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, अर्थ, आधार प्रशाखायें एवं सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त आदर्शवादी दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षक पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों की भी चर्चा की गयी है।

इकाई 7 में प्रयोजनवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, संकल्पना प्रशाखायें, सिद्धान्तों की विवेचना की गयी इसके साथ ही प्रयोजनवादी शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम का वर्णन किया गया है।

इस खण्ड की अन्तिम **इकाई 8** में यथार्थवाद एवं अस्तित्ववाद की संकल्पना, आधार, सिद्धान्तों एवं विशेषताओं की विवेचना की गयी है और साथ ही यथार्थवाद एवं अस्तित्ववाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षण विधयाँ भी चर्चा की केन्द्र रही हैं। इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

- शिक्षा दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों की संकल्पना एवं विशेषताएं बता सकेंगे।
- शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदायों के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन कर सकेंगे।
- शिक्षा दर्शन के इन सम्प्रदायों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों के मध्य अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
- विभिन्न सम्प्रदायों द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों की विवेचना कर सकेंगे।
- सम्प्रदायों द्वारा निर्धारित शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों की विशेशताएं एवं कर्तव्यों को आख्यायित कर सकेंगे।
- शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदायों का वर्तमान शिक्षा के विभिन्न पक्षों पर प्रभाव को चिन्हित कर सकेंगे।

इकाई–5 प्रकृतिवाद

संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 प्रकृतिवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

5.4 प्रकृतिवाद की संकल्पना

5.5 प्रकृतिवाद की परिभाषा

5.6 प्रकृतिवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

5.7 प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्त

5.8 प्रकृतिवाद और शिक्षा

5.9 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य

5.10 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम

5.11 प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियां

5.12 प्रकृतिवाद व शिक्षक

5.13 प्रकृतिवाद व अनुशासन

5.14 प्रकृतिवाद और आधुनिक शिक्षा

5.15 सारांश

5.16 अभ्यास कार्य

5.17 चर्चा के बिन्दु

5.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.19 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

जब से दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भ हुआ, तभी से दार्शनिकों के सामने प्रमुख प्रश्न बना रहा, कि सत्ता क्या है? यह जगत क्या है? इस प्रश्न के उत्तर दो ध्रुवों में प्रसारित हो गये। प्रथम ध्रुव है द्रव्य अथवा भौतिक तत्व तथा द्वितीय ध्रुव है आत्मा, जिसे पश्चिमी दर्शन में "मनस" संज्ञा प्रदान की गयी है। सभी दार्शनिक सम्प्रदाय इन दो ध्रुवों के मध्य झूलते दिखायी देते हैं। इनमें से प्रथम ध्रुव पर स्थित है भौतिकवाद, जो द्रव्य को जगत की चिरन्तन सत्ता स्वीकार

करता है तथा दूसरे ध्रुव पर आदर्शवाद है, जो वास्तव में विचारवाद का प्रतीक है। प्रकृतिवाद पूर्णरूपेण भौतिकवादी दर्शन है। यह प्रकृति को मूल्य तत्व मानता है और यह मानता है कि इस ब्रह्माण्ड का कर्ता और उपादान कारण दोनो प्रकृति ही है। इस इकाई में हम प्रकृतिवाद के विषय में वृहद ज्ञान अर्जित करेंगे।

5.2 उद्देश्य–

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगें कि–

- प्रकृतिवाद के उद्भव एवं विकास के विभिन्न चरणों को बता सकेंगे।
- प्रकृतिवाद का सम्प्रत्यय एवं परिभाषा बता सकेंगे।
- प्रकृतिवाद के विभिन्न रूपों की विवेचना कर सकेंगे।
- प्रकृतिवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्तों की व्याख्या कर पायेंगे।
- प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा की संकल्पना एवं विशेषता बता सकेंगे।
- प्रकृतिवादी शिक्षा के उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रकृतिवादी शिक्षण विधियों एवं अनुशासन की विशेषतायें बता सकेंगे।
- प्रकृतिवादियों के अनुसार शिक्षक के कर्तव्य बता सकेंगे।

5.3 प्रकृतिवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दर्शन का आरम्भ आश्चर्य है। प्रकृति आश्चर्यमयी है। उसके भौतिक तत्व ने ही मनुष्य को चिन्तन की प्रेरणा दी, अतः आरम्भ में हमें प्रकृति सम्बंधी विचार ही मिलते हैं। थेलीस ने जगत का मूल कारण जल बताया। एनेक्सी मैडम ने आधार तत्व वायु को माना है। हैरेक्लाइट्स ने अग्नि को वास्तविकता या यर्थाथता का रूप दिया। एम्पोडोक्लीज ने पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु सभी को स्थायी तत्व माना।

भारत में वैदिक काल में भी मनुष्य के विचार अग्नि, जल और पृथ्वी से सम्बद्ध पाये जाते हैं। इन सभी को देव का स्वरूप माना गया। प्रकृतिवाद का आरम्भ ऐतिहासिक विचार से मानवीय जगत के आरम्भ से ही कहा जाता है जो कि भारतीय एवं यूनानी दोनों दर्शन में पाया जाता है।

प्रकृतिवादी व्यवस्थित रूप में पश्चिमी दर्शन में अधिक विकसित हुआ यद्यपि प्रकृतिवादी दृष्टिकोण तत्व मीमांसा, सांख्य, वैशेषिक, चार्वाक, बौद्ध एवं जैन दर्शन में भी विस्तार में पाया जाता है। प्रकृतिवाद का विकास क्रमिक ढंग से हुआ है।

प्रथम अवस्था में प्रकृति से पदार्थ जो प्रकृति में पाये जाते हैं सत्य एवं यथार्थ ठहराये गये, उनका अस्तित्व अपने आप में और अपने ही द्वारा पूर्ण माना गया। ल्यूसीपस एवं डेमोक्राइट्स के अनुसार भौतिक पदार्थ अणु में गति होने से प्राप्त होते हैं। मन और आत्मा गतिशील सुधर अणुओं से बने हैं। एपीक्यूरस से स्पष्ट किया कि इन अणुओं से इन्द्रियों की सहायता द्वारा मन का ज्ञान होता है। लेकुसियस ने विकास के उपर जोर दिया। अणुओं के गतिशील होने पर पृथ्वी एवं अन्य ग्रहों की उत्पत्ति हुयी। गतिशीलता से मनुष्य को काल का अनुभव हुआ।

हाब्स के बाद रूसों ने प्रकृति को मूर्त माना। उसके अनुसार सभी गुणों से युक्त एवं ज्ञान का स्त्रोत प्रकृति है। रूसों के बाद हरबर्ट स्पेन्सर हुये जिसने विकासवाद का आश्रय लिया। इन पर लेमार्क का प्रभाव पड़ा। डार्विन ने जीवविज्ञानात्मक सिद्धान्त दिये। इन्होनें ज्ञान को विकास एवं वृद्धि की प्रक्रिया पर आधारित किया। मृत्यु के समय विकास में सहायक एकीकृत रूप विछिन्न होकर पुनः जगत के पदार्थ में मिल जाते हैं। बीसवीं शताब्दी में बर्नाड शॉ भी प्रकृतिवादी दर्शन के प्रचारक बने।

भारत में कुछ चिन्तकों की विचारधारा में प्रकृतिवाद दिखायी देता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के दर्शन में प्रकृतिवाद की विचारधारा स्पष्ट है। दयानन्द सरस्वती जैसे आदर्शवादी विचारकों ने भी गुरूकल की स्थापना प्रकृति की गोद में की।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1– प्रकृतिवाद व्यवस्थित रूप में कहां से प्रारम्भ हुआ?

.....

2– रूसों ने प्रकृति को क्या माना?

.....

3– भारत को किस दार्शनिक की विचारधारा प्रकृतिवाद के निकट है?

.....

5.4 प्रकृतिवाद की संकल्पना

प्रकृतिवाद तत्व मीमांसा का वह रूप है, जो प्रकृति को पूर्ण वास्तविकता मानता है। वह अलौकिक और पारलौकिक को नहीं मानता है जो बातें प्राकृतिक

नियम से स्वतंत्र जान पड़ती है– जैसे मानव जीवन या कल्पना की उपज वे भी वास्तव में प्रकृति की योजना में आती है। प्रत्येक वस्तु प्रकृति से उत्पन्न होती है और उसी में विलीन हो जाती है।

प्रकृतिवाद दर्शन का वह सम्प्रदाय है, जो चरम सत्ता को प्रकृति में निहित मानता है। दर्शन शास्त्र में प्रकृति का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। एक ओर प्रकृति का अर्थ भौतिक जगत हो सकता है जिसे मनुष्य इन्द्रियों तथा मस्तिष्क की सहायता से अनुभव करता है, दूसरी ओर इसकी जीव जगत के रूप में व्याख्या की जा सकती है, और तीसरे अर्थों में देशकाल का समग्र प्रपंच प्रकृति के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाता है। प्रकृति या नेचर से विपरीतार्थक शब्द है परमात्मा अथवा "सुपर नेचुरल पावर" जिसे प्रकृति से परे माना जाता है। अर्थ की व्याप्ति के आधार पर प्रकृतिवाद का निम्नांकित वर्गीकरण किया जा सकता है।

- परमाणुवादी प्रकृतिवाद
- शक्तिवाद अथवा वैज्ञानिक प्रकृतिवाद
- जैविक प्रकृतिवाद
- यन्त्रवादी प्रकृतिवाद
- ऐतिहासिक तथा द्वनशात्मक भौतिकवादी प्रकृतिवाद
- मानवतावादी प्रकृतिवादी
- रूमानी प्रकृतिवादी

परमाणु प्रकृतिवाद– यह सबसे प्राचीन भौतिकवादी दर्शन है जिसके मतानुसार जगत की अंतिम इकाई परमाणु है, अर्थात् चिरन्तन सत्ता भौतिक परमाणु में निहित है। परमाणुवाद के मतानुसार यह दृश्य जगत परमाणुओं के विविध संयोगों का प्रतिफल है। परमाणुओं का यह संयोग दिक तथा गति के माध्यमों द्वारा होता है। अणुओं का पुनः विखण्डन किया जा सकता है और जगत की की अन्तिम इकाई शक्ति हो गई, और परमाणुवाद अमान्य सा हो गया है।

- **शक्तिवाद**– परमाणुवाद की असफलता ने शक्तिवाद को जन्म दिया परमाणुवाद में केवल दिक् और काल को ही तत्व थे, परन्तु नये शोधों ने एक और तत्व को जन्म दिया और वह था गति। नये शोधो ने स्पष्ट किया कि परमाणु गतिशील होते हैं और उनके इलेक्ट्रान और प्रोटान शक्ति कण होते हैं। अतः जगत का अन्तिम तत्व शक्ति को माना गया है। शक्तिवाद मनुष्य में स्वतंत्रत इच्छाशक्ति होना अथवा आत्मा जैसी किसी अन्य इकाई को स्वीकार नहीं करता है।

- **यन्त्रवाद–** इस सम्प्रदाय के अनुसार सृष्टि यन्त्रवत् है, भौतिक जगत, प्राणी जगत तथा मानव जगत सभी की व्याख्या भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा अन्य भौतिक विज्ञानों के माध्यम से की जा सकती है। यन्त्रवाद के अनुसार मन तथा उसकी सभी क्रियायें व्यवहार के प्रकार मात्र हैं, जिन्हें स्नायुसंस्थान, ग्रन्थिसंस्थान तथा मांसपेशीसंस्थान की सहायता से समझा जा सकता है। यन्त्रवादी भी शक्तिवादी के समान ही नियतिवाद में विश्वास करता है। उसके अनुसार जगत में जो परिवर्तन होते हैं वे सभी कारण–कार्य नियम से आबद्ध है।

- **जैविक प्रकृतिवाद–** इस सम्प्रदाय का उद्‌गम डार्विन के क्रम विकास सिद्धान्तों से हुआ है तथा वास्तव में किसी सम्प्रदाय को सच्चे अर्थों में प्रकृतिवाद संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है तो वह जैविक प्रकृतिवाद ही हैं इनके अनुसार मानव का विकास जीवों के विषय में सबसे अंतिम अवस्था में है। मस्तिष्क के फलस्वरूप वह विज्ञान को संचित रख सकता है, नये विचार उत्पन्न कर सकता है। पर अन्य प्राणियों की तरह वह भी प्रकृति के हाथों का खिलौना मात्र है। उसकी नियति तथा विकास की सम्भावनायें वंशक्रम तथा परिवेश पर निर्भर करती है। मनुष्य की स्वतंत्रता का अधिकार भी सीमित है।

- **द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद–** द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के प्रमुख व्याख्याकार मार्क्स तथा ऐंजल्स है। यह सम्प्रदाय भी विज्ञान को सर्वोच्च महत्व प्रदान करता है, परन्तु इसका आग्रह सृष्टि संरचना से हटकर आर्थिक संरचना पर आ जाता है। इसके अनुसार समाज के आर्थिक संगठन का आधार क्रय है। द्रव्य जो आर्थिक संरचना में प्रयुक्त होता है, नैतिक, धार्मिक तथा दार्शनिक विचारों को जन्म देता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार जगत विकास की निरन्तर प्रक्रिया है। परिवर्तन की सभी क्रियायें द्वन्द्वात्मक होती है, अर्थात् सभी परिवर्तनकारी प्रक्रियायें स्वीकारोक्ति से आरम्भ होती है, तदनन्तर उसमें नकारोक्ति का संघर्ष अन्तर्निहित है, जिसका अवसान समाहारोक्ति में होता है। इस द्वन्द्व को उसने अस्ति–नास्ति तथा समष्टि संज्ञाओं में अभिहित किया है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की आत्मा स्वतत्र इच्छाशक्ति अथवा परमात्मा आदि तत्वों से इन्कार करता है तथा सृष्टि का मूल द्रव्य में मानता है।

- **रूमानी प्रकृतिवाद–** इस सम्प्रदाय के व्याख्याकार रूसों, नील एवं टैगोर है। इनकी रूचि सृष्टि की संरचना में न होकर सृष्टि की आह्लादकारी प्रकृति तथा गहन मानव प्रकृति से है। इस सम्प्रदाय को प्रकृतिवादी केवल इन अर्थों में कहा जा सकता है कि वह सामाजिक कृत्रिमता का

विरोध करते हैं, तथा मनुष्य के प्रकृत जीवन को आदर्श मानते हैं। रूसों प्रकृति के निर्माता की कल्पना भी करता है। प्रकृति से परे किसी परमात्मा को अस्वीकार नहीं किया जाता अपितु प्रकृति को ईश्वर की कृति माना जाता है।

- **वैज्ञानिक मानवतावद–** इस सम्प्रदाय के अनुसार मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रयोग द्वारा लोकतांत्रिक शासन की संस्थाओं को संचालित करते हुये बिना, किसी पराशक्ति की मदद से एक ऐसे तर्कशक्ति परक सभ्यता का सृजन कर सकते हैं जिसमें प्रत्येक मनुष्य सुरक्षा की अनुभूति कर सके और स्वयं में निहित सामान्य मानवीय क्षमताओं और सृजनात्मक शक्तियों के अनुसार विकास कर सके।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4– जैविक प्रकृतिवाद का उद्भव किनके सिद्धान्तों के कारण हुआ?

.....

5– रूमानी प्रकृतिवाद के प्रतिपादक कौन थी?

.....

5.5 प्रकृतिवाद की परिभाषा

हम प्रकृतिवाद के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये कुछ परिभाषायें नीचे दे रहे हैं।

- **थामस और लैंग** – "प्रकृतिवाद आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधनी मानता है और यह विश्वास करता है कि अन्तिम वास्तविकता– भौतिक है, अध्यात्मिक नहीं।"
- **पैरी**–"प्रकृतिवाद विज्ञान नहीं है, वरन् विज्ञान के बारे में दावा है। अधिक स्पष्ट रूप से यह इस बात का दावा है कि वैज्ञानिक ज्ञान अन्तिम है और विज्ञान से बाहर या दार्शनिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं है।"
- **जेम्स वार्ड** –"प्रकृतिवाद वह विचारधारा है जो प्रकृति को ईश्वर से अलग करती है और आत्मा को पदार्थ अथवा भौतिक तत्व के अधीन मानती है, एवं अपरिवर्तनशील नियमों को सर्वोच्च मानती है।"
- **ज्वाइस महोदय**–"वह विचारधारा है जिसकी प्रधान विशेषता है प्रकृति तथा मनुष्य के दार्शनिक चिन्तन जो कुछ आध्यात्मिक है अथवा वास्तव

में जो कुछ अनुभवातीत है उसे अलग हटा देना है।"

प्रकृतिवाद की तत्व मीमांसा ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा की दृष्टि से हम उसे निम्नलिखित रूप में परिभाषा करते हैं–

"प्रकृतिवाद दर्शन की वह विचारधारा है जो इस ब्राह्माण्ड को प्रकृतिजन्य मानती है और यह मानती है कि यह भौतिक संसार ही सत्य है इसके अतिरिक्त कोई आध्यात्मिक संसार नहीं है। यह ईश्वर को नहीं मानती और आत्मा को पदार्थ जन्य चेतन तत्व के रूप में स्वीकार करती है और यह प्रतिपादन करती है कि मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है, जो प्राकृतिक विकास द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।"

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6 प्रकृतिवाद ब्रह्माण्ड को क्या मानता है?

.....

7 प्रकृतिवाद मानव जीवन का क्या उद्देश्य मानता है?

.....

5.6 प्रकृतिवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

तत्वदर्शन में प्रकृतिवाद– परमाणु को सत्, अनश्वर एवं अविभाज्य मानते हैं। ये परमाणु आकार एवं मात्रा में भिन्न होते हैं। इन्हीं के संयोग से ब्रह्माण्ड की रचना होती है जो दृश्य है वह परमाणुओं के संयोग का फल है। प्रकृतिवादियों के अनुसार मनुष्य– इन्द्रियों एवं विभिन्न शक्तियों का समन्वित रूप है। सब प्रकृति का खेल है। इसमें आत्मा नामक चेतन तत्व नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि के नियम विद्यमान है। सब कार्य नियमानुसार होते है, मनुष्य भी प्रकृति अधीन है स्वतंत्र नहीं। प्रकृति के नियम, शाश्वत एवं अपरिवर्तनशील है।

ज्ञानशास्त्र में प्रकृतिवाद– प्रकृतिवादी प्रत्यक्ष का समर्थन करते है। ये इन्द्रियों तथा अनुभव के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति पर बल देते हैं। वे इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किये जाने वाले ज्ञान को सत्य मानते हैं। हरबर्ट स्पेन्सर इस ज्ञान को निम्न स्तर के ज्ञान से ऊँचा और तत्व ज्ञान से निम्न मानता है। तत्व ज्ञान पूर्णरूपेण संगठित ज्ञान होता है। इसको स्पेन्सर ने सर्वोत्तम प्रकार का ज्ञान बताया है। रूसों ने शिक्षा के सब स्तरों पर प्रत्यक्ष ज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने के लिये कहा है।

आचार मीमांसा में प्रकृतिवाद– प्रकृतिवाद प्राकृतिक पदार्थ एवं क्रियाओं को ही सत्य मानता है। इनके अनुसार प्रकृति अपने आप में शुद्ध है और इसके अनुकूल आचरण मनुष्य को करना चाहिये, जिससे कि सुख मिलें। मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुकूल ही आचरण करना चाहिये। वे मनुष्य को किसी प्रकार से सामाजिक नियमों और आध्यात्मिक बंधनों में बांधकर नहीं रखना चाहते हैं। मनुष्य को जो कार्य सुख देते हैं वही कार्य वह करेगा। प्रकृतिवादी केवल प्राकृतिक नैतिकता को मानते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8– प्रकृतिवादी किस प्रकार के ज्ञान को सत्य मानते है?

.....

9– प्रकृतिवादियों के अनुसार मनुष्य को किसके अनुकूल आचारण करना चाहिये?

.....

10– प्रकृतिवादी 'परमाणु' के विषय में क्या विचार रखते हैं?

.....

5.7 प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्त

प्रकृतिवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण के बारे में पूर्व में जानकारी प्राप्त कर चुके है। अब प्रकृतिवाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा को हम सिद्धान्तों के रूप इस प्रकार से देख सकते हैं–

- **यह ब्रह्माण्ड एक प्राकृतिक रचना है**– प्रकृतिवादियों के अनुसार संसार का कर्ता और करण दोनों स्वयं प्रकृति ही है। प्राकृतिक तत्वों के संयोग से पदार्थ और पदार्थों के संयांग से संसार की रचना होती है और उनके विघटन से इसका अन्त होता है। यह संयोग और विघटन की क्रिया कुछ निश्चित नियमों के अनुसार होती है। इसको बनाने और बिगाड़ने को प्राकृतिक परिवर्तन कहा जाता है।

- **यह भौतिक संसार ही सत्य** – प्रकृतिवाद भौतिक संसार को ही सत्य मानता है। उसका स्पष्टीकरण है कि इस संसार को हम इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष कर रहे हैं, अतः यह सत्य है। इसके विपरीत आध्यात्मिक संसार

को हम इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं कर पाते इसलिये वह असत्य है।

- **आत्मा पदार्थ जन्य चेतन तत्व है–** प्रकृतिवाद आत्मा के आध्यात्मिक स्वरूप को स्वीकार नहीं करता। उसका स्पष्टीकरण है कि यह संसार प्रकृति द्वारा निर्मित है और यह निर्माण कार्य निश्चित नियमों के अनुसार होता है, इसके पीछे किसी आध्यात्मिक शक्ति परमात्मा की कल्पना एक मिथ्या विचार है। प्रकृतिवादियों के अनुसार परमाणु में स्थित इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान की गतिशीलता जड़ में जीव और जीव में चेतन का विकास करते हैं।
- **मनुष्य संसार की श्रेष्ठतम् रचना–** प्रकृतिवाद मनुष्य को जन्म से पूर्ण तो नहीं पर संसार की श्रेष्ठतम् रचना मानता है। भौतिक विज्ञानवादी प्रकृतिवाद के अनुसार मनुष्य संसार का श्रेष्ठतम् पदार्थ है। यन्त्रवादी प्रकृतिवाद के अनुसार मनुष्य श्रेष्ठतम् यंत्र है और जीव विज्ञानवादी यह संसार का सर्वोच्च पशु है। जीव विज्ञानवादियों के अनुसार मनुष्य अपने में निहित कुछ विशेष शक्तियों के कारण अन्य पशुओं से सर्वोच्च बना लिया। इसमें बुद्धि की महत्वपूर्ण भूमिका है।
- **मानव विकास एक प्राकृतिक क्रिया है–** जीव विज्ञानवादी प्रकृतिवादी विकास सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं। उनके अनुसार मनुष्य का विकास निम्न प्राणी से उच्च प्राणी के रूप में हुआ। मनुष्य भी कुछ प्रवृत्ति लेकर पैदा होता है। इनका स्वरूप प्राकृतिक है। वाह्य वातावरण से उत्तेजना पाकर ये शक्तियां क्रियाशील होती है, और मनुष्य का व्यवहार निश्चित होता है।
- **मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुख–** प्रकृतिवाद मानव जीवन के अंतिम उद्देश्य में विश्वास नहीं करता है। उसका विश्वास है कि प्रत्येक प्राणी में जीने की इच्छा है और जीने के लिये वह संघर्ष करता है और परिस्थिति के अनुकूल बनाकर अपने आपको सुरक्षित कल लेता है। मनुष्य अपने परिस्थितियों का निर्माता भी है इस प्रकार उसने अन्य प्राणियों के समान सुख भोगा।
- **प्राकृतिक जीवन ही उत्तम–** प्रकृतिवादियों के अनुसार सभ्यता एवं संस्कृति के विकास एवं मोह ने मानव को प्रकृति से दूर किया है। मनुष्य की प्राकृतिक प्रकृति उत्तम है, मानव आत्मरक्षा चाहता है और यह भी चाहता है कि उसके किसी कार्य में बाधा न आये। मानव की प्रकृति में छल, कपट, द्वेष आदि दुर्गुण नहीं है।
- **प्राकृतिक जीवन में सामर्थ्य समायोजन और परिस्थिति पर नियंत्रण–** जीव विज्ञानवादियों के अनुसार प्राकृतिक जीवन के लिये एक मनुष्य में

सबसे पहले जीवन रक्षा का सामर्थ्य होनी चाहिये और प्राकृतिक वातावरण में समायोजन की क्षमता होनी चाहिये। जिस मनुष्य में यह शक्ति नहीं होगी वह जीवित नहीं होगा।

- **राज्य की केवल व्यावहारिक सत्ता**– रूसो राज्य का मूल्यांकन व्यक्ति के हित की दृष्टि से करते थे। एकतंत्र शासन प्रणाली व्यक्ति के हितों का हनन करता है। इसका विरोध रूसो ने किया और जनता के लिये और जनता के शासन का नारा लगाया और इस प्रकार राजनीति विज्ञान के भी वे प्रथम विचारक माने गये। पर शिक्षा के क्षेत्र में राज्य के कठोर नियंत्रण का विरोध करते हुये उन्होनें स्पष्ट किया कि राज्य को व्यक्ति के स्वतंत्र विकास में बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं है। जबकि अन्य प्रकृतिवादी राज्य से जन शिक्षा की आशा करते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11– प्रकृतिवादी ब्रह्माण्ड को क्या मानते हैं?

.....

12– प्रकृतिवादियों के अनुसार आत्मा की क्या संकल्पना है?

.....

13– प्रकृतिवादी संसार की सर्वश्रेष्ठ कृति किसे कहते हैं और क्यों?

.....

5.8 प्रकृतिवाद और शिक्षा

प्रकृतिवाद के जन्म आदर्शवादी विचारधारा की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। प्रकृतिवाद में कई उप सम्प्रदाय है और मूलरूप से एक होते हुये भी उनमें कुछ भिन्नता है। भौतिक विज्ञानवादी प्रकृतिवाद का शिक्षा के क्षेत्र में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, लेकिन यंत्रवादी प्रकृतिवादी तथा जीव विज्ञानवादी प्रकृतिवाद ने शिक्षा के क्षेत्र में बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं, उनका विवरण हम आगे पढेंगे–

प्रकृतिवादी शिक्षा की विशेषतायें– शिक्षा में प्रकृतिवाद का आन्दोलन बेकन व कामेनियस ने प्रारम्भ किया तथा रूसो ने इसे चरम सीमा पर पहुँचाया। प्रकृतिवादी शिक्षा पर क्रमबद्ध विचार हर्बर्ट स्पेन्सर की पुस्तक 'एजुकेशन इंटेलेक्चुअल मॉरल एण्ड फिजिकल" में प्राप्त होते हैं। स्पेन्सर क्रमबद्ध सिद्धान्त के प्रतिपादक

है अतः उनके अनुसार द्रव्य से चेतन आत्मा की उन्नति हुयी फलतः शिक्षा की परिभाषा है शिक्षा शरीर के अवयवों की उन्नति करती है, और उन्हें जीवन के योग्य बनाती है। इससे यह अभिप्रेतार्य निकलता है कि शिक्षा द्वारा मानव शरीर का इस प्रकार अनुकूलन प्रशिक्षण तथा समायोजन किया जा सकता है, जिसके फलस्वरूप जीवन को समग्रता के साथ जिया जा सके। प्रकृतिवादी मानव की प्रकृति को प्रधानता देता है। अस्तु इस दृष्टिकोण से शिक्षा मानव प्रकृति का उदात्तीकरण है। शिक्षा एक प्रकार का वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य के गुणों को उच्चाधार पर पहुँचाया जाता है। जीव वैज्ञानिकों के अनुसार– "शिक्षा वातावरण से अनुकूलन है' विकासवादी दृष्टिकोण से 'शिक्षा केवल प्राकृतिक विकास को बढ़ाती है और सच्ची शिक्षा तभी होती है जब बालक की प्रकृति, शक्तियां और प्रवृत्तियां न्यूनतम निर्देशन के साथ स्वतंत्र ढंग से विकसित होती है।" रूसों का विचार है कि प्रकृति द्वारा शिक्षा प्राकृतिक सरल मनुष्य को पुनः ला देगी जिसका एकमात्र कार्य एक मनुष्य होना है।

5. **प्रकृति का अनुसरण**– शिक्षा में प्रकृतिवाद का सबसे महत्वपूर्ण सूत्र कामोनियस ने प्रदान किया है, यह है– प्रकृति का अनुसरण करें। प्रकृतिवादियों के अनुसार बालक का स्वाभाविक विकास मात्र प्राकृतिक वातावरण के ही माध्यम से हो सकता है। विद्यालय का कृत्रिम वातावरण उतना उपयुक्त नहीं। प्रकृतिवादी शिक्षा में प्रकृति शब्द का प्रयोग दो अर्थों में करते हैं– भौतिक प्रकृति, बालक की प्रकृति। बालक की प्रकृति का अर्थ है– मूल प्रवृत्तियों, आवेग, प्रवृत्तियों और क्षमतायें जिन्हें बालक अपने जन्म के साथ लाता है। भौतिक प्रकृति, वाह्य प्रकृति है। बालक की प्रकृतिक– आन्तरिक प्रकृति है। बाह्य प्रकृति बालक को सीखने के नियम देती है।

2. **बालकेन्द्रिता शिक्षा**– प्रकृतिवादी शिक्षा की प्रक्रिया में बालक की केन्द्रीय स्थित मानते हैं। एडम्स के कथानुसार– *"शिक्षक जॉन को लैटिन पढ़ाता है पर प्रधानता है जॉन की न कि लैटिन शिक्षक की।"* बालक की शक्तियों एवं प्रवृत्तियों को ध्यान में रखना चाहिये तथा उनकी योग्यताओं और रूचियों के अनुकूल शिक्षा दी जानी चाहिये। मुनरो के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, प्रक्रिया तथा साधन, सभी सम्पूर्ण तथा बालक के जीवन तथा अनुभव के भीतर होने चाहिये।

3. **बालक को प्रकृति के अनुसार स्वतंत्रता**– प्रकृतिवादियों का कहना है कि बालक के लिये स्वतंत्रता आवश्यक है। वे कामेनियस के इस कथन में विश्वास करते हैं– *"प्रकृति ठीक समय पर कार्य करती है।"* बालक को उनकी रूचियों के अनुसार विकसित होने दिया जाय और उसके किसी

कार्य में बाधा न डाली जाय। वे इस बात पर विश्वास करते हैं – *"बालक अच्छा प्राणी है, खराब नहीं। वह जन्म के समय अच्छा होता है, और यदि भय तथा घृणा की सब बातों को दूर कर दिया जाय तो अच्छा ही रहता है।"*

4. **इन्द्रिय शिक्षण पर बल**– रूसो का कथन है – *"शिक्षा को इन्द्रियों का उचित प्रयोग करके ज्ञान का द्वार खोलना चाहिये।"* रूसो के अनुसार इन्द्रियां ज्ञान का द्वार हैं इन्द्रियों द्वारा सत्य की प्राप्ति होती है। रूसो के अनुसार 5 वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक के बच्चों की इन्द्रियों को प्रयोग में लाना चाहिये।

5. **पुस्तकीय शिक्षा अनावश्यक**– प्रकृतिवादी पुस्तकीय शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। रूसो ने शैशवास्था को मानसिक शिक्षा का काल माना है और उनका मत है शिक्षा का आधार करके सीखना निरीक्षण और अनुभव होना चाहिये। एडम्स ने लिखा है– *"शिक्षा में प्रकृतिवाद का सामान्य अर्थ– उन सब शिक्षा पद्धतियों से है जो विद्यालयों और पुस्तकों पर निर्भर न होकर– छात्र के वास्तविक जीवन के अध्ययन पर निर्भर रहती है।"*

6. **सह शिक्षा**– प्रकृतिवादी सह शिक्षा पर विश्वास करते हैं। उनके अनुसार बालक–बालिका को सह–शिक्षा दी जाये इसका कारण यह है कि सह–शिक्षा में विभेदीकरण नहीं होता। काम भावना की उदीप्ति विभेदीकरण के ज्ञान से शीघ्र होता है। पृथक–पृथक शिक्षा देने से यह भावना तीव्र होती है। अतः स्वाभाविक विकास के लिये सह–शिक्षा आवश्यक है। यौन सम्बंधी समस्याओं की ओर उचित धारणा बनाने पर प्रकृतिवादी दर्शन पर जोर देता है।

7. **मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति**– प्रकृतिवाद का मुख्य केन्द्र बालक की मनोवैज्ञानिक प्रवृति बनी, ऐसा विचार रॉस महोदय का है। मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति एवं आन्दोलन से शिक्षा में अचेतन का महत्व प्रकृतिवादी दर्शन का परिणाम कहा जाता है। मनोविश्लेषण ने यह खोज निकाला कि दुष्कृत्यों का मूल कारण अस्वाभाविक दमन है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

14– प्रकृतिवादी शिक्षा की कोई चार विशेषतायें बताइये।

.....

5.9 प्रकृतिवाद व शिक्षा के उद्देश्य

- **यन्त्रवादी प्रकृतिवादी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य है–** सम्बद्ध सहज क्रियाओं को उत्पन्न करना जो आधुनिक जीवन के लिये उपयुक्त क्रिया और विचार की आदतें हैं। शिक्षा का कार्य ऐसे व्यवहार का विकास करना है जिससे कि वह मशीन के समान कुशलतापूर्वक कार्य कर सके।
- **जीव विज्ञानवादी प्रकृतिवाद के अनुसार–** इन प्रकृतिवादियों का कहना है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के वर्तमान और भावी जीवन को सुरक्षित रखना है। इन नव–डार्विनवादियों के अनुसार– शिक्षा का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह व्यक्ति को जीवन के संघर्ष के लिये तैयार करे और इस प्रकार उसके जीवन को सुरक्षित रखें।
- **नव लैमार्कवादियों के अनुसार–** *"शिक्षा का उद्देश्य है– व्यक्ति को अपने वातावरण के अनुकूल करने के योग्य बनाना।"*
- **स्पेन्सर का विचार–** हरबर्ट स्पेन्सर का कथन है कि अपने आप की सुरक्षा आवश्यक है, और आत्म– सन्तोष मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ गुण है। अतः शिक्षा का उद्देश्य बालक की मूल प्रवृत्तियों और स्वाभाविक आवेगों का विकास करना है। इसके अतिरिक्त शिक्षा का उद्देश्य– बालक को आत्म संरक्षण और आत्म संतोष प्राप्त करने में भी सहायता देता है।
- **बर्नार्ड शा के विचार–** बर्नार्ड शॉ के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है विकास की गति और प्रजातीय प्रगति को तेज करना।
- **नन के विचार–** नन आदर्शवादी है पर शिक्षा के उद्देश्यों पर जीव विज्ञानवादी और प्रकृतिवादी दृष्टिकोणों से विचार किया है। उनके अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है– "व्यक्ति का स्वतंत्र विकास।" उनका दृढ़ विश्वास है कि जिस शिक्षा का उद्देश्य– प्रकृति के अनुसार व्यक्तिकता का विकास करना है केवल वही सच्ची शिक्षा है। सभी प्रकृतिवादियों के द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्यों का विश्लेषण करें तो उद्देश्य समग्र रूप से निम्नलिखित होंगे–
  - उचित सहज सम्बंध क्रियाओं का निर्माण।
  - मूल–प्रवृत्तियों का शोधन, मार्गान्तीकरण एवं समन्वय।
  - जीवन संघर्ष के लिये तैयारी।
  - वातावरण से अनुकूलन करने की क्षमता।
  - आत्म संरक्षण और आत्मसंतोष की प्राप्ति।

- विकास की गति में तीव्रता।
- प्रजातीय प्रगति की प्राप्ति।
- वैयक्तिकता का स्वतंत्र विकास।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

15– स्पेन्सर के अनुसार शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिये?

.....

16– नन शिक्षा के किन उद्देश्यों को उचित मानते हैं?

.....

5.10 प्रकृतिवाद व पाठ्यक्रम

रूमानी प्रकृतिवादी बालक की आरम्भिक शिक्षा के लिये किसी औपचारिक पाठ्यक्रम की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता है। प्रकृतिवादी भौतिक जीवन को ही सत्य मानते हैं और उसकी रक्षा एवं विकास पर ही सबसे अधिक बल देते हैं। उनके अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिये जो कि बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं की आवश्यकतायें पूरी कर सकें। इस विचार के प्रमुख प्रवर्त्तक रूसो नें अपनी रचना एमील में बच्चे के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करते हुये बताया कि शिक्षा को हर अवस्था की विशेषताओं के अनुसार होना चाहिये।

ये अवस्थाये चार होती है–

- शैशवावस्था– जन्म से 5 वर्ष तक
- बाल्यावस्था– 5 वर्ष से 12 वर्ष
- किशोरावस्था– 12 वर्ष से 15 वर्ष
- युवावस्था– 15 वर्ष से

- **शैशवावस्था**– खेलने–कूदने, गिरने पटकने एवं हर वस्तु को जानने की जिज्ञासा की अवस्था। अतः शिक्षा स्वाभाविक क्रिया के विपरीत होने की जगह अनुकूल हो। खिलौने इस समय की शिक्षा के उपयुक्त साधन है।

- **बाल्यावस्था–** बच्चे की हाथ–पॉव, आदि इन्द्रियों के विकास की अवस्था है, इसीलिये शिक्षा का रूप ऐसा हो कि बच्चे की इन्द्रियों को खुले रूप में विकसित होने का मौका मिले। प्रकृतिवादियों का मानना है कि सबसे पहले ज्ञानेन्द्रियों शक्तियुक्त होती है इसी से सबसे पहले इन्हीं की शिक्षा होनी चाहिये। इन्द्रियों का अनुभव ही इस समय की शिक्षा का माध्यम हो तो अच्छा हेागा । प्रकृतिवदियों ने बुरी आदतों से बचाने पर जोर दिया इस प्रकार की शिक्षा निषेधात्मक शिक्षा कहलायी।
- **किशोरावस्था–** इस अवस्था में ज्ञान पाने की अवस्था माना गया। पाने का अभिप्राय स्वयं की प्रयास द्वारा। रूसो के अनुसार इस समय तक वह इतना अनुभव पा चुका होता है, अतः नियमित अध्ययन को ही भी सहज स्वाभाविक रूप में पा लेगा। यह समय बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमताओं को एक–दूसरे का पूरक बनाना चाहिये।
- **युवावस्था–** यह अवस्था बच्चे को समाज का अंग बनाने का है। उसमे समाज का एक कुशल नागरिक बनने के गुण व शक्ति आ चुकी होती है। अतः यह अवस्था उसे सामाजिक और नैतिक कर्तव्यों से परिचित करने की सबसे उपयुक्त अवस्था है। रूसों ने इसे हृदय विकास के काल के रूप में देखा है और उसे सामाजिक और भौतिक विज्ञान विषय पढ़ाये जाने की संस्तुति की है।

इनके अतिरिक्त हम कुछ अन्य प्रकृतिवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम के बारे में जानेंगे।

कामेनियस के विचार– 'सब मनुष्यों को सब विषय पढ़ाना या वह सब विषयों में कुछ को चुनना आवश्यक नहीं समझता।

स्पेन्सर के विचार– मानव जीवन की प्रमुख क्रियायें एवं उनके अनुसार शिक्षा के विषय होने चाहिये, जो कि निम्नलिखित है–

- आत्म संरक्षण से सम्बंधित क्रियायें– शरीर–विज्ञान, स्वास्थ्य–विज्ञान।
- जीवन की आवश्यकताओं से सम्बंधित क्रियायें जैसे भोजन, वस्त्र, मकान भौतिक विज्ञान, गणित, भूगोल।
- संतति के पालन–पोषण से सम्बंधित क्रियाये– गृहशास्त्र, शरीर–विज्ञान, बाल मनोविज्ञान।
- व्यक्तियों की रूचियों, मनोरंजन एवं भावनाओं से सम्बंधित क्रियाये– कला, भाषा, साहित्य आदि।
- योग्य नागरिकता के विकास से सम्बंधित क्रियाये– इतिहास, नागरिकशास्त्र,

समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र।

रस्क ने स्पेन्सर के विचारों का निचोड़ देते हुये लिखा है–

"हरबर्ट ने इतिहास को केन्द्र बनाकर शिक्षा देने का प्रयास किया है और स्पेन्सर ने विज्ञान को केन्द्रीय विषय बनाकर शिक्षा देने की बात की है।'

हक्सले का विचार – पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषय होने चाहिये– शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य–विज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास, गृहशास्त्र, बाल मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, कला, भाषा और साहित्य।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

17– रूसो बच्चे के विकास को कितनी अवस्थाओं में विभाजित करते हैं?

.....

18– स्पेन्सर ने मानव जीवन की कितनी प्रमुख क्रियायें बतायी है?

.....

5.11 प्रकृतिवाद व शिक्षण विधियां

शिक्षण–विधियों के क्षेत्र में प्रकृतिवाद की देन महत्वपूर्ण है। प्रकृतिवाद ने प्राचीन और परम्परागत विधियों के विरूद्ध एक क्रांति कर दी। यह रटने और निष्क्रीय अभ्यास का विरोध तथा करके सीखने और "अनुभव द्वारा सीखने" का समर्थन करता है। रूसो ने स्पष्ट किया– *"अपने छात्र को मौखिक पाठ मत पढ़ाओ। उसे केवल अनुभव से सीखने दो। जब भी सम्भव हो अपने कार्य द्वारा पढ़ाये और शब्दों का सहारा तभी लें, जब कार्य करना सम्भव न हो।"*

प्रकृतिवादी शिक्षा की खेल विधि को बहुत उत्तम समझते है। खेल बालक की गुप्त शक्तियों को प्रदर्शित करता है। प्रकृतिवादियों के सिद्धान्तों ने अनेक शिक्षा पद्धतियों को जन्म दिया जैसे– ह्यूरिस्टिक पद्धति, डाल्टन पद्धति, माण्टेसरी पद्धति, निरीक्षण पद्धति और खेल पद्धति। प्रकृतिवादी विचारधारा का स्पष्ट सन्देश है कि *"अपनी विधियों को जितना हो सके आसान, सरल बनाओ। उन सभी बनावटी साधनों में विश्वास मत करो जो सीखने की प्रक्रिया को उलझन भरा बना देते हैं। अपने विद्यार्थियों को असलियत का सामना करने का अवसर दो। प्रतीक को वस्तु के साथ मिलाओ। जहां तक सम्भव हो सके, व्यक्तिगत खोज का क्रम बनाओ, प्रमाणों पर कम से कम निर्भर करो।"*

रविन्द्र नाथ टैगोर का मानना है –*" जो वस्तु प्राकृतिक एवं सहज होती है, उसमें यह विशेषता होती है, कि उसका आनन्द नित्य नया बना रहता है न कभी पुराना होता और न कभी विगड़ता है।"* टैगोर का मानना है कि बच्चे विश्व प्रकृति के एकदम निकट होते हैं, प्रकृतिवादी विधियां स्वतंत्रता के वातावरण में बालक को स्व–शिक्षा, आत्म–प्रदर्शन, रचनात्मक कार्य और संगठित विकास का अवसर देती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

19– कुछ प्रकृतिवादियों के सिद्धान्तों पर आधारित शिक्षण पद्धतियों का नाम बताइये।

.....

20– प्रकृतिवादी शिक्षण विधियों की क्या विशेषतायें है ?

.....

5.12 प्रकृति व शिक्षक

प्रकृतिवादी शिक्षा योजना में "शिक्षक" का स्थान गौण है। प्रकृतिवादियो का कहना है कि प्रकृति ही बालक का वास्तविक शिक्षक है। वे बालक की शिक्षा में शिक्षक को किसी प्रकार का भी हस्तक्षेप करने की आज्ञा नहीं देते हैं यदि वह ऐसा करता है और बालक पर अपना प्रभाव डालना चाहता है तो वे इसकी निन्दा करते है। शिक्षक का स्थान और कार्य पर रास ने अपने विचार व्यक्त किये और लिखा है–

"यदि शिक्षक का कोई स्थान है तो वह पर्दे के पीछे है। वह बालक के विकास का निरीक्षण करने वाला है न कि उसको सूचनाओ, विचारों, आर्दशों और इच्छा शक्ति को देने वाला या उसके चरित्र का निर्माण करने वाला है। बालक इन बातों को स्वयं ही कर लेगा। यह किसी भी शिक्षक की अपेक्षा यह अधिक अच्छी तरह जानता है कि उसे क्या, कब और कैसे सीखना है? उसकी शिक्षा – उसकी रूचियों और प्रेरणाओं का स्वतंत्र विकास है, न कि इसके लिये शिक्षक द्वारा किया गया कृत्रिम प्रयास।"

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

21– प्रकृतिवादी शिक्षक की क्या भूमिका मानते हैं?

.....

22– प्रकृतिवादी वास्तविक शिक्षक किसे मानते हैं?

.....

5.13 प्रकृतिवाद व अनुशासन

प्रकृतिवादी मुक्त्यात्मक अनुशासन का प्रतिपादन करता है, जिसके अनुसार बालक पर किसी प्रकार का बाह्य दबाव नहीं डाला जाता है। प्रकृतिवादियों के अनुसार बालक के विकास के लिये स्वतंत्रता आवश्यक है। निर्विघन स्वतंत्रता में ही बालक का विकास सम्भव है। रूसो का कथन है– *"बच्चों को कभी दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये।"* प्रकृतिवादी के अनुसार प्रकृति स्वयं बालक को संयमित एवं अनुशासित बनने में सहायक होती है। प्राकृतिक परिणामों के अनुसार अनुशासन प्रकृतिवादियों का नारा है।

प्राकृतिक परिणामों के अनुसार अनुशासन का सिद्धान्त अपने मत के अनुमोदन के लिये मनोविज्ञान का आश्रय लेता है। थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित प्रभाव के नियम के अनुसार यदि परिणाम सुखदायी होता है, तो उस अनुभव की आवृत्ति की जाती है, इसके विपरीत परिणाम दुःखद होने पर अनुभव की आवृत्ति नहीं होती।

प्रकृतिवादियों के अनुसार समाज–सम्मत व्यवहार ही अच्छा व्यवहार नहीं है, अपितु मनुष्य का अकृत्रिम सहज व्यवहार ही वांछनीय है। प्रकृतिवादी बालक को अनुभूति करवाकर यह बताया जाये कि व्यवहार का नियंता तथा नियामक वह स्वयं है। प्रकृतिवादी छात्र–संसद निर्माण करने में विश्वास करते हैं तथा छात्रों की सहायता से अनुशासन की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

23– प्रकृतिवादी कैसे अनुशासन का प्रतिपादन करता है?

.....

24– प्रकृतिवादी बालक को स्वतंत्र क्यों रखना चाहता है?

5.14 प्रकृतिवाद और आधुनिक शिक्षा

प्रकृतिवाद ने आधुनिक शिक्षा को महत्वपूर्ण योगदान दिया है, प्रकृतिवाद ने व्यवहारवाद को जन्म दिया। "बाल केन्द्रित शिक्षा" का उद्‌गम प्रकृतिवाद से माना जाता है। सबसे पहले प्रकृतिवाद ने 'शिक्षक लैटिन पढ़ता है।' वाक्य में संशोधन किया "शिक्षक जान को लैटिन पढ़ाता है।"

बालक की स्वतंत्रता का सर्वप्रथम उद्‌घोष प्रकृतिवादियों ने किया। प्रकृतिवादी शिक्षा का कार्यक्रम बालकों का अधिकार पत्र माना जाता है।

शिक्षा में मनोविज्ञान एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों का आरम्भ प्रकृतिवाद से हुआ। हमारी आधनिक शिक्षा में मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण स्थान उद्‌दीपन अनुक्रिया का सिद्धान्त छात्र अभिप्रेरणा का सिद्धान्त मूल्यांकन की नवीन विधियां आदि सभी मनोविज्ञान की देन है। खेल की प्रमुखता शिक्षा में इस विचारधारा की देन है।

प्रकृतिवाद का सबसे दुर्बल पक्ष बालक को उसकी नियति पर छोड़ देना है। आत्मा का अस्तित्व को इन्कार करके प्रकृतिवाद ने बालक को जड़ बना दिया है। शिक्षक को गौण स्थान देकर उपेक्षा की है।

परन्तु प्रकृतिवाद ने पुस्तकीय ज्ञान को हटाकर अनुभव तथा ज्ञान को महत्वपूर्ण स्थान दिया। प्रकृतिवाद ने शिक्षण–विधियों में क्रांति उत्पन्न की। प्रत्यक्ष, अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करना, शिक्षा में आगमन–प्रणाली ह्यूरिस्टिक प्रणाली आदि सभी आज हमारी शिक्षा प्रणाली में स्वीकार हो चुकी है। प्रकृतिवाद से यह गृहणीय है कि जो ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा दिया जा सकता है, उसे प्रत्यक्ष द्वारा देना चाहिये क्योंकि प्रत्यक्ष द्वारा अर्जित ज्ञान अधिक सुदृढ़ होता है। प्रकृतिवाद ने शिक्षा और ज्ञान की सभी शाखाओं पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है। आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान और समाजशास्त्र प्रकृतिवादी है।

प्रकृति की ओर लौटों इस विचारधारा का प्रमुख नारा है। इसका अभिप्राय यह है कि सभ्यता की जटिलता से दूर प्रकृति की शान्तिमय गोद की ओर चलो। इस प्रवृत्ति ने मनुष्य को प्रकृति के समीप लाने का प्रयास किया है। यह कहना सत्य होगा कि आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद का सम्वेत् रूप शिक्षा को एक उचित रूप आदर्श रूप प्रदान करने में सहायक होगा।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

25– प्रकृतिवाद के कुछ प्रमुख योगदान लिखिये?

.....

26– प्रकृतिवाद के कुछ दोष बताइये?

.....

5.15 सारांश

इस इकाई हमने प्रकृतिवाद का शिक्षा पर प्रभाव को पढ़ा और प्रकृतिवाद के अनुसार शिक्षा, उसके उद्देश्य, पाठ्यक्रम शिक्षण विधियां आदि का क्या रूप है, इस पर प्रकाश डाला है। इससे पूर्व हमने प्रकृतिवाद की ऐतिहासिक, पृष्ठभूमि सिद्धान्त एवं विशेषताओं को भी जानने का प्रयास किया। इससे इतना तो स्पष्ट है कि प्रकृतिवाद ने शिक्षा के क्षेत्र में नवीन एवं प्रगतिशील धारा प्रवाहित किया इस सम्बंध में मुनरो महोदय का कथन है –*"प्रकृतिवाद ने शिक्षा के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोणों के स्पष्ट निर्माण में प्रत्यक्ष प्रेरणा दी।"* प्रगतिशील शिक्षा, प्रगतिशील शिक्षा विधियों तथा प्रगतिशील विचारधारा को बढ़ाने का प्रथम श्रेय प्रकृतिवाद को ही है। दर्शन एवं शिक्षा में प्रयोगवाद प्रकृतिवाद का ही परिणाम कहा जा सकता है। यद्यपि शिक्षाशास्त्री प्रयोगवाद को आदर्शवाद तथा प्रकृतिवाद का मध्यमार्ग मानते हैं।

5.16 अभ्यास कार्य

प्रकृतिवादी शिक्षा की कुछ प्रमुख विशेषताओं की संक्षिप्त विवेचना कीजिये तथा उद्देश्यों, शिक्षण विधियों, पाठ्यक्रम, शिक्षक तथा अनुशासन के सम्बंध में उनके प्रवर्तकों के विचारों को बताइये।

5.17 चर्चा के बिन्दु

पाल मुनरो के अनुसार– प्रकृतिवाद ने शिक्षा की मनोवैज्ञनिक समाजशास्त्रीय और वैज्ञानिक धारणा के स्पष्ट निर्माण में प्रत्यक्ष प्रेरणा दी है। परन्तु इतनी बड़ी उपलब्धि के बाद भी किन बिन्दुओं पर प्रकृतिवाद असफल सा दिखायी पड़ता है, उनको इंगित कीजिये और एक सूची तैयार कर समीक्षा करें।

5.18 बोध प्रश्नों का उत्तर

1. पश्चिमी दर्शन से
2. मूर्त
3. रवीन्द्र नाथ टैगोर
4. डार्विन का क्रम विकास का सिद्धान्त
5. रूसो
6. प्रकृतिजन्य
7. सुखपूर्वक जीना
8. इन्द्रियजन्य ज्ञान
9. प्रकृति के अनुकूल
10. सत, अनश्वर एवं अविभाज्य

15. प्राकृतिक संरचना
12. पदार्थजन्य चेतन तत्व
13. मनुष्य
14. सहशिक्षा, मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, बालकेन्द्रिता, प्रकृति का अनुसरण
15. शिक्षा का उद्देश्य बालक की मूल प्रवृत्तियों और स्वाभामिक आवेगों का विकास
16. प्रकृति के अनुसार व्यक्तिकता का विकास
17. चार अवस्था, शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, युवावस्था
18. पांच क्रियायें, आत्म–संरक्षण, मूल आवश्यकता की पूर्ति, संतति पालन, व्यक्ति की रूचि, योग्य नागरिकता का विकास
19. ह्यूरिस्टिक पद्धति, डॉलटन पद्धति, किण्डरगार्डेन पद्धति, खेल पद्धति
20. स्वतंत्र वातावरण में स्वशिक्षा, आत्म–प्रदर्शन, रचनात्मक कार्य और संगठित प्रयास का अवसर

25. पर्दे के पीछे अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन

22. प्रकृति
23. मुक्त्यात्मक अनुशासन
24. स्वयं अनुभूति से अधिगम हेतु

25. बाल केन्द्रित शिक्षा, शिक्षा में मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति एवं नवीन व्यावहारिकता शिक्षण विधियां

26. बालक को नियति पर छोड़ना, शिक्षक को गौण स्थान देना

5.19 कुछ उपयोगी पुस्तके

- रस्क आर0आ0 (1972) : *शिक्षा के दार्शनिक आधार,* जयपुर : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- Butler J.D. (1951) : *Four Philosophies of Education*, New York Harper & Bros.
- Brubacher J.S. (1942) : *Modern Philosophies of Education*, New, York : Mac – Graw Hill Book Co.
- ओड एल0के0 (2005) : *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- पाल, गुप्त एवम् मदनमोहन (1995) : *शिक्षा दर्शन,* कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद
- चतुर्वेदी एस0 (1970) : *शिक्षा दर्शन,* लखनऊ, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ
- Kilpatrik W.H. (1954) : *Philosophy of Education*, New York, Macmillan & Co., 1954
- Henderson S.P. (1947) : *Introduction to Philosophy of Education*, Chicago University of Chicago.

इकाई 6 आदर्शवाद

संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 आदर्शवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

6.4 आदर्शवाद का अर्थ एवं परिभाषा

6.5 आदर्शवाद का आधार

6.6 आदर्शवादी दर्शन के प्रमुख तत्व

6.7 आदर्शवाद की प्रशाखायें

6.8 आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धान्त

6.9 आदर्शवाद एवं शिक्षा

6.10 आदर्शवाद और शिक्षा के उद्देश्य

6.11 आदर्शवाद और शिक्षक

6.12 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम

6.13 आदर्शवाद और शिक्षण विधियॉ

6.14 सारांश

6.15 अभ्यास कार्य

6.16 बोध प्रश्न के उत्तर

6.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

दर्शन जीवन के विभिन्न अनुभवों से प्राप्त एक निष्कर्ष है जो किसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु होता है। व्यापक रूप से दर्शन, जीवन, जीवन यापन के प्रति एक दृष्टिकोण होता है, अतएव जीवन में यह निश्चय है कि कुछ आदर्शों की स्थापना होगी जो जीवन को आगे बढ़ायेंगें। यह आदर्श–निर्माण एक प्रकार का विचार निर्माण होता है। मानव इन्हीं विचारों के सहारे अपने चारो ओर की वस्तुओं की कल्पना एवं व्याख्या करता है और करता रहेगा। विचारों की प्रक्रिया को सामान्य रूप देना एवं मान्यता देना दार्शनिक प्रक्रिया है। विचारों की प्रक्रिया के सहारे जीवन–लक्ष्य की प्राप्ति को प्रमुखता देने के कारण दर्शन के क्षेत्र में आदर्शवाद का विकास हुआ। हम इस इकाई में आदर्शवाद की विशेषतायें, सम्प्रत्यय, रूप

उद्देश्य, शिक्षक, शिक्षण प्रक्रिया, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अनुशासन आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगें कि–

- आदर्शवाद के उद्भव एवं विकास के विभिन्न चरणों को बता सकेंगे।
- आदर्शवाद का सम्प्रत्यय एवं परिभाषा बता सकेंगे।
- आदर्शवाद के विभिन्न रूपों की विवेचना कर सकेंगे।
- आदर्शवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आदर्शवाद के मूल सिद्धान्तों की व्याख्या कर पायेंगे।
- आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा की संकल्पना एवं विशेषता बता सकेंगे।
- आदर्शवाद शिक्षा के उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम का वर्णन कर सकेंगे।
- आदर्शवाद शिक्षण विधियों एवं अनुशासन की विशेषतायें बता सकेंगे।
- आदर्शवादयों के अनुसार शिक्षक के कर्तव्य बता सकेंगे।

6.3 आदर्शवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सृष्टि में दूसरे जीवधारियों से हमें पृथक किया हमारे मस्तिष्क ने, हमारे विचार–विमर्श, सोचने–समझने, सूझ–बूझ की शक्ति ने किया। इसी मस्तिष्क के कारण हममें भाषा विचार या तर्क करने की ताकत आयी, और विचारकों के जिस वर्ग ने मस्तिष्क को महत्व देते हुये विचार करने की प्रक्रिया में अपना ज्यादा विश्वास दिखाया वह विचारवादी कहलाये और इस विचारधारा को आदर्शवाद कहा गया। आदर्शवादी जीवन की एक बहुत पुरानी विचारधारा कही जाती है, जब से मनुष्य ने विचार एवं चिन्तन शुरू किया तब से वह दर्शन है।

इसके ऐतिहासिक विकास पाश्चात्य देशों में सुकरात और प्लेटो से मानते है। हमारे देश में भी उपनिषद् काल से ब्रह्म–चिन्तन पर विचार मिलते हैं, जहां आत्मा, जीव ब्राह्माण्ड पर विचार–विमर्श हुए और हम पश्चिमी देशों से पीछे नहीं रहे। अंग्रेजी के शब्द "आइडियलिस्म" आदर्शवाद का यथार्थ द्योतक है, परन्तु विषय–वस्तु के हिसाब से "आइडियलिस्म" के स्थान पर आइडिस्म अधिक समीप एवं अर्थपूर्ण जान पड़ता है।

पाश्चात्य जगत में ऐतिहासिक क्रम में प्लेटो से आदर्शवाद का आरम्भ माना जाता है। प्लेटो के अनुसार– *"संसार भौतिकता में नहीं है बल्कि उसकी वास्तविकता प्रत्ययों एवं विचारों से है।"* मनुष्य का मन प्रत्ययों का निर्माण करता

है। तर्क के आधार पर प्लेटो ने तीन शाश्वत विचार माने है। ये तीन विचार हैं– सत्यं, शिवम्, सुन्दरं। इन तीनों विचारों के द्वारा ही इन्द्रियगम्य वस्तुओं का निर्माण होता है। शिवं का विचार ही श्रेष्ठ माना गया है। इसका कारण यह है कि प्लेटो ने व्यैक्तिक मन और साथ–साथ समाजिक मन की परिकल्पना की है और यह भी माना कि वैयक्तिक मन सामाजिक मन से अलग नहीं रह सकता प्लेटो के विचारों का प्रभाव उसके द्वारा प्रभावित धर्म पर दिखायी दिया। हिब्रू परम्परा में ईश्वर को तर्कपूर्ण माना गया है। मानव तथा अन्य चेतन प्राणियों में क्या सम्बंध है इस पर हमारे हिन्दू धर्म एवं अन्य सभी धर्मों में काफी विवेचना हुयी है तथा विचार–विमर्श हुये है। धर्मों के अनुसार सभी प्राणी ईश्वर के अंश कहे गये यह आदर्शवादी दृष्टिकोण है, जिसके अनुसार सभी जीवित प्राणियों में चिद् होता है।

आगे चलकर रेने डेकार्टे का द्वितत्ववाद प्रसिद्ध हुआ। डेकार्टे का कहना है कि ईश्वर ने मन तथा पदार्थ दोनों की रचना की है। इन्द्रियज्ञान को डेकार्टे ने भ्रामक कहा है।

डेकार्टे के बाद स्पिनोजा ने आदर्शवाद को आगे बढ़ाया। स्पिनोजा ने अपना तत्व सिद्धान्त रखा है। स्पिनोजा के तत्व शाश्वत है वह पदार्थ नहीं है यह एक तत्व है, जिसे ईश्वर करहे हैं।

स्पिनोजा के बाद लाइबनीज का चिद्विन्दवाद दर्शन प्रसिद्ध हुआ। लाइबनीज के अनुसार चिद्बिन्दुओ से संसार निर्मित है यह चिद्विन्दु साधारण, अविभाज्य इकाई है। जटिल रूप में यह आत्मा कहलाती है। ईश्वर भी एक उच्च आत्मा वर्ग का चिद्विन्दु है। भारतीय दर्शन में भी लाइबनीज के समाज विचार है। तत्व मीमांसा के अनुसार ठीक लाइबनीज की तरह यह विचार है कि पदार्थ चिद् है तथा सभी वस्तुएं आध्यात्मिक परमाणुओं से एक–दूसरे के अनुकुल बनी हुई है।

बर्कले ने भी संसार की सत्ता को लाइबनीज की तरह माना है लेकिन दूसरे ढंग से। बकेले ने पदार्थ के अस्तित्व को आध्यात्मिक आधार पर ही माना है, इसीलिये उसने ईश्वर को ही वास्तविक माना है। अतः मन के द्वारा प्रत्यक्ष बना लेने पर ही पदार्थ का अस्तित्व हो जो विभिन्न संवेदनाआ, विचारों तथा इन्द्रियानुभवों के सहारे सिद्ध होता है। हमारे सामने जो सृष्टि है उसके पीछे आत्मा होती है। यह आत्मा ईश्वर है। ईश्वर ही एक तत्व है जो सभी मानसिक एवं भौतिक संसार के पीछे रहता है। बर्कले का दर्शन आत्ममत आदर्शवाद कहा जाता है।

मैंनुअल कांट एक दूसरे प्रमुख आदर्शवादी माने गये। कांट मानते हैं कि प्रतीति वाले अनुभवगम्य जगत के पीछे स्थगित वस्तु है। आत्मा की अमरता तथा स्वतंत्रता एवं नैतिक प्रधानता ने भारतीयों का विश्वास पहले से ही है। गीता दर्शन

में कहा है– *"नैन छिन्दति शास्त्राणि नैनं दहति पावकः, नैनं क्लेदयन्ति आपो नैनं शोषयते मारुतः"*। अर्थात् पाप, पुण्य, अच्छाई–बुराई आदि नैतिक नियमों की प्रधानता है और इन सबसे उपर ईश्वर का होना भारतीयों का प्राचीन विश्वास है।

कान्ट के प्रभाव से जर्मनी में फिश्टे व हेगले का अविर्भाव हुआ जिन्होनें आदर्शवाद के विकास में अपने योगदान दिये। फिश्टे ने जीवन के भौतिक पक्ष पर बहुत बल दिया। इसने वास्तविकता को नैतिकता से पूर्ण इच्छाशक्ति माना तथा इस प्रतीत्यात्मक जगत को मनुष्य की इच्छा शक्ति को विकसित करने हेतु बताया, जिससे उसके चरित्र का निर्माण होता है। समीम एवं असीम आत्मा की भावना भारतीय दर्शन में भी पायी जाती है तथा जड़ प्रकृति की ओर फिश्टे का अनात्मक जगत संकेत करता है।

फिश्टे के बाद हेगेल ने आदर्शवादी दर्शन के क्षेत्र में प्रभाव डाला इनके दर्शन को विश्व चैतन्यवाद कहा है, इन्होनें समस्त विश्व की सम्पूर्ण के रूप में देखा और अनुभव के प्रत्येक प्रकरण की सम्पूर्णता से जुड़ा हुआ बताया। हेंगेल के अनुसार इस प्रकार अनन्त आत्मा अथा ईश्वर का ब्रह्म रूप संसार है और संसार को समझना ईश्वर का रूप समझने के लिये आवश्यक भी है क्योंकि ज्ञान के ब्रह्म एंव आंतरिक दो रूप है। भारतीय विचारधारा भी ईश्वर को सर्वभूतेषु एवं सर्वभूत हितः कहा है।

हेगले के प्रभाव शेलिंग तथा शापेनहावर पर पड़ा। शेलिंग ने चरम को आत्म एवं अनात्म, ज्ञेय एवं अज्ञेय से अलग एक सत्ता मानी है। एक प्रकार से भारतीय द्वैता द्वैत की भावना इसमें पायी जाती है। शापेनहावर ने अपने चरम को परम इच्छा में बदल दिया और कहा जगत मेरा विचार हैं इस प्रकार इच्छा को परम श्रेष्ठ बताया। शापेनहावर ने जड़ प्रकृति पर दृष्टि जमाई और उसे अचेतन कहा। जड़ प्रकृति को चरम नहीं कहा जा सकता है। इन सब दार्शनिकों का प्रभाव फ्रांस, इटली, रुस, इंग्लैण्ड तथा अमेरिका के दार्शनिकों पर काफी पड़ा है। फ्रांस में बर्गसन क्रोस तथा जेन्टाइल जैसे आदर्शवादी हुये। रुस में मार्क्स एवं एंजेल हुये और इंग्लैण्ड में कालेरिज ग्रीन, स्अग्लि, केयर्ड, बोसैंके और ब्रेडले जैसे आदर्शवादी बढ़ें।

भारत में वैदिक काल में बहुतत्तवादी आदर्शवादी थे। इस्लामी दर्शन के साथ अद्वैतवाद, द्वैताद्वतवाद, विशिष्ट द्वैतवाद आदि रुप मिलते है। आज भी इनके पोषक दयानन्द, विवेकानन्द, अरांवन्द, टैगोर, गांधी, रामकृष्ण, राधाकृष्ण तथा कुछ मुस्लिम विचारक जैसे अबुल कलाम आजाद, जाकिर हुसैन, सेयदेन जैसे शिक्षाविद् गिने जाते है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1– चिदविन्दुवाद दर्शन के प्रतिपादक कौन थे?

.....

2– द्वितत्तवाद दर्शन का क्या आधार है?

.....

3– बर्कले का दर्शन किस नाम से जाना गया?

.....

4– भारत का द्वैताद्वैत दर्शन किस पश्चिमी विचार के विचारक में दिखा?

.....

6.4 आदर्शवाद का अर्थ एवं परिभाषा

आदर्शवाद अंग्रेजी के आइडियलिज्म का शाब्दिक अर्थ है। यह दर्शन की एक शाखा के लिये प्रयुक्त होता है। इस दर्शन में उच्च आदर्शों की बात की जाती है। इस दर्शन से सम्बंधित दार्शनिक विचार की चिरन्तन सत्ता में विश्वास करते हैं, अतः मूलतः यह दर्शन "विचारवादी दर्शन अथवा आइडियालिज्म" है। हिन्दी में उसका शब्दतः अनुवाद उभर आया। यद्यपि "विचारवाद" शब्द का प्रयोग करना उपयुक्त होता परन्तु शब्द की रूढ़ प्रकृति को ध्यान में रखकर यहां आदर्शवाद शब्द का प्रयोग किया जा रहा है।

आदर्शवाद के अनुसार सिर्फ विचार ही सत्य है इसके सिवा सत्य का अर्थ और रूप नहीं। हमारा हर व्यवहार मस्तिष्क से ही नियंत्रित होता है, इसलिये मस्तिष्क ही वास्तविक सत्य है भौतिक शरीर तो इसकी छाया मात्र है। मनुष्य वास्तव में आत्मा ही है। शरीर तो केवल इसका कवच मात्र ही है, जो नष्ट हो जायेगा यानि मुनष्य असल में आत्म रूपी सत्य है। पाश्चात दर्शन में ये मनस के रूप में देखा गया। इसी को बुद्धि भी कहा गया विचार ही प्रमुख तत्व है। विचार मस्तिष्क देता है अतः इस प्रकार की विचारधारा विचारवादी या प्रत्ययवादी भी कहलायी और विश्वास करने वाले आध्यातमवादी कहलाये।

- गुड महोदय के अनुसार– *"आदर्शवाद वह विचारधारा है, जिसमें यह माना*

जाता है, कि पारलौकिक सार्वभौमिक तत्वों, आकारों या विचारों में वास्विकता निहित है और ये ही सत्य ज्ञान की वस्तुएं है जबकि ब्रह्म रूप मानव के विचारों तथा इन्द्रिय अनुभवों में निहित होते हैं, जो विचारों की प्रतिच्छाया के अनुरूप के समान होते हैं।"

- रोजन– *"आदर्शवादियों का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड की अपनी बुद्धि एवं इच्छा और सब भौतिक वस्तुओं को उनके पीछे विद्यमान मन द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।"*
- हार्न के अनुसार– *"आदर्शवादियों का सार है ब्रह्माण्ड, बुद्धि एवं इच्छा की अभिव्यक्ति है, विश्व के स्थायी तत्व की प्रकृति–मानसिक है और भौतिकता की बुद्धि द्वारा व्याख्या की जाती है।"*
- हैण्डरसन– *"आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है। इसका कारण यह है कि आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य और जीवन में सबके महत्वपूर्ण पहलु है।"* आदर्शवादी यह मानते हैं कि व्यक्ति और संसार– दोनो बुद्धि की अभिव्यक्तियां हैं। वे कहते हैं कि भौतिक संसार की व्याख्या मन से ही की जा सकती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5–आदर्शवाद को विचारवाद क्यों कहा जा सकता है ?

.....

6–आदर्शवादी मनुष्य और संसार को किसकी अभिव्यक्ति मानते हैं?

.....

6.5 आदर्शवाद का आधार

आदर्शवाद का आधार विचार– आदर्शवाद का शुद्ध नाम विचारवाद होना चाहिये क्योंकि इसका मुख्य आधार विचार है। जगत की वास्तविकता विचारों पर आश्रित है। प्रकृति एवं भौतिक पदार्थ की सत्ता विचारों का कारण है। आदर्शवाद का आधार भौतिक जगत न होकर मानसिक या आध्यात्मिक जगत है। विचार अन्तिम एवं सार्वभौमिक महत्व वाले होते हैं। वे सार अथवा भौतिक प्रतिरूप है जो जगत को आकार देते हैं, ये मानदण्ड है जिनसे इन्द्रिय अनुभव योग्य

वस्तुओं की जॉच होती है।

आदर्शवाद का आधार आत्मा– एक दूसरा आधार आन्तरिक जगत है जिसे आत्मा या मन कहते हैं। इसी के कारण विचार प्राप्त होते और उन विचारों को वास्तविकता मिलती है जगत का आधार मनस है। यह यांत्रिक नहीं है, जीवन हम जटिल भौतिक रासायनिक शक्तियों में ही नहीं घटा सकते। यह मनस पर आध ाारित है। पदार्थ को मनस का प्रकृतिकृत बाह्य रूप माना जाता है।

आदर्शवाद का आधार तर्क व बुद्धि – आदर्शवाद का तृतीय आधार तर्क एवं बुद्धि कहा जा सकता है। इस सम्बंध में प्लेटो और सुकरात के विचार एक प्रकार से मिलते है कि मनुष्य में ही तर्क की शक्ति है और तर्क द्वारा ही विचार प्राप्त होते हैं।

आदर्शवाद का आधार मानव – आदर्शवाद का चौथा आधार मानव माना जा सकता है। आत्मा उच्चाशय एवं विचार, तर्क और बुद्धि से युक्ति होती है। मानव वह प्राणधारी है जिसमें अनुभव करने उनहें धारण करने और उन्हें उपयोग में लाने की विलक्षण शक्ति होती है। मानव सभी प्राणियों व पशुओं में सर्वश्रेष्ठ इसी कारण गिना जाता है क्योंकि महान अनुभव कर्ता है और उसे गौरव एवं आधार दिया जाता है, और ईश्वर के अन्य सभी कार्यों पर उसका आधिपत्य होता है। मनुष्य में जो आत्मा होती है वास्तव में विभिन्न उच्च शक्तियों उसमें निहित होती है, उसी में तर्क, बुद्धि, मूलय नैतिक धार्मिक और आध्यात्मिक सत्तायें होती है।

आदर्शवाद का आधार राज्य – आदर्शवा का पॉचवा आधार हेगेल ने राज्य को माना है। इस सम्बंध में कर्निघम का विचार है कि हेगेल के लिये राज्य महान आत्मा का संसार में सर्वोच्च प्रकाशन है जिसका समय के द्वारा विकास सबसे बड़ा आदर्श है। राज्य दैवी विचार है इस पृथ्वी पर जिसका अस्तित्व है। इससे यह ज्ञात होता है कि राज्य की संकल्पना आदर्शवादी आधार के कारण ही है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7– आदर्शवादी आत्मा को क्या मानते हैं?

.....

8–आदर्शवादी मनुष्य को विलक्षण शक्ति से परिपूर्ण क्यों मानते हैं?

.....

6.6 आदर्शवादी दर्शन के प्रमुख तत्व

तत्व मीमांसा– सभी आदर्शवादियों की मान्यता है कि यह जगत भौतिक नहीं अपितु मानसिक या आध्यात्मिक है। जगत विचारों की एक व्यवस्था, तर्कना का अग्रभाग है। प्रकृति मन की क्रिया या प्रतीति है। भौतिक सृष्टि का आधार मानसिक जगत है, जो उसे समझता है तथा मूल्य प्रदान करता है। मानसिक जगत के अभावे में भौतिक जगत अर्थहीन हो जायेगा। आदर्शवाद के अनुसार यह जगत सोद्देष्य है।

स्व अथवा आत्मा– आदर्शवादी स्व की प्रकृति आध्यातिमक़ मानता है तथा तत्व मीमांसा में "स्व" को सर्वोपरि रखता है। यदि अनुभव का जगत ब्रह्म सृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है, तो अनुभवकर्ता मनुष्य तो और भी अधिक महत्वपूर्ण होना चाहिये। आदर्शवाद के अनुसार "स्व" की प्रकृति स्वतंत्र है उनमें संकल्प शक्ति है, अतः वह भौतिक सृष्टि में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है। क्रम विकास की प्रक्रिया में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ इकाई है।

ज्ञान मीमांसा में आदर्शवाद– आदर्शवादी ज्ञान एवं सत्य की विवेचना विवेकपूर्ण विधि से करते हैं। वे ब्रह्माण्ड में उन सामान्य सिद्धान्तों की खोज करने का प्रयास करते है, जिनको सार्वभौमिक सत्य का रूप प्रदान किया जा सके। इस दृष्टिकोण से उनकी धारणा है कि सत्य का अस्तित्व है, परन्तु इसलिये नहीं है कि वह व्यक्ति या समाज द्वारा निर्मित किया गया है। सत्य को खोजा जा सकता है। जब उसकी खोज कर ली जायेगी तब वह निरपेक्ष सत्य होगा आदर्शवादियों की मान्यता है कि ईश्वर या निरपेक्ष मन या आत्मा सत्य है।

मूल्य मीमांसा में आदर्शवाद– शिव क्या है? इसके विषय में आदर्शवादियों का कहना है कि सद्जीवन को ब्रह्माण्ड से सामंजस्य स्थापित करके ही व्यतीत किया जा सकता है। निरपेक्ष सत्ता का अनुकरण करके ही शिव या अच्छाई की प्राप्ति की जा सकती है। आदर्शवादियों का मत है कि जब मनुष्य का आचरण, सावैभौमिक नैतिक नियम के अनुसार होता है तो वह स्वीकार्य होता है सुन्दर क्या है? आदर्शवादियों के अनुसार यह निरपेक्ष सत्ता सुन्दरम है। इस जगत में जो कुछ भी सुन्दर है, यह केवल उसका अंशमात्र है, अर्थात् उसकी प्रतिछाया है। जब हम कला के किसी कार्य को सौन्दर्यनुभूति करते हैं, तब हम ऐस इसलिये करते हैं, क्योंकि वह निरपेक्ष सत्ता का सच्चा प्रतिनिधि है। आदर्शवादी संगीत को सर्वोत्तम प्रकार की सौन्दर्यात्मक रचना मानते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9–आदर्शवाद के अनुसार सत्यं शिवं सुन्दरं क्या है?

.....

.....

10–आदर्शवादी "सत्य" के विषय में क्या धारणा रखते है?

.....

6.7 आदर्शवाद की प्रशाखायें

आदर्शवादी दर्शन की अनेक शाखाये–प्रशाखायें है, परन्तु उनमें प्रमुख पॉच है–

5. प्लेटो का वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद।
2. बर्कले का व्यक्तिनिष्ठ आदर्शवाद।
3. कान्ट का प्रपंचात्मक आदर्शवाद।
4. हेगले का द्वन्द्ववाद।
5. आधुनिक ब्रिटिश अमरीकी आदर्शवाद।

प्लेटो का वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद–इस शाखा को यथार्थवादी आदर्शवाद भी कहा जाता है। प्लेटो के अनुसार विचार सनातन, सर्वव्यापी तथा सार्वकालिक होते है। उनका अस्तित्व अपने आप में होता है। वे न तो ईश्वर, न जगत पर आश्रित रहते हैं। इसका पूर्व भी अस्तित्व था, तथा हमारे अन्त के पश्चात् भी वे रहेंगे। विचार इस जगत की वस्तुओं का सार है। इन सनातन विचारों की अपूर्ण प्रतिकृति हम अनुभव द्वारा मालूम करते है। प्लेटो के अनुसार इन पूर्ण विचारों की प्रतीति ऐन्द्रिक ज्ञान की अपेक्षा विवेक ज्ञान से होती है। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान अपूर्ण तथा असंगत होता है, जबकि विवेक ज्ञान से सिद्धान्तों की पकड़ आती है, जो हमेशा सत्य होते हैं।

बर्कले का व्यक्तिवादी आदर्शवाद– जॉन लॉक ने न्यूटन के सिद्धान्त को स्वीकार किया कि जगत का आधार पुदगल है, जिसमें संवेदनीय लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई, रंग ध्वनि, दूरी,दबाव आदि संवेदन अन्तर्निहित है। बर्कले ने पुदगल की सत्ता को अस्वीकार किया तथा गुणों के द्वैत को भी। उसके अनुसार हम केवल

गुणों को देखते हैं, गुणी जैसी किसी चीज को नहीं देखते। वस्तु गुणों का वह समूह मात्र है, और गुण मनोगत (आत्मगत) है, अतः केवल मनस् या आत्मा का अस्तित्व है, वस्तु का नहीं। इसी आधार पर उसने यह निष्कर्ष निकाला कि न केवल गौण गुण अपितु प्रधान गुण भी मानसिक है, न कि भौतिक। बर्कले के अनुसार स्व का सम्बंध हमारा ज्ञान परोक्ष तथा अनुमानित ज्ञान है, जिनका इन्द्रियों से अनुभव किया जा सके।

कान्ट का प्रपंचात्मक आदर्शवाद – प्लेटो तथा बर्कले की भांति कांट भी पदार्थ को सत्य नहीं मानता। वह तर्कनाबुद्धि को हमारे सभी अनुभवों का समन्वयकारी केन्द्र मानता है। उसके अनुसार जागतिक पदार्थ का ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से न होकर परोक्ष रूप से होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के लिये कांट दिक और काल दो तत्वों को प्रमुख मानता है। इन्ही दो गुणों के फलस्वरूप हम बाह्य जगत का ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान भी विश्रृखलित होता है, उसे समन्वित रूप में ग्रहण करने के लिये कांट तर्कना को आवश्यक मानता है। आत्मीकरण की इस प्रक्रिया को कांट की अवधारणा नाम से जाना जाता है, ज्ञेय प्रत्ययों को कांट ने 12 भागों में विभक्त किया है।

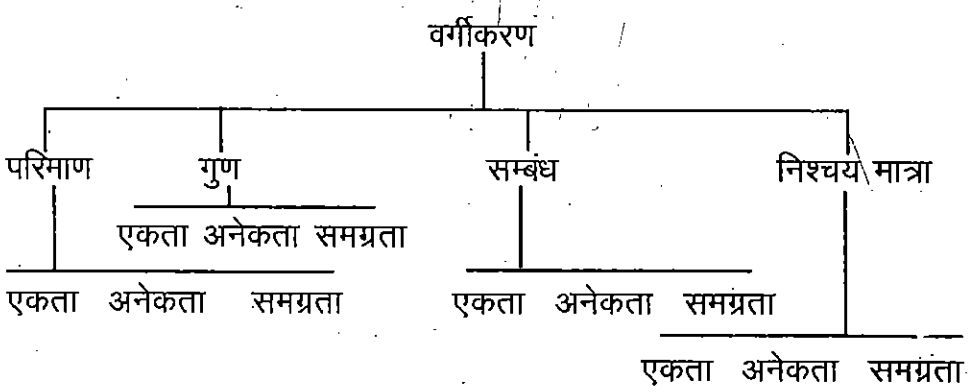

कांट ने मानव आत्मा अथवा "स्व" को सर्वोपरि माना। सभी आदर्शवादियों के समान वह भी स्व को मनस युक्त मानता है भौतिक नहीं। कांट के अनुसार मनस् दिक् और काल का सर्जक है, तथा आवधारणा से उपर्युक्त वर्गीकरण का धारक है मनुष्यात्मा सर्वोपरि है।

हेगल का द्वन्द्ववाद– हेगल के अनुसार सत्ता तथा उससे सम्बंध का हमारा ज्ञान समरूप है एवं हमारा ज्ञान तर्क बुद्धि परक होता है और स्वयं सत्ता कि इस तर्कबुद्धि परक व्यवस्था के कारण मनुष्य का ज्ञान सत्ता को उसी सीमा तक ग्रहण कर पाता है, जिस सीमा तक हमारे ज्ञान तथा सत्ता के बीच समरूपता हो। हेगल की मान्यता है कि विश्व निर्बाध गति से सक्रिय विकास की ओर बढ़ रहा है इस क्रम विकास की प्रक्रिया द्वारा विश्व अपने आप में अन्तर्निहित उद्देश्य की ओर बढ़ रहा है। इस क्रम विकास का प्रयोजन अपने आप में निहित लक्ष्य तथा नियति के बारे में सचेत होना है। हेगल इसी क्रम विकास के विचार को आगे

बढ़ाते हुये कहता है कि "सत्ता" परम–तत्व के मन में विचार का विकास है। ब्रह्माण्ड चेतना (परमेश्वर) सत्ता के रूप में तीन स्थितियों में विकसित होती है यथा, स्थापना, प्रतिस्थापना तथा संस्थापना। हेगल इसे अधिकाधिक पूर्णता की ओर बढ़ने की प्रक्रिया मानता है।

नैतिकता का सिद्धान्त – इस द्वन्द्वात्मक चिन्तन शैली को हेगल नैतिकता के क्षेत्र में भी प्रयुक्त करता है। समूह की नैतिकता जो कि सामाजिक संस्थाओं में परिलक्षित होती है, वैयक्तिक नैतिकता का सही मार्ग दर्शन कर सकती है।

आधुनिक आदर्शवाद – यूरोप में आदर्शवाद का जो आरम्भ जर्मनी में हुआ था, वह हेगल के साथ समाप्त हुआ। मार्क्स ने हेगल के द्वन्द्वावद को अपनाया परन्तु तत्व मीमांसा में भौतिकवाद को ग्रहण किया। इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड, इटली तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में आदर्शवादी विचारधारा ने नया रूप ग्रहण किया। ब्रिटेन में सेम्युअल,, कालरिज, जेम्स, हचिसन, स्टलिंगि, जान केअर्ड, बर्नाड, बोसाके ब्रेडले नन आदि का नाम लिया जाता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11–कांट के प्रपंचात्मक आदर्शवाद में "स्व" की क्या संकल्पना है?

.....

12– प्लेटो के वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद का सार क्या है?

.....

6.8 आदर्शवाद के प्रमुख सिद्धान्त

थामस और लैंग ने आदर्शवाद के निम्नलिखित सिद्धान्त बताये हैं–

- वास्तविक जगत मानसिक एवं आध्यात्मिक है।
- सच्ची वास्तविकता आध्यात्मिकता है।
- आदर्शवाद का मनुष्य में विश्वास है क्योंकि वह चिन्तन तर्क एवं बुद्धि के विशेष गुणों से परिपूर्ण है।
- जो कुछ मन संसार को देता है, केवल वही वास्तविकता है।
- ज्ञान का सर्वोच्च रूप अन्तदृष्टि है एवं आत्मा का ज्ञान सर्वोच्च है।
- सत्यं शिवं सुन्दरं के तीनों शाश्वत मूल्य हैं और जीवन में इनकी प्राप्ति करना अत्यान्तावश्यक है।

- इन्द्रियों की सच्ची वास्तविकता को नहीं जाना जा सकता है।
- प्रकृति की दिखायी देने वाली आत्म निर्भरता भ्रमपूर्ण है।
- ईश्वर मन से सम्बंध रखता है।
- भौतिक और प्राकृतिक संसार– जिसे विज्ञान जानता है, बास्तविकता की अपूर्ण अभिव्यक्ति है।
- परम मन में जो कुछ विद्यमान है वही सत्य है और आध्यात्मिक तत्व है।
- विचार, ज्ञान, कला, नैतिकता और धर्म जीवन के महत्वपूर्ण पहलू है।
- हमारा विवेक और मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि ही सत्य ज्ञान प्राप्त करने का सच्चा साधन है।
- मनुष्य का विकास उसकी भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों पर निर्भर करता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

13– मनुष्य के विकास का आधार क्या है?

.....

14– सत्यं शिवं सुन्दरं की प्राप्ति को आदर्शवादियों ने क्यों आवश्यक माना है?

.....

15– सर्वोच्च ज्ञान आदर्शवादियों ने किसे माना है?

.....

6.9 आदर्शवाद एवं शिक्षा

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि आदर्शवाद के अनुसार मनुष्य को केवल प्राकृतिक उपादान न मानकर सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट कृति मानता है। आदर्शवादी के लिये प्राकृतिक वातावरण से अधिक सांस्कृतिक वातावरण का महत्व है। क्योंकि वह मनुष्य को अपनी उपलब्धि है। अपनी सांस्कृतिक निधि का आत्मीकरण करके व्यक्ति उसे आगे बढ़ाने में सक्षम बनाता है। इस दृष्टि से शिक्षा की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। प्राकृतिक वातावरण के साथ मनुष्य का अभ्यनुकूलन

बिना शिक्षा के भी हो सकता है, परन्तु सांस्कृतिक वातावरण तो ग्रहण करना पड़ता है और उसे आत्मसात करना पड़ता है। इस प्रक्रिया को समाजशास्त्र में संस्कृति संक्रमण अथवा सामाजीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। भारतीय परम्परा में इसे संस्कारी बनाना कहा जाता है। यह कार्य शिक्षा के बिना सम्भव नहीं है। अतः आदर्शवाद में शिक्षा मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिये न केवल उपयोगी है अपितु अनिवार्य है।

आदर्शवादियों ने अपने दार्शनिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये शिक्षा को अपने अनुसार परिभाषित किया है–

- **प्लेटो के अनुसार**– *"शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को वह पूर्णता प्रदान करना है जिसके कि वे योग्य है।"*
- **महात्मा गांधी के अनुसार**– *"शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सवोत्तकृष्ट विकास से है।"*
- **शंकराचार्य के अनुसार**– *"सः विद्या या विमुक्तये।'*
- **पेस्टालाजी के अनुसार**– *"मनुष्य की स्वाभाविक शक्तियों का प्राकृतिक, सर्वांगीण और प्रगतिशील विकास ही शिक्षा है।"*
- **एडीसन के अनुसार**– *"शिक्षा जब किसी श्रेष्ठ पुरुष के मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है, तब उसके सभी सुप्त गुणों और पूर्णताओं को बाहर प्रकट कर देती है।"*
- **हरबर्ट के अनुसार**– *"शिक्षा व प्रक्रिया है जिसके द्वारा सद्गुणों की प्राप्ति होती है।"*

इस प्रकार हम कह सकते है कि आदर्शवादी शिक्षा का उद्देश्य बालक को संस्कारी बनाना है, और शिक्षा न केवल व्यक्ति का विकास करती है अपितु मानव समाज को बेहतर बनाती है। शिक्षा से व्यक्ति परिपक्व बनता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

16–आदर्शवादी शिक्षा के किन कार्यो को महत्वपूर्ण मानते हैं?

.....

.....

6.10 आदर्शवाद और शिक्षा के उद्देश्य

पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि आदर्शवाद के अनुसार मनुष्य की व्याख्या न तो भौतिक आधार पर की जा सकती है और मुनष्य इसीलिये मुनष्य है क्योंकि उसमें आत्मा का निवास है। इस प्रकार आदर्शवाद में मानव व्यक्तित्व की सर्वोच्च तथा सर्वोत्तकृष्ट ईश्वरीय कृति माना है और आदर्शवादीयों के अनुसार मानव जीवन का लक्ष्य यही है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने और उसकी अनुभूति कर सके।

- **व्यक्तित्व का उत्कर्ष एवं आत्मानुभूति**– रॉस एवं रस्क के अनुसार आदर्शवादी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का उत्कर्ष या आत्मानुभूति है। आत्मानुभूति के चार प्रमुख सोपान है।

निम्न स्तर– शारीरिक तथा जैविक "स्व" का है।

द्वितीय स्तर– शारीरिक "स्व" के ऊपर सामाजिक "स्व" की आत्मा है। यह हमारे सामाजिक नियमों की स्वीकृति सामाजिक हित के लिये वैयक्तिकता का त्याग इत्यादि लक्षण "स्व" की अनुभूति के सामाजिक स्तर के अन्तर्गत आते है।

तृतीय स्तर– बौद्धिक "स्व" की अनुभूति है, जिसके अन्तर्गत सामाजिक स्वीकृति से व्यवहार नियंत्रित नहीं होता, अपितु तर्कना एवं बुद्धि विवेक के द्वारा वह "स्व" की अनुभूति करता है। वह सद्–असद् तथा श्रेयस एवं प्रेयस में तर्क बुद्धि द्वारा भेद कर सकता है और उसका आचरण चिन्तन एवं विश्वास विवेकपूर्ण हो जाता है।

चतुर्थ स्तर– आध्यात्मिक "स्व" का है जिसमें केवल तर्कनापरक बौद्धिक शान्ति नहीं मिलती है अपितु सम्पूर्ण व्यक्तित्व का रूपान्तरण हो जाता है। गुण सहज हो जाते है और वे जीवन के सहज अंग हो जाते हैं। उस स्थिति में व्यक्ति का विश्वास के साथ तादातम्य हो जाता है। रस्क ने लिखा है– *"आदर्शवाद से विशेष रूप से सम्बंधित शिक्षा का उद्देश्य – व्यक्तित्व का उत्कर्ष या आत्मानुभूति अर्थात् आत्मा की सर्वोक्षम शक्तियों को वास्तविक रूप देना।"*

आदर्शवाद–मानव जीवन की श्रेष्ठता को सबसे अधिक महत्व देता है इसीलिये यह व्यक्तित्व के उत्कर्ष को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य घोषित करता है।

प्लेटो ने स्पष्ट लिखा है– *"आत्मानुभूति द्वारा व्यक्ति को पूर्णता या आदर्श व्यवस्था में पहुँचना– शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है।"*

- **सत्यं शिवं सुन्दरं की अनुभूति–** विश्वात्मा अवर्णनीय होते हुये भी उसका वर्णन तीन रूपों में किया जाता है। वह सत्य है शिव अथवा कल्याणकारी है। आदर्शवाद के अनुसार अनुभूति की चरम सीमा पर व्यक्ति को सत्यं शिवं सुन्दरं की अनुभूति की होनी चाहिये। सत्यं शिवं सुन्दरं की व्याख्या डॉ0 पाण्डेय के शब्दों में इस प्रकार है– "सत्य परिवर्तन में नहीं है, प्रकरण में नहीं है, प्रकाशन में नहीं है अपूर्ण भौतिक जगत में नहीं है, सत्य सापेक्ष नहीं है। यह निरपेक्ष है, चरम है, अविनाशी है, प्रत्यात्मक है तथा सम्पूर्ण विश्व का आधार है उसी निरपेक्ष सत्य का ज्ञान कराना ही शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये। जो सत्य है वह शिव भी है शिवत्व तो परम शिव में है और उसी परम् शिव की अनुभूति करना चाहिये। सौन्दर्य की उपासना होनी चाहिये। सौन्दर्य चरम सत्ता है वही परम शिव है और वहां हमारी व्यासना का विषय है।"

- **सांस्कृतिक विरासत की वृद्धि** – आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य – सांस्कृतिक विरासत की समृद्धि है। आदर्शवाद मनुष्य की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत पर बहुत बल देता है। मनुष्य ने इन्हें अपने रचनात्मक कार्यों द्वारा प्राप्त किया है। रॉस का कथन है– *"ध र्म, नैतिकता, कला, साहित्य, गणित और विज्ञान विभिन्न गुणों में किये जाने वाले मनुष्य के नैतिक, मानसिक और सौन्दर्यात्मक कार्यों के परिणाम है।"*

  सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत मनुष्य जाति की समान सम्पत्ति है। यह मानव जाति की उन्नति और संगठन करती है। रस्क का कथन है–*"शिक्षा को मानव जाति को इस योग्य बनाना चाहिये कि वह अपनी संस्कृति की सहायता से आध्यात्मिक जगत से अधिक ही अधिक पूर्णता से प्रवेश कर सके, और आध्यात्मिक जगत की सीमाओं का विस्तार भी कर सकें।"*

- **पवित्र जीवन की प्राप्ति–** फ्रावेल का कथन है कि आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य– पवित्र जीवन की प्राप्ति है। फ्रावेल ने लिखा है– *"जीवन का उद्देश्य – भक्तिपूर्ण पवित्र तथा कलंक रहित, पवित्र जीवन की प्राप्ति है। शिक्षा की मनुष्य का पथ–प्रदर्शन इस प्रकार करना चाहिये कि उसे अपने आप का प्रकृति का सामना करने का, और ईश्वर से एकता स्थापित करने का स्पष्ट ज्ञान हो जाये।"*

- **व्यक्ति के मनो–शरीरी रचना का उत्थान**– शिक्षा में व्यक्ति की मनो–शरीरी रचना कहना आदर्शवाद की देन कही जा सकती है। इस विचार से मनुष्य केवल एक अंव्यवधारी जीव नहीं है बल्कि वह एक आत्मा वाला व्यक्ति होता है और आत्मा तथा मन उसकी क्रियाशीलता जारी रखते हैं। इन्हीं के द्वारा यह चिन्तन मनन में भी समर्थ होता है। विभिन्न अंगों तथा मन में एकता भी पायी जाती है और सब मिल–जुलकर कार्य करते है। आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के मनो–शरीरी रचना का विकास करना भी है।

- **समाज हेतु शिक्षा के उद्देश्य** – आदर्शवादी सामाजिक पक्ष की उपेक्षा नहीं करता। उसके लिये वैयक्तिक विकास में सामाजिक हित अन्तर्निहित रहता है। दरअसल आत्मानुभूति के उद्देश्य में व्यक्ति की स्वार्थपरता निहित न होकर समष्टि के हित में उसके हित का समाहार है। हांकिंग दो उद्देश्यों का विवेचना करता है प्रथम है– सम्प्रेषण अथवा संवहन एवं द्वितीय विकास के लिये प्रावधान। सम्प्रेषण से उसका आशय बालकों को उस ज्ञान तथा संस्कृति से युक्त करना है, जो कि मानव जाति ने युगों से संचित की हैं यह प्रत्येक पीढ़ी का कर्तव्य है कि आने वाली पीढ़ी को संचित ज्ञान राशि, जो उस समय तक बन पायी है हस्तान्तरित कर दे। नई पीढ़ी को आगे बढ़ने के लिये यह पैतृक सम्पदा के रूप में प्राप्त होती है। केवल सम्प्रेषण कर देने से संस्कृति अवरूद्ध हो जायेगी। प्रत्येक पीढ़ी उसमें वृद्धि करती है। इस विकास के लिये उचित अवसर प्रदान करना, तथा उचित वातावरण तैयार करना सामाजिक उद्देश्य का द्वितीय पक्ष है। हार्न के अनुसार– *"व्यक्ति के सम्बंधित शैक्षिक उद्देश्य में संस्कृति, ज्ञान तथा विकास का समावेश होना चाहिये तथा समाज की दृष्टि से कुशलता, चरित्र तथा नागरिकता का अन्तर्भाव होना चाहिये क्योंकि वैयक्तिक उद्देश्य भी गौण रूप से सामाजिक है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

17–आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा के किन उददेश्यों को हत्वपूण माना गया है?

.....

.....

6.11 आदर्शवाद और शिक्षक

आदर्शवाद में शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। आदर्शवाद के अनुसार शिक्षक भी इस तर्कनापूर्ण विश्व की एक इकाई है। शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनो सम्पूर्ण विश्व योजना में अपना–अपना दायित्व पूरा करते हैं।

शिक्षक अपने व्यक्तित्व एंव कृतित्व द्वारा छात्रों के लिये एक ऐसा वातावरण तैयार करता है, जिसमें विकास पाकर बालक सत्ता के निकटतर पहुँचता है।

अध्यापक दायित्व के सम्बंध में आदर्शवादी दार्शनिक फ्रांवेल तथा पेस्टालॉजी द्वारा वर्णित रूपक को उदृत करते हैं। इस रूपक में विद्यालय को उद्यान, शिक्षक को माली तथा बालकों को पौधे माना गया है। बालक के विकास की शक्तियों तो उसमें उसी प्रकार अन्तर्हित होती है, जैसे कि बीज में वृक्ष के सभी लक्षण होते है। बिना माली के वृक्ष बढेंगा पर चतुर माली के देख–रेख में इसका विकास वांछनीय दिशा में होगा प्रकृति के सहारे छोड़ देने पर वृक्ष नष्ट भी हो सकती है। अध्यापक अपनी ओर से नई शक्तियां जोड़ नहीं सकता परन्तु इन शक्तियों के उचित विकास के लिये जो वातावरण तथा अध्ययन तथा अध्यापन परिस्थितियां होनी चाहिये जिन्हें शिक्षक शिक्षार्थी के लिये संजोता है।

एडम्स ने दो ध्रुवों में से ध्रुव को पूर्णतया आदानात्मक तथा दूसरे को प्रदानात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। शिक्षक सभी प्रकार से शिक्षार्थी को विकास में मदद देने वाला है और शिक्षार्थी उस मदद के फलस्परूप विकास करता है। बटलर के अनुसार शिक्षक में ये गुण होने चाहिये–

- शिक्षक बालक के लिये सत्ता का साकार रूप होता है। अपरिपक्व बुद्धि के बालक के लिये अध्यापक ही विश्वात्मा रूप है।
- शिक्षक को अपनी व्यावसायिक कला में दक्ष होना चाहिये।
- शिक्षक को अपने ज्ञान, व्यक्तित्व, अध्यापन तथा चरित्र के प्रभाव से विद्यार्थियों का आदर प्राप्त करना चाहिये।
- शिक्षक रूचि एवं अभिप्रेरणा जाग्रत करने में दक्ष हो।
- जीवन की कला में निपुणता होनी चाहिये।
- विषय ज्ञान के प्रति आदर एवं जिज्ञासा होनी चाहिये।
- शिक्षक को प्रगतिशील विचारों का अग्रदूत होना चाहिये।
- शिक्षक सिखाने का दायित्व ग्रहण करे और आत्म स्मृति का अभ्यास होना चाहिये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

18–आदर्शवादियों ने शिक्षक को क्या स्थान दिया है?

.....

19–शिक्षक अपने शिक्षार्थी पर कैसे प्रभाव डालता है?

.....

6.12 आदर्शवाद और पाठ्यक्रम

आदर्शवादी ज्ञान को सनातन मानता है और साथ ही अनन्त तथा असीम भी। वास्तविक ज्ञान कभी पुराना नहीं पड़ता। विज्ञान की सहायता से हम ईश्वरीय सृष्टि के बारे में अधिकाधिक जानने लगते है। यह ईश्वरीय प्रकटन ही माना जाना चाहिये। आदर्शवादी पाठ्यक्रम में मुख्यतः ये विशेषतायें पायी जाती है–

- पाठ्यक्रम के आधार जीवन के सर्वोच्च आदर्श होने चाहिये।
- सभ्यता का प्रतिबिम्ब होना चाहिये।
- मानव जाति के सभी संचित अनुभवों का आधार होना चाहिये।
- मानव जीवन के आदर्श चरित्र एंव आदर्श समाज को संकल्पना को साकार करने के तत्व सम्मिलित होने चाहिये।
- विभिन्न विज्ञान व मानवशास्त्र को स्थान मिलना चाहिये।

पाठ्यक्रम के सम्बंध में आदर्शवादियों के विचार–

➢ **प्लेटो के अनुसार**– पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक मूल्य सत्यं शिवं सुन्दरं को स्थान मिलना चाहिये। ये तीनों मूल्य मानसिक, नैतिक और सौन्दर्यात्मक क्रियाओं को जन्म देते हैं। इन क्रियाओं के अनुसार– पाठ्यक्रम का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिये–

मानव क्रियाओं से सम्बंधित पाठ्यक्रम

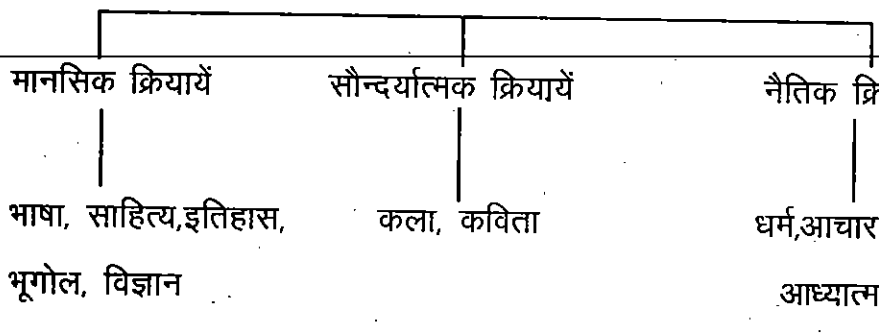

➢ **नन के विचार**– नन की शिक्षा का दृष्टिकोण व्यक्तिवादी है परन्तु पाठ्यक्रम के बारे में इनका विचार आदर्शवादी है। इनके अनुसार पाठ्यक्रम में इन क्रियाओं को दो समूहों में बांटा जा सकता है।

मानव क्रियायें व सम्बंधित विषय

शारीरिक,सामाजिक, नैतिक व धार्मिक क्रियायें	साहित्यिक,सौन्दर्यात्मिक व सामान्य क्रियायें
शा0शिक्षा,सामाजिक शिक्षा, नीतिशास्त्र व धर्म	साहित्य, कला, संगीत, दस्तकारी,विज्ञान,गणित, इतिहास व भूगोल

➢ **हरबार्ट के अनुसार**– आदर्शवादी हरबार्ट के अनुसार शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य नैतिकता का विकास बताया है। अतः नैतिकता के विकास हेतु साहित्य, इतिहास, कला, संगीत आदि को प्रमुख स्थान और भूगोल, विज्ञान आदि को गौण स्थान दिया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

20–आदर्शवादी पाठ्यक्रम की मुख्य विशेषतायें क्यो होती है?

.....

6.13 आदर्शवाद और शिक्षण विधियां

आदर्शवाद में किसी विशेष विधि का उल्लेख नहीं किया और आदर्शवादियों की मान्यता है कि किन्हीं उद्देश्यों की स्पष्टता हो जाय तो उन उद्देश्यों के पूणार्थ जो उपयुक्त हो उसे अपनाना चाहिये। विधि साधन है साध्य नहीं। साध्य की प्रकृति के अनुरूप साधन निर्धारण किया जाता है। आदर्शवादी बटलर का कथन है–*"आदर्शवादी अपने को किसी एक विधि का भक्त न मानकर, विधियों का निर्माता और निश्चय करने वाला मानते है।"* आदर्शवादी मानतें हैं कि यदि हमारे लक्ष्य निर्धारित है तो हम बालक के लिये उचित विधि को खोज सरलता से कर सकते हैं। विभिन्न प्रचलित शिक्षण–विधियों तथा शिक्षण सम्बंधी मान्यताओं के बारे में हमें क्रमश देखना होगा।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रणाली– आदर्शवाद के अनुसार इस जगत के सम्बंध उपरी ज्ञान प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा किया जा सकता है। प्रत्यक्ष प्रणाली से प्राप्त ज्ञान अधिक रूचिकर होता है और स्मृति में स्थायी रह सकता है पर सभी ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। संचित मानव सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान परोक्ष रूप से अधिक शीघ्रता और सरलता से दिया जा सकता है। पुस्तकों मे सचित ज्ञान राशि को आधार बनाकर इसमें और वृद्धि करने के लिये उसे तैयार करना चाहिये।

आत्मा–क्रिया-- आदर्शवादी मानते हैं कि बालक केवल अनुक्रिया करने वाला जीवन मात्र नहीं है अथवा मिथः क्रिया करने वाली सामाजिक इकाई मात्र नहीं है, अपितु वह आत्मा है, जो स्वतः प्रेरणा में समर्थ है। शिक्षक द्वारा की गयी क्रिया के प्रति छात्र की अनुक्रिया द्वारा ही शिक्षा सम्भव हैं। इस अनुक्रिया का मूल छात्र में ही विद्यमान है। हार्न के अनुसार– *"जगत के प्रति स्वयं की अनुक्रिया का श्रोत मनस है। अतः आत्म क्रिया द्वारा ही विकास सम्भव है।"*

आत्म क्रिया के लिये संकल्प–शक्ति की स्वतंत्रता आवश्यक है। आदर्शवाद के लिये हर प्रकार की शिक्षा चरित्र निर्माण की शिक्षा है और चरित्र का प्रथम लक्षण है, संकल्प शक्ति की स्वतंत्रता। स्वतंत्रता संकल्प दृढ़ता को अभिव्यक्त करता है, इच्छा शक्ति की दुर्बलता नहीं।

अनुकरण– आदर्शवादी अनुकरण को शिक्षण प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण तत्व मानता है। माता–पिता, परिवार के सदस्य, अध्यापक, मित्र मण्डली आदि के व्यवहार का अनुकरण करके अपरिपक्व बालक सामाजिक व्यवहार सीखता है। अनुकरण का आरम्भिक प्रयोग, स्थूल पदार्थों एवं क्रियाओं के उत्कृष्ट नमूनों के अनुकरण में किया जा सकता है। अनुकरण का प्रयोग राष्ट्रीय, धार्मिक, ऐतिहासिक एवं साहित्य के धीरोदात्त नायको के चरित्र का अनुकरण है। अनुकरण का एक प्रयोग व्यक्ति निरपेक्ष गुणों के अनुकरण की ओर छात्रों को प्रेरित करना है। अनुकरण के सर्वोच्च शिखर पर पृथक–पृथक गुण नहीं रह जाते, अपितु उनका समन्वय शिवम् में हो जाता है। इसी को आदर्शवाद चरित्र निर्माण अथवा स्वतंत्र इच्छा शक्ति का विकास मानते है।

आदर्शवादी शिक्षकों द्वारा विभिन्न शिक्षण विधियों को अपनाया गया वे किसी एक पद्धति के पूर्ण भक्त नहीं रहें, उदाहरणार्थ सुकरात ने प्रश्नविधि को अपनाया, क्योंकि उनका मानना था कि कुशल अध्यापक के हाथ में आकर प्रश्नोत्तर विधि ज्ञान विकास, चिन्तन बुद्धि तथा सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास करने में सहायक होती है। प्लेटो ने सम्वाद विधि को अपनाया है। उनके अनुसार छात्रों के सामाने कुछ विकल्प प्रस्तुत किये जाये और सम्वाद के द्वारा सद् और असद् में विवेक युक्त भेद बोध का विकास करना इस विधा का उद्देश्य होना चाहिये। अरस्तु ने आगमन और निगमन को मान्यता दी और हीगल ने तर्क

विधि को माना और उनके अनुसार छात्रों को तर्क के द्वारा सीखने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिये। हरबार्ट ने निर्देश विधि को अपनाया। हीगल ने निर्देश का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है। इसका अर्थ व्यवस्था या दमन न होकर, शैक्षिक निर्देश और सहानुभूति मार्गदर्शन है। **हरबार्ट का मत है**— *"निर्देश के बिना शिक्षा की मेरी कोई धारणा नहीं है और उस निर्देश को स्वीकार नहीं करता है, जो शिक्षित नहीं करता है।"* फ्राबेल ने खेल द्वारा शिक्षा पर बल दिया। पेस्टालॉजी ने अभ्यास व आवृत्ति को सबसे उत्तम विधियां माना।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

21–आदर्शवादी अपने को विधियों का निर्माता मानते हैं? समझाइये।

.....

22–आदर्शवादियों द्वारा प्रतिपादित कुछ शिक्षण विधियों का उल्लेख कीजिये।

.....

6.14 सारांश

इस इकाई में हमने पढ़ा कि आदर्शवाद का शिक्षा के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण योगदान निम्नवत मिलता है। आदर्शवादी शिक्षा में बाधक के व्यक्तित्व के आदर के साथ सत्यम् शिवम् सुन्दरम् जैसे श्रेष्ठ गुणों के विकास पर जोर दिया। आदर्शवाद ने शिक्षण आदर्शवाद ने शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए शिक्षा व्यवस्था की मुख्य कड़ी माना। इसमें शिक्षा के व्यापक उद्देश्य निर्धारित करते हुए उसे जीवन के अन्तिम उद्देश्यों से जोड़ा गया। इस भैतिकवादी युग को अपने संघर्षों, कलहों एवं वमनस्यों से आदर्शवाद का ही सहारा लेकर युक्ति मिल सकती है। आदर्शवाद मनुष्य की प्रकृति विशिष्टता पर बल देता है और मनुष्य को मानसिक, सांस्कृतिक, नैतिक और धार्मिक शक्तियों पर अधिकार देता है। कई विद्वान एवं शिक्षाशास्त्री यह मानते हैं कि आदर्शवाद ही शिक्षा का संतोषजनक आधार है। यह इकाई आपको रोचक लगी होगी और इसके साथ ही निश्चित रूप से आपके ज्ञान में वृद्धि हुयी होगी।

6.15 अभ्यास कार्य

1. "आदर्शवाद जीवन के भौतिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों की अपेक्षा मानव अनुभव के अध्यात्मिक पक्ष एवं अंतिम सत्य पर बल देता है।" इस कथन को स्पष्ट

कीजिए।

2. उद्देश्य पाठ्यक्रम एवं अनुशासन के सम्बन्ध में आदर्शवादियों के दृष्टिकोण को स्पष्ट कीजिए।

6.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. लाइबनीज
2. ईश्वर द्वारा मन व पदार्थ दोनों का निर्माण किया गया यही द्वितत्ववाद का आधार है। डेकार्टे द्वारा प्रतिपादित।
3. आत्मगत आदर्श।
4. शेलिंग के दार्शनिक विचार में।
5. आदर्शवाद वास्तव में मानता है कि विचार ही सत्य है। इसके सिवा सत्य का कोई और रूप नहीं। मस्तिष्क ही वास्तविक सत्य है।
6. ब्रह्माण्ड, बुद्धि एवं इच्छा की अभिव्यक्ति। व्यक्ति व संसार बुद्धि की अभिव्यक्तियां हैं।
7. आंतरिक जगत क्योंकि इसके कारण विचार प्राप्त होते हैं और उन विचारों को वास्तविकता मिलती है।
8. मानव वह प्राणाधारी है जिसमें अनुभव करने, धारण करने और उन्हें उपयोग में लाने की विलक्षण शक्ति है।
9. सत्य शिव सुन्दर शाश्वत मूल्य है।
10. सत्य का अस्तित्व है परन्तु मनुष्य द्वारा निर्मित नहीं है। आदर्शवादियों की मान्यता है कि ईश्वर या निरपेक्ष मन या आत्मा सत्य है।
11. "स्व" मानव आत्मा है।
12. वस्तुनिष्ठ आदर्शवाद मानता है कि विचार सनातन, सर्वव्यापी तथा सर्वकारिक होते हैं। उनका अस्तित्व अपने आप में होता है। वे न तो ईश्वर न जगत पर आश्रित रहते हैं। विचार इस जगत की वस्तुओं का "सार" है।
13. मनुष्य का विकास उसकी भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों पर निर्भर करता है।
14. सत्य शिवम् सुन्दर शाश्वत मूल्य एवं अंतिम सत्य है। अतः इनकी प्राप्ति आवश्यक है।
15. सर्वोच्च रूप से अन्तदृष्टि एवं आत्मा का ज्ञान सर्वोच्च ज्ञान है।
16. शरीर मन एवं आत्मा का सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास।
17. व्यक्तित्व का उत्कर्ष एवं आत्मानुभूति, सत्यं शिव सुन्दर की अनुभूतिं, सांस्कृतिक

विरासत का संरक्षण, पवित्र जीवन की प्राप्ति व मनो शारीरिक रचना का उत्थान।

18. शिक्षक महत्वपूर्ण इकाई माली के रूप में, बालक के अपरिपक्व सत्ता को साकार रूप देने वाल।

19. अधिगम के उचित वातावरण एवं परिस्थितियों का निर्माण कर स्वयं के व्यक्तित्व द्वारा

20. पाठ्यक्रम का आधार सर्वोच्च आदर्श, सभ्यता के प्रतिबिम्ब मानव जाति के संचित अनुभव का भण्डार।

21. आदर्शवादी विधियों को साधन मानते हैं साध्य नहीं और साध्य के प्रकृति के अनुरूप साधन का निर्धारण आवश्यक

22. प्रश्नोत्तर विधि, सम्वाद विधि, तर्क विधि।

6.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें –

- रस्क आर0आ0 (1972) : *शिक्षा के दार्शनिक आधार,* जयपुर : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- ओड एल0के0 (2005) : *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- पाल, गुप्त एवम् मदनमोहन (1995) : *शिक्षा दर्शन,* कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद
- चतुर्वेदी एस0 (1970) : *शिक्षा दर्शन,* लखनऊ, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ
- Butler J.D. (1951) : *Four Philosophies of Education*, New York Harper & Bros.
- Brubacher J.S. (1942) : *Modern Philosophies of Education*, New, York : Mac – Graw Hill Book Co.
- Kilpatrik W.H. (1954) : *Philosophy of Education*, New York, Macmillan & Co., 1954
- Henderson S.P. (1947) : *Introduction to Philosophy of Education*, Chicago University of Chicago.

इकाई–7 प्रयोजनवाद

संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 प्रयोजनवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

7.4 प्रयोजनवाद की संकल्पना

7.5 प्रयोजनवाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि

7.6 प्रयोजनवाद के विभिन्न सम्प्रदाय

7.7 प्रयोजनवाद के मुख्य सिद्धान्त

7.8 प्रयोजनवाद और शिक्षा

7.9 प्रयोजनवाद शिक्षा के उद्देश्य

7.10 प्रयोजनवाद व शिक्षण विधियां

7.11 प्रयोजनवाद एवं छात्र सकल्पना

7.12 प्रयोजनवाद में शिक्षक संकल्पना

7.13 प्रयोजनवाद एवं अनुशासन

7.14 प्रयोजनवाद एवं पाठ्यक्रम

7.15 सारांश

7.16 अभ्यास कार्य

7.17 चर्चा के बिन्दु

7.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.19 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

मनुष्य के जीवन की अनेक जिज्ञासाओं में से एक बुनियादी जिज्ञासा यह भी है कि वह यह जाने कि आखिर असलियत क्या है? सच्चाई क्या है? यानि सत्य क्या है? इस प्रश्न के उत्तर को अलग विचारकों ने विभिन्न ढंग से देखा व समझा है। प्रयोजनवादियों के अनुसार सत्य एक विचार यानि आदर्श रूप में रहने वाली संकल्पना है तो प्रकृतिवाद की नजर में प्रकृति की सच्चाई है तो चिन्तन की एक और है प्रयोजनवाद जो इस सच्चाई को वस्तु की उपयोगिता में

ढूँढती है। मोटे तौर पर यह दर्शन की शाखा यह मानती है कि सत्य का निर्माण मनुष्य द्वारा होता है और उसकी उपयोगिता ही उसकी वास्तविकता की कसौटी है। इस दर्शन के विचारानुसार सत्य कोई सूक्ष्म वस्तु नहीं वरन् यह तो हमारे चारो ओर के वातावरण से जुड़ा है। यह मनुष्य की सृजनात्मक बुद्धि व शक्ति में निहित है। मनुष्य इसे सूझ–बूझ के साथ लागू कर सकते है। सन्दर्भों से जुडे होने के कारण इनका रूप स्थिर नहीं होता बल्कि परिवर्तनशील होता है। लगातार उपयोगिता की कसौटी पर कसा जा सकता है। इस कारण इसे प्रयोजनवाद कहा गया इस इकाई में हम इसे विस्तार से पढ़ेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि

- प्रयोजनवाद के उद्भव एवं विकास की अवस्थाओं को बता सकेंगे।
- प्रयोजनवाद का सम्प्रत्यय एवं परिभाषा बता सकेंगे।
- प्रयोजनवाद के विभिन्न रूपों का विवेचन कर सकेंगे।
- प्रयोजनवाद के दार्शनिक दृष्टिकोण का स्पष्ट कर सकेंगे।
- प्रयोजनवाद के मूल सिद्धान्तों का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रयोजनवादी शिक्षा की संकल्पना एवं विशेषतायें बता सकेंगे।
- प्रयोजनवादी शिक्षा के उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम का वर्णन कर पायेंगे।
- प्रयोजनवादी शिक्षण विधियों एवं अनुशासन की विशेषतायें सूचीबद्ध कर सकेंगे।
- प्रयोजनवादी शिक्षक एवं छात्र के गुण बता सकेंगे।

7.3 प्रयोजनवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रयोजनवाद दर्शन की वह शाखा है, जो किसी पूव–सिद्ध सत्य को स्वीकार नहीं करतीं। इसे अर्थ–क्रियावाद, व्यवहारवाद, करणवाद, पुनर्रचनावाद, अनुभववाद, फलानुमेय–प्रामाण्यवाद, प्रयोगवाद आदि संज्ञाओं से भी अभिहित किया जाता है। ये सभी संज्ञायें प्रयोजनवाद के लक्षणों की व्याख्या करती है, यह अमरीकी जन जीवन से उद्भुत दार्शनिक प्रणाली है।

प्रयोजनवाद ने एक ओर आदर्शवाद द्वारा प्रतिपादित पूर्व सत्य के विरुद्ध आवाज उठायी, तो दूसरी ओर प्रकृतिवाद के अमानवीय वैज्ञानिक सत्य का विरोध किया। आदर्शवाद के अनुसार जगत पूर्व–निर्धारित तथा पूर्ण है और सत्य सार्वकालिक है। दैवी आदर्शवाद तो मनुष्य की नियति को भी किसी अज्ञात विश्वात्मा में स्थापित कर देता है ऐसी स्थिति में मानव निष्क्रिय हो जाता है, और

प्रकृतिवाद मनुष्य को एक प्रकृति का खिलौना मानकर अस्तित्व को ही समाप्त कर देता है। दूसरी ओर प्रयोजनवाद इन दोनों मान्यताओं को चुनौती देते हुये अनेक नई स्थापनायें प्रस्तुत करता है, जिनमें सर्वत्र एक नकारात्मकता झलकती है तथा पूर्व–निर्धारित सभी सिद्धान्तों को इंकार करने की प्रवृत्ति दिखायी देती है। अमेरिकी दर्शन के नाम से प्रचलित यह दर्शन प्रयोगवादी क्यो कहलाया है ? इसका कारण अमरीकी उपनिवेश की स्थापना है। इंग्लैण्ड एवं यूरोप से निष्कासित प्यूरिटन क्रिश्चन अमेरिका पहुँचे और अपने समक्ष उपस्थित समस्याओं को अपनी तरह से सोच कर हल निकालने का प्रयास किया और नवीन अनुभवों के फलस्वरूप नई विचारधारा निकली और यही प्रयोजनवाद के नाम से प्रसिद्ध हुयी।

यूरोप में ज्ञान–विज्ञान में पुरूत्थान एवं सुधार की लहर फैली और उसका प्रभाव अमेरिका में भी आ पहुँचा और लोगों ने प्रयोगकर उपयोगी तथ्यों और ग्रहण करने की प्रवृत्ति ने जन्म दिया और इस प्रयोग की प्रवृत्ति ने प्रयोगवाद को आगे बढ़ाया। प्रयोग की कसौटी पर आदर्शवाद एवं प्रकृतिवाद के सिद्धान्तों को परखकर प्रयोगवाद ने अपना दार्शनिक अस्तित्व खड़ा किया। प्रयोजनवाद के लिये अंग्रेजों गें प्रयुक्त शब्द "प्रग्मैटिज्म" ग्रीक भाषा के शब्द प्रौमैटीकोस से लिया गया जिसका अर्थ व्यवहार प्रयोग या क्रिया है। ग्रीक भाषा में मिला यह शब्द प्राचीन दार्शनिकों के विचारों में मिला है।

इस शब्द का प्रयोग पांचवी से छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व में हेराक्लिट्स के विचारों में पाया जाता है। हेराक्लिटस के अुनसार वास्तविक चीजें परिवर्तनशील है अतः साश्वत सत्य नहीं हो सकते। इसे प्रयोगवाद ने भी स्वीकार किया है।

हेराक्लिटस के बाद सोफिस्ट आते हैं। इनकी प्रस्थिति समाज में ऊँची नहीं थी फिर भी ये दार्शनिक माने जाते हैं। प्लेटों की प्रोटोगोरस नामक एक पुस्तक में प्रोटोगोरस नामक सोफिस्ट का चित्रण किया है प्रोटोगोरस तथा गोरजियस और उनके शिष्यगणों ने विद्यालय तथा सामान्य जनता के बीच सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न किया। प्रोटोगोरस ने सिद्ध किया कि इन्द्रीय ज्ञान उत्तेजना प्रतिक्रिया सिद्धान्त पर निर्भर है। ज्ञान का आधार प्रत्यक्ष है और व्यक्ति ही इन्द्रिय प्रत्यक्ष होता है।

गोरिजियस का मत था कि पूर्व में कोई भी अस्तित्व नहीं है, इससे संदेहवाद की भावना गोरजियस में पायी जाती है।

जान डी0वी0 के मतानुसार सभी चिन्तन एक प्रकार का प्रयोग है। इसके अलावा व्यक्ति को नहीं सामाजिक मन को डी0वी0 ने सभी चीजों का मापदण्ड कहा है।

भारतीय दर्शन में भी प्रयोजनवादी विचारधारा पायी जाती है। इस सम्बंध में डा0 सिन्हा ने अपने विचार व्यक्त करते हुये लिखा है कि *"अन्तः यथार्थ सत्य की परख है। न्याय प्रवृत्ति सामर्थ्य अथवा क्रियात्मक उपयोगिता को भी*

सत्य की कसौटी मानता है।..... .....अतः क्रियात्मक अनुपयोगिता असत्य की एक कसौटी है। न्याय तथ्य के साथ संमात की जो विषय वादियों की कसौटी है तथा क्रियात्मक उपयोगिता को जो व्यवहारवादियों के सत्य की कसौटी है, इन दोनों को मानता है। न्याय विषयवादियों व्यवहार को मानता है। न्याय का मत है कि ज्ञान का प्रमाण्य, ज्ञान के कारणों के गुण से उत्पन्न होता है, न्याय के अनुसार ज्ञान का प्रमाण्य और अप्रमाण्य दोनों बाहरी कारणों से उत्पन्न तथा ज्ञात होते हैं।"

भारतीय परम्परा को तो मानना है कि बिना उद्देश्य या प्रयोजन के तो मंदबुद्धि भी किसी काम में नहीं लगता *प्रयोजनमनुधिश्य न मंदो अपि प्रवर्तते* यानि प्रयोजन कार्य की पहली शर्त है। इसके अलावा– *यस्तु क्रियान्वयन पुरूषः स एवं विद्वान* यानि क्रियाशील या व्यवहारशील व्यक्ति ही असली विद्वान है और *अर्थकारी सा विद्या* –विद्या ईच्छाओं को पूरा करने वाली है। पूरा भारतीय दर्शन धर्म सिखाने से भरा पड़ा है और धर्म का अर्थ कर्तव्य भावना है, जिससे मनुष्य लगातार उन्नति की ओर बढ़ता रहे। मीमांशा दर्शन के अनुसार तो धर्म प्रेरणा का साधन है मनुष्य जीवन की उन्नति के दस लक्षणों की महत्व देते हुये इन्हें ही धर्म का लक्षण बताया गया।

घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणं।।

धर्म के दस लक्षण– धैर्य, क्षमा, मन पर वश, सत्य वचन, क्रोध पर वश, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रिय नियंत्रण, बुद्धिमता, ज्ञान। (शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्) शरीर इस साध्य को पाने का सबसे बड़ा साधन है। भारतीय दर्शन में प्रयोजनवादी शाखा प्राचीन है।

बैद्ध दर्शन में भी प्रयोगवाद की झलक मिलती हैं, योगाचार सम्प्रदाय क दर्शन में प्रयोगवाद की छाया दिखायी पड़ती है। जिसमें यह लिखा गया है कि जीवन में हमारी क्रियायें बाह्य पदार्थों के कारण हैं ज्ञानकारों के भिन्नता विषयाकारों की भिन्नता के कारण है। वर्ण शब्द, गंध, स्वाद, तापमान इत्यादि का ज्ञान बाह्य पदार्थों को देखता है। यह अनुभव उसके प्रयोग पर निर्भर है।

प्रयोगवाद की यदा–कदा झलक 16वीं शताब्दी में भी दिखायी देती है। फ्रांसीसी बेकन ने अपने लेखों (नोवम आर्गेनम एडवासमेंट, आफ लर्निंग, न्यू एटलांटिस) में आगमन प्रणाली विज्ञान को समाज मार्ग दर्शन के रूप में तथा समाज द्वारा विज्ञान को सामान्य निधि स्वरूप सुरक्षित रखने के लिये तथा विज्ञान को सामाजिक अनुसंधान क्रिया के रूप में मानने को कहा है।

अठारहवीं शताब्दी में आगस्ट काम्टे ने अपनी "पाजिटिवी फिलास्फी" में विज्ञानों के अध्ययन पर जोर दिया और बताया कि भौतिक विज्ञान, रासायनिक विज्ञान, शरीर विज्ञान तथा समाज विज्ञान ये सभी मानव के क्रियाओं से अन्तः

सम्बंधित है। इससे व्यावहारिक कार्यों ने काल्पनिक विचारों का प्रभाव कम हुआ और मानवेत्तर एवं धार्मिक विश्वासों का प्रभाव कम होता गया। अध्यात्मशास्त्र का व्यावहारिक उपयोग होने लगा और सामाजिक सम्बंधों पर बल दिया जाने लगा। इससे नयी विचारधारा प्रयोजनवाद में आ गयी। प्रयोगवाद के सर्वप्रथम दार्शनिक चार्ल्स सैण्डर्स पियर्स माने गये पियर्स का योगदान ज्ञान दर्शन के क्षेत्र में विचारों के प्रयोगवादी अर्थ निश्चय करने की कसौटी निर्धारित की है। इसी दर्शन को जेम्स व डी0वी0 आगे बढ़ाया।

पियर्स ने तर्क विज्ञान एवं गणित के सिद्धान्तों का प्रयोग किया इस प्रयत्न में पियर्स ने कान्ट के आत्मगत मानसिक प्रक्रिया तथा संसार की वस्तुगत यर्थाथताओं को कुछ हद तक जोड़ा है।

पियर्स के पश्चात् विलियम जेम्स प्रयोगवादी दार्शनिक हुये इन्होनें भी अनुभव पर बल दिया पर मानव को सर्वोच्च नहीं स्वीकार किया है और डी0वी0 एवं जेम्स के दर्शन में अन्तर आ गया।

डी0वी0 प्रयोगवाद के प्रबल समर्थक एवं प्रचारक हुये। डी0वी0 पर यर्थाथवादी टोरी, आदर्शवादी मारिस, जाने केयर्ड तथा ग्रीन का और स्टेनली हाल के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का प्रभाव पड़ा। इसके फलस्वरूप प्रयोगात्मक वैज्ञानिक विधि की और डी0वी0 का झुकाव है। डी0वी0 ने आदर्शवादी धारण के विरूद्ध मनुष्य के आत्मा और इच्छा शक्ति को आध्यात्मिक रूप न होकर सामाजिक रूप दिया। डी0वी0 के बाद उनके शिष्यों और सहयोगियों ने प्रयोजनवाद को आगे बढ़ाया जिनमें किलपैट्रिक मांरिसन आदि अमरीका में तथा शिलर इंग्लैण्ड के प्रमुख प्रयोजनवादी माने गये है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1–अमेरिकी दर्शन प्रयोगवाद क्यो कहलाया?

.....

2–प्रयोजनवाद को और किन–किन नामों से जाना जाता है?

.....

3–प्रयोजवादी दर्शन के उत्थान के प्रमुख कारण क्या है?

.....

7.4 प्रयोजनवाद की संकल्पना

प्रयोजनवाद के लिये अंग्रेजी का शब्द "प्रैग्मेटिज्म" है। इस शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द प्रैग्मा से हुयी जिसका अर्थ है किया गया कार्य, व्यवसाय, प्रभावपूर्ण कार्य। कुछ विद्वानों ने इस शब्द की उत्पत्ति दूसरे यूनानी शब्द "प्रेग्मिटिकोस" से बताया है, जिसका अर्थ है प्रौक्टिकेबल अर्थात् व्यावहारिक इसके अनुसार प्रैग्मैटिज्म का अर्थ है व्यवहारिकता।

इस दृष्टि से प्रयोजनवाद के अनुसार किसी कार्य और सिद्धान्त के लिये व्यावहारिकता और उपयोगिता आवश्यक है अन्यथा उसका कोई महत्व नहीं है। उपयोगिता पर बल देने के कारण इसे प्रयोजनवाद कहा गया। जीवन की व्यवहारिक क्रियाओं से उत्पन्न होने के कारण परिणाम पर बल देने के कारण कुछ लोगों ने इसे फलकवाद भी कहा है।

जेम्स के अनुसार– *"फलकवाद मस्तिष्क का एक स्वभाव है, एक अभिवृत्ति है यह विचार और सत्य की प्रकृति का सिद्धान्त है और अन्ततः वास्तविकता के बारे में खोज का एक सिद्धान्तवाद भी है।"*

कैण्डल के अनुसार – *"प्रयोगवाद अमरीकी मस्तिष्क की व्यावहारिकता की प्रतिच्छाया है जो नवागत लोगों की जीवन की समस्या और उनके समाधान के फलस्वरूप उत्पन्न हुयी।"* **रस्क के अनुसार–** "प्रयोगवाद प्रकृतिवाद और हीगेल के अथवा चरम आदर्शवाद दोनों का विरोध है।.....*प्रयोगवाद नवीन एक नवीन आदर्शवाद के विकास में केवल एक अवस्था है एक आदर्शवाद वास्तविकता के साथ तभी पूर्ण न्याय कर सकता है जबकि व्यावहारिक और आध्यात्मिक मूल्यों को एक साथ दें और एक संस्कृति का निर्माण कर दे जो कार्य क्षमता में फलित हो न कि उसकी निषेधता में।*

प्रैट के अनुसार– *"प्रयोजनवाद हमें अर्थ का सिद्धान्त, सत्य का सिद्धान्त ज्ञान का सिद्धान्त और वास्तविकता का सिद्धान्त देता है।"*

रोजन के अनुसार– *"प्रयोजनवाद सत्य तथा अर्थ के सिद्धान्त को प्रधानता देने के कारण मूलतः ज्ञानवादी विचारधारा है। इस विचारधारा के अनुसार सत्य को केवल उसके व्यावहारिक परिणामों से जाना जा सकता है। अतः सत्य निरपेक्ष की अपेक्षा वैयक्तिक या सामाजिक वस्तु है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4–प्रयोजनवाद के लिये अंग्रेजी का कौन सा शब्द है और कहां से लिया गया है?

.....

5–प्रयोजनवाद दर्शन को यह नाम क्यों मिला?

.....

7.5 प्रयोजनवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण

- **तत्व प्रदर्शन में प्रयोजनवाद–** प्रयोनवादी मन तथा पदार्थ एक पृथक और स्वतंत्र तत्वों के रूप मे अस्वीकार करते हैं। वे अपने सत्ता–विज्ञान को अनुभव की धारणा पर आधारित करते हैं। प्रयोजनवादियों के अनुसार प्राकृतिक नियम की धारणा निर्देशात्मक होने के बजाय वर्णनात्मक है ये वास्तविकता को सूक्ष्म वस्तु नहीं मानते है। वे इसको कार्य सम्पादन की प्रक्रिया समझते है जिसमें दो बातें निहित हैं– कार्य करना और कार्य तथा उसके परिणाम से अर्थ निकालना। पियर्स का कथन है– *"प्रयोजनवाद स्वयं में तत्व–दर्शन का सिद्धान्त नहीं और न यह वस्तुओं के सत्य को निर्धारित करने के लिये कोई प्रयास है। यह केवल कठिन शब्दों और अमूर्त धारणाओं के अर्थ को निश्चित करने की विधि है।"*
- **ज्ञान शास्त्र में प्रयोजनवाद–** ज्ञान अनुभव में निहित है। अनुभव तात्कालिक या मध्यस्थ हो सकता है। तात्कालिक अनुभव, अनुभूति की वस्तु है। तात्कालिक अनुभव मनुष्य तथा उसके मन की अपने वातावरण के प्रति की जाने वाली पारस्परिक क्रिया है। इसके लिये बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता है क्योंकि, बुद्धि के द्वारा ही इसकी दिशा का निर्धारण किया जाता है। प्रयोजनवादी प्रयोगात्मक विधि को ज्ञान प्राप्ति के साधन मानते हैं उन्होनें इस विधि के पांच पद या स्तर निर्धारित किये हैं। क्रिया परिस्थिति निर्माण, समस्या, सूचना या प्रदत्त, परिकल्पना या सम्भव समाधान, परीक्षण एवं प्रयोग। डी0वी0 का कथन है– *"जो परिपकल्पना व्यावहारिक रूप में कार्य करती है, वह सत्य है, जिसका प्रयोग उन वास्तविक और पूर्वअनुमानित वांछित तथ्यों के संकलन के लिये किया जाता है, जिनकी अपने परिणामों द्वारा पुष्टि होती है।"*
- **मूल्य मीमांसा में प्रयोजनवाद–** नैतिक मूल्य मानव एवं समाज के मध्य होने वाली आदान–प्रदान की प्रक्रिया का प्रतिफल है। अच्छाई वह है जो सर्वोत्तम ढंग से अनिश्चित परिस्थितियों का समाधान करती है।

प्रयोजनवादी–समस्याओं के समाधान में बुद्धि के प्रयोग की अच्छाई या सद् मानते हैं।

सुन्दर क्या है? इस सन्दर्भ में प्रयोजनवादी के अनुसार सुन्दर वहीं है जिसे हम अपने अनुभव से सुन्दर मानते हैं। कला की जो कृति हमें अपनी ओर आकृष्ट कर सकती है और गहन रूप से अनुभूति करने के लिये तत्पर बना सकती है, वही सुन्दर है।

धर्म क्या है? इस सन्दर्भ में डी0वी0 ने लिखा है कि "धर्म किसी बात की स्वीकृति है जो पृथक है और जिसका स्वयं के द्वारा अस्तित्व है। धार्मिक के अर्थ को स्पष्ट करते हुये डी0वी0 ने लिखा है कि इसके अन्तर्गत वे दृष्टिकोण आते हैं जो किसी वस्तु तथा किसी निर्धारित साध्य या आदर्श के प्रति बनाये जा सकते है।

ईश्वर क्या है? इस सन्दर्भ में डी0वी0 ने लिखा है कि ईश्वर आदर्श तथा वास्तविकता के मध्य सक्रिय सम्बंध है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6–प्रयोजनवादी प्रकृति के सन्दर्भ में क्या धारणा रखते हैं?

.....

7– प्रयोजनवादी अनुभव के विषय में क्या कहते हैं?

.....

7.6 प्रयोजनवाद के विभिन्न सम्प्रदाय

पियर्स का व्यवहारवाद– अर्थ क्रियावाद अथवा प्रयोजनवाद शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम चार्ल्स सैण्डर्स पियर्स की पुस्तक में मिलता है। पियर्स ने तार्किक एवं दार्शनिक दृष्टि से प्रतीकों की व्याख्या की। पियर्स के मतानुसार कोई अभिधारणा अन्तिम नहीं है उसका अर्थ उसके प्रभाव से निर्धारित किया जाता है। फलतः वास्तविक व्यवहार में जो प्रत्यय अथवा अभिधारणायें एक–दूसरे से सम्बद्ध होती है, उनके इस पारस्परिक सम्बंध को उचित अर्थ में देखना ही उन्हें सीखना है। संक्षेप में पियर्स यह कहना चाहता है कि सत्य सम्बंधी सभी अभिधारणायें अस्थायी हैं उनमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, तथा व्यवहार के साथ उनके अर्थ

बदलते रहते हैं।

विलियम जेम्स का अनुभववाद या फलानुमेयप्राण्यवाद– पियर्स के प्रेग्मेटिसिज्म को जेम्स ने शिष्य बनकर प्रेग्मेटिज्म संज्ञा प्रदान कर उसे क्रमबद्ध दर्शन का रूप प्रदान किया। जेम्स ने पियर्स का इस विषय में अनुमोदन किया कि अर्थ–क्रियावादी विधि बिना पूर्व–निर्धारित उत्तरों के प्रश्नों का हल ढूढने का प्रयत्न करती है। जेम्स के अनुसार विचार का प्रयोजन मानवीय रूचियों को सन्तुष्टि करना है। विचार अनुभव में अन्तर्निहित होता है। और अनुभव से परे कोई विचार नहीं होता। अनुभव सब कुछ है और जीवन के सभी मूल्य अनुभव के ही उद्‌भूत होते हैं सत्य निरपेक्ष नहीं है, अपितु अनुभवाश्रित है। सत्य का मूल्य व्यावहारिक है। चिरन्तन अपरिवर्तित सत्य को जेम्स स्वीकार नहीं करता। सत्य की प्रकृति के सम्बध में उसकी मान्यता है सत्य अनेक है जो निर्मित होते है। जेम्स जगत को पूर्ण नही मानते।

जान डी0वी0 के करणवाद प्रयोगवाद तथा पुनर्रचनावाद– शिक्षा की दृष्टि से डी0वी0 के करणवाद का बड़ा महत्व है इसने शिक्षा में क्रांति दी। यह व्यवहारवाद करणवाद के रूप में इसीलिये प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इनके मतानुसार मस्तिष्क ज्ञान उपकरण के रूप में प्रयुक्त होते है वे अपने आप में साध्य नहीं है। उनके मतानुसार मस्तिष्क तथा बुद्धि का विकास प्राकृतिक ढंग से हुआ। जीवन के विविध सामाजिक परिस्थितियों का सामना करने के लिये मनुष्य को जो प्रक्रियायें करनी पड़ी उनके उप–उत्पाद्य के रूप से इसका विकास हुआ। डी0वी0 के अनुसार ज्ञान मस्तिष्क के परे नहीं है विचार मस्तिष्क की क्रिया मात्र है। डी0वी0 का दूसरा प्रमुख विचार प्रयोगवाद का है। डी0वी0 ने प्रयोगात्मक विधि को जो वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रयुक्त होती है, मानवीय सामाजिक समस्याओं का हल करने के लिये उपयुक्त समझा। डी0वी0 के अनुसार हमारी चिन्तन प्रक्रिया में वे सभी चरण होते हैं जो वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रयुक्त होते है। यदि हमे अपने अनुभवों का लाभ प्रभावी ढंग से लेना है, तो प्रयोगात्मक विधि से करे। डी0वी0 प्रधानतया शिक्षा दार्शनिक था उसके अनुसार शिक्षा अनुभवों की पुनर्रचना मानी जाती है। इसी आधार पर उनके दर्शन को पुनर्रचनावाद भी कहा जाता है।

किलपैट्रिक का प्रयोजनवाद– *"शिक्षा की दृष्टि से एक और महत्वपूर्ण नाम किलपैट्रिक का लिया जाता है। जिसने डी0वी0 की समस्या हल विधि या वैज्ञानिक विधि को प्रोजेक्ट प्रणाली के रूप में विकसित किया। किलपैट्रिक ने गैलिलियों द्वारा स्थापित वैज्ञानिक प्रतिमानों द्वारा विश्व की व्याख्या करने का प्रयत्न किया। इनके अनुसार मानवीय मूल्यों अनुभवों की प्रमुख उपलब्धि नैतिक मूल्य है। उसके अनुसार दर्शन जीवन के संघर्षात्मिक मूल्यों का समीक्षात्मक अध्ययन है।* दर्शन का काम यह पता लगाना है कि संघर्षों के बीच जीवन कैसे

जिया जाय। डी0वी0 के समान किलपैट्रिक की भी यही मान्यता है कि नैतिकता सामाजिक होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8–प्रैग्मैटिज्म शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम किस पुस्तक में मिलता है?

.....

9–जेम्स विचार का प्रयोजन क्या मानते है?

.....

10–जान डी0वी0 का दर्शन प्रयोगवादी दर्शन क्यो कहलाता है?

.....

7.7 प्रयोजनवाद के मुख्य सिद्धान्त

ब्राइटमैन का कथन है– *"प्रयोजनवाद सत्य का मापदण्ड है। सामान्य रूप में यह वह सिद्धान्त है, जो समस्त विचार प्रक्रिया के सत्य की जॉच उसके व्यावहारिक परिणामों से करता है। यदि व्यावहारिक परिणाम संतोषजनक है तो विचार–प्रक्रिया को सत्य कहा जा सकता है।"* प्रयोजनवाद के निम्नलिखित सिद्धान्त है–

- जो सिद्धान्त कार्य करते है, वे सत्य हैं। सत्य परिवर्तनशील है।
- मानव प्रयासों का अत्यधिक महत्व है।
- अनुभव अनेक प्रकार से सम्बंधित व बदलते रहते है।
- जीवन और उससे सम्बंधित विभिन्न क्रियायें वास्तविक है।
- सिद्धान्त की कसौटी उसकी वास्तविकता है।
- प्रयोजनवाद प्रकृतिवादी सिद्धान्तों और आदर्शवादी निष्कर्षो का योग है।
- सत्य मानव निर्मित हेाता है, और जीवन के मूल्य और सत्य बदलते रहते हैं।
- दर्शन का मुख्य कार्य अनुभवों को, सम्भावनाओं को संगठित करना है।
- अन्तिम अपरिवर्तित और सदैव ठीक उतरने वाली पद्धति की स्थापना साधन के रूप में उसका महत्व नष्ट कर देती है।

- जो बात उद्देश्य पूरा करे इच्छाओं को संतुष्ट करे वही सत्य है।
- समस्या के अर्थ को समझकर ही हल करने का प्रयास करें।
- विचारों की सभी पद्धतियो का सम्बंध उस स्थिति और व्यक्तियों से है जिसमें वे उत्पन्न होती हैं, और जिसको वे सन्तुष्ट करती है। उनमे परिणामों द्वारा सदैव परिवर्तन हो जाता है।
- जीव विज्ञान द्वारा यह सिद्ध है कि जीवन मनो शारीरिक प्राणी है, और विचार उस स्थिति से अनुकुलन करने का साधन है, जिनमे कठिनाइयां एवं समस्यायें उपस्थित होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11–प्रयोजनवादी किन सिद्धान्तों को सही मानते हैं?

.....

12–प्रयोजनवाद मनुष्य को क्या मानता है?

.....

13–प्रयोजनवादी दर्शन का मुख्य कार्य क्या बताते है?

.....

7.8 प्रयोजनवाद और शिक्षा

प्रयोजनवाद परम्परागत और अनुदार ज्ञान के विरूद्ध एक क्रांति है यह प्रकृतिवादी सिद्धान्तों और आदर्शवादी निष्कर्षों का योग है। डी0वी0 शिक्षा को अद्वितीय मानते हैं। इससे शिक्षा सामाजिक संस्थाओं में सबसे प्रथम और केन्द्र भी बन गयी। डी0वी0 का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा इन पर आगे प्रकाश डाल रहे है।

5. शिक्षा का सामाजिक कार्य– प्रयोजनवादी का कहना है कि शिक्षा की प्रमुख विशेषता– इसका सामाजिक कार्य है। वे कहते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। शिक्षा का कार्य बालक को सामाजिक कुशलता का गुण प्रदान करना है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये शिक्षा का संगठन किया जाना चाहिये। ब्रूबेकर ने लिखा है – *"प्रयोजनवादी सामाजिक मूल्य को बहुत अधिक महत्व देता है। समाज*

सम्मिलित रूप से प्राप्त अनुभव का ढंग है। सामाजिक कार्यों में भाग लेना सबसे महत्वपूर्ण ढंगों से एक है, जिसके द्वारा शिक्षा प्राप्त होती है।"

2. बालक का वास्तविक जीवन अनुभद– शिक्षा द्वारा बालक को वास्तविक जीवन अनुभव प्रदान करना चाहिये। प्रयोजनवादी मानते हैं कि सच्चा ज्ञान वही है जो कुछ करके प्राप्त किया जाता है। करके सीखना ही वास्तविक शिक्षा है। प्रयोजनवादी के मतानुसार बालक को अपनी स्वयं की क्रियाओं और अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इस प्रकार प्राप्त ज्ञान उसका स्थायी अंग बन जाता है। बालक को वास्तविक परिस्थितियों में रखकर ज्ञान देना चाहिये।

3. शिक्षा के लिये पर्याप्त स्वतंत्रता– क्रिया के चुनाव करने हेतु बालक को अनुभव प्राप्त करन हेतु पर्याप्त स्वतंत्रता दी जानी चाहिये।

4. शैक्षिक प्रक्रिया में सीखना प्रायोगिक होना चाहिये– सीखना विद्यार्थी की शक्ति और योग्यता पर निर्भर है। भूत एवं वर्तमान की परिस्थिति का सम्बंध सीखने के लिये सफलता आवश्यक है। सीखना वैज्ञानिक ढंग से हो न कि रूढ़िवादी व यांत्रिक हो।

5. बालक का महत्व– प्रयोजनवादी शिक्षा में बालक को महत्वपूर्ण स्थान है। उनके अनुसार– शिक्षा बालक के लिये है न कि बालक शिक्षा के लिये। बालक को एक सामाजिक प्राणी माना जाना चाहिये। शिक्षा को बालक की शक्तियों, रूचियों, रूझानों और आवेगों के अनुसार होनी चाहिये।

6. शिक्षा मानवीय तथा सामाजिक केन्द्र से आरम्भ हो– शिक्षा का संगठन विज्ञान पर आधारित है। मानवीय होने के लिये स्वानुभूत आदर्श एवं मूल्यों की मान्यता हो। सामाजिक होने के लिये सामाजिक कुशलता होने की आवश्यकता है। शिक्षा इस प्रकार वैज्ञानिक, उदार, सांस्कृतिक तथा व्यावसायिक गुणों से युक्त हो।

7. शिक्षा नीति निर्धारण की स्वतंत्रता– प्रयोजनवादी शिक्षा नितियों के निर्धारण में राज्य के हस्तक्षेप के पक्ष में नहीं। विशेषकर डी0वी0 के अनुसार शिक्षा को अपने लक्ष्य निर्धारित करने के लिये स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये। समाज का दायित्व संस्कृति के फलों के उपभोग करना ही नहीं अपितु उसकी वृद्धि तथा विकास के लिये आवश्यक साधन जुटाना भी है। केवल शिक्षा मर्मज्ञ ही यह तय कर सकते हैं कि सांस्कृतिक विकास किस दिशा में होना चाहिये।

शिक्षा की परिभाषा–जान डी0वी0 द्वारा प्रतिपादित शिक्ष की परिभाषा इतनी मनोवैज्ञानिक तथा कार्यकारी साबित हुयी कि आज भी शिक्षा के क्षेत्र में यह सर्वमान्य है।

डी0वी0के अनुसार–*"शिक्षा अनुभव का पुननिर्माण अथवा पुनर्रचना करने वाली प्रक्रिया है जिससे कि विवृत वैयक्तिक कुशलता के माध्यम द्वारा उसे*

अधिक सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है।"

रॉस के अनुसार– *"बालक के वातावरण मे उसकी इच्छाओं को पूर्ण करना शिक्षा है न कि उसके आवेगों रूचियों और योग्यताओं को मूल्यों की किसी निश्चित योजना की प्राप्ति की ओर ले जाना।"*

प्रयोजनवादियो की दृष्टि में–

- शिक्षा का अर्थ है नये अनुभवों को संगठन।
- शिक्षा सामाजिक जीवन जीने की कला है।
- शिक्षा जीवन का पर्याय है यानि जीवन का ही दूसरा नाम शिक्षा।
- शिक्षा विकास की प्रक्रिया है।
- शिक्षा की प्रक्रिया अपनी सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होती है।
- शिक्षा व्यक्ति की रूचियों एवं क्षमताओं का निर्माण करती है।
- शिक्षा के पूर्व निर्धारित उद्देश्य मूल्य एवं आदर्श नहीं होते।
- शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया है।
- शिक्षा परिस्थिति जन्य नये मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

14–प्रयोजनवादी शिक्षा की कुछ विशेषतायें बताइये?

.....

7.9 प्रयोजनवादी शिक्षा के उद्देश्य

अर्थ–क्रियावाद किसी एक सर्वव्यापी सत्ता अथवा मूल्य में विश्वास नहीं करता, अतः उससे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह शिक्षा के किसी व्यापक चिरन्तन उद्देश्य की बात सोच भी सकता है। जब जगत, जीवन तथा व्यक्ति सभी परिवर्तनशील है, तो शिक्षा का कोई अन्तिम उद्देश्य हो ही नहीं सकता। डी0वी0 के अनुसार– *"शिक्षा के उद्देश्य नहीं होते है। उद्देश्य केवल व्यक्तियों के होते हैं, और व्यक्तियों के उद्देश्य बहुत अधिक एवं भिन्न होते हैं। वे विभिन्न बालकों के लिये विभिन्न होते है। जैसे–जैसे बालकों और उनके शिक्षकों का विकास होता जाता है। वैसे–वैसे उद्देश्य बदलते रहते है।"*

प्रयोजनवादियों ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किया है।

- **छात्र का सम्पूर्ण विकास–** ब्रूबेकर ने लिखा है कि प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है– छात्र का विकास है। प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा को बालक को उसी के व्यक्तित्व के अनुसार विकासित करना चाहिये। बालक के प्रत्येक अवस्था में विकास की अधिकाधिक प्रयास शिक्षा को करना चाहिये।
- **व्यक्तिगत मूल्यों एवं आदर्शों का निर्माण–** प्रयोजनवादी मानते हैं कि बालक को स्वयं अपने मूल्यों एवं आदर्शो का निर्माता होना चाहिये। शिक्षा को बालक में ऐसी योग्यता विकसित करनी चाहिये कि बालक अपने मूल्यों एवं अदर्शों का स्वयं निर्माण कर सके। इसके लिये शिक्षा के द्वारा सीखने योग्य परिस्थितियों का निर्माण किया जाना चाहिये।
- **गतिशील व लचीले मस्तिष्क का विकास–** प्रयोजनवादी बालक की आवश्यकताओं, इच्छाओं, अभिप्रायों और रूचियों की महत्व देते है। अतः इनको ठीक मार्ग पर ले जाना शिक्षा का कार्य है। रास ने लिखा है– *"बालक के वातावरण में उसकी इच्छाओं को पूर्ण करना शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य यह है– गतिशील व लचीले मस्तिष्क का विकास, जो सब परिस्थितियों में साधनपूर्ण और साहसपूर्ण हो, और जिनमें अज्ञात भविष्य के लिये मूल्यों की निर्माण करने की शक्ति हो।"*
- **गतिशील निर्देशन–** प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य छात्रों का गतिशील निर्देशन करना है। शिक्षा को विद्यार्थियों को सतत निर्देशन दे जिससे कि वे अपने जीवन के सही और गलत का अन्तर करने का निर्णय ले सके। शिक्षा बालक को भविष्य की समस्याओं को अधिक प्रभावी ढंग से हल करने के लिये सक्षम बनाना चाहिये।
- **समाजिक कुशलता का विकास–** प्रयोजनवादी शिक्षा के सामाजिक कार्यों पर बल देते हैं। इस दृष्टिकोण से शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है वैयक्तिक विकास के साथ–साथ सामाजिक कुशलता का विकास करना भी है। दूसरे शब्दों में शिक्षा का उद्देश्य है प्रत्येक व्यक्ति की शक्तियों और क्षमताओं को इस प्रकार विकसित करना कि वह सामाजिक रूप से कुशल व्यक्ति हो जाय। ऐसा व्यक्ति वही है जो अपनी जीविका की समस्या को हल करे, दूसरो की इच्छाओं और आवश्यकताओं का आदर करे तथा जिसमें सामाजिक सजगता हो।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

15–प्रयोजनवादी शिक्षा के उद्देश्य क्यों निर्धारित नहीं करते?

.....

16–प्रयोजनवादी शिक्षा के किन उद्देश्यों को महत्व देते है?

.....

7.10 प्रयोजनवाद व शिक्षण विधियां

प्रयोगवादी नवीनता के लिये प्रसिद्ध है। प्रयोजनवादी प्राचीन रूढ़िवादी अमनोवैज्ञानिक विधियों के विरूद्ध है। रास ने लिखा है यह हमें चेतावनी देता है कि अब हम प्राचीन और घिसी पिटी विचार प्रक्रियाओं को अपने शैक्षिक व्यवहार में प्रमुख स्थान न दे और नई दिशाओं में कदम बढ़ाते हुये अपनी विधियों में नये प्रयोग करे। डी0वी0 ने लिखा है कि *"एक बालक किताबे पढ़कर व्याख्यानों को सुनकर नहीं सीखता है– बल्कि अपने को जलाकर अपनी भूख मिटाकर सीखता है, अर्थात् कामों को करके सीखता है। हाथ, आंख, कान वस्तुतः पूरा शरीर सूचना का स्रोत हो जाता है और शिक्षक तथा पाठ्यपुस्तक क्रमशः केवल आरम्भ करने वाले और परीक्षा करने वाले हो जाते है।"*

- **सीखने की उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया का सिद्धान्त**– प्रयोजनवादी यह नहीं चाहता है कि बालक दूसरों के द्वारा दिये गये ज्ञान को प्राप्त करे। प्रयोजनवादियों के अनुसार बालक को स्वयं ही ज्ञान और योग्यता प्राप्त करने की कुशलता उत्पन्न करना चाहिये। रास के अनुसार– प्रयोजनवादी चाहते है कि सीखने की प्रक्रिया उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिये। अर्थात् बालक को अपनी इच्छाओं, रूचियों एंव रूझानों के अनुरूप किसी उद्देश्य को प्राप्त करना चाहिये।

- **क्रिया द्वारा सीखने का सिद्धान्त**– प्रयोजनवाद कार्य को महत्व देता है। प्रयोजनवादियों के अनुसार शिक्षण द्वारा बालक को प्रयोग एवं रचनात्मक क्रिया द्वारा विभिन्न बातों को स्वयं सीखने के लिये प्रोत्साहित किया जाय। रास के अनुसार *"प्रयोजनवादी शिक्षण विधि का दूसरा सिद्धान्त करके सीखना या अनुभव द्वारा सीखना है। बालक को इन परिस्थितियों में रखा जाना चाहिये जिसका वह सामना करना चाहता है।"*

❖ **सीखने की प्रक्रिया के एकीकरण का सिद्धान्त–** प्रयोजनवादियों के अनुसार सीखना अखण्ड होना चाहिये उनका कहना है कि ज्ञान के अनेक पहलु है फिर भी उनमें एकता है अतः ज्ञान को विखण्डित नहीं किया जाना चाहिये। अतः प्रयोजनवादी शिक्षण विधि का तीसरा सिद्धान्त है, सीखने की प्रक्रिया का एकीकरण। इसका अर्थ यह है कि बालक को जो भी विषय पढ़ाये जाये उनको एकीकृत शिक्षण विधियों के माध्यम से किया जाये।

प्रयोजनवादियों द्वारा प्रतिपादित शिक्षण विधियां– करके सीखने की विधि, प्रयत्न व मूल विधि, प्रयोग विधि सहसम्बंध की विधि और योजना विधि आदि प्रमुख शिक्षण विधियां प्रयोजनवादियों ने प्रतिपादित की।

➢ **योजना विधि–** योजना विधि के प्रवर्तक डी0वी0 के शि॰. किलपैट्रिक कहे जाते है। प्रोजेक्ट योजना विधि को चलाने का उद्देश्य शिक्षा को वास्तविक जीवन से सम्बंधित करना, शिक्षा के वातावरण को रूचिपूर्ण एवं सरस बनाना सूचना वर्तमान एवं भविष्य का ध्यान रखना तथा शिक्षा में सामाजिक भावना लाना तथा सामाजिक मनोवृत्ति उत्पन्न करना। किलपैट्रिक के अनुसार– *"योजना पूर्ण संलग्नता से सामाजिक वातावरण में की गयी प्रयोजनपूर्ण प्रक्रिया है।"* स्टीवेन्सन के अनुसार– *"योजना एक समस्यापूर्ण काय्र जो स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है।"*

योजना के लिये निम्न तथ्य आवश्यक माने जाते है–

- जीवन की वास्तविक समस्या।
- समस्या रूचि आधारित हो।
- समस्या एक उद्देश्य से युक्त हो।
- समस्या पूर्ति के लिये एक योजना हो।
- योजना को कार्यान्वित किया जाये।
- स्वभाविक व सामाजिक वातावरण हो।

योजना विधि के चरण

- समस्या का रोचकपूर्ण तरीके से प्रस्तुतीकरण एवं परिस्थिति उत्पन्न करना।
- समस्याओं का चुनाव कर योजना बनवाना।
- वास्तविक क्रिया करना तथा प्रासंगिक समस्याओं को भी हल करना।
- कार्य समाप्ति पर मूल्यांकन।
- कार्य का अभिलेख तैयार करना।

योजना के दो रूप होते है– व्यक्तिगत, सामाजिक , उक्त वैज्ञानिक विधि का प्रयोग समस्या समाधान विधि अथवा प्रयोजना विधि के रूप में कक्षाध्ययन के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रोजेक्ट में क्रियात्मक प्रवृत्ति का होना अनिवार्य नहीं है और न ही आवश्यक है, कि प्रोजेक्ट सामूहिक हो। प्रयोजनवादी विधि ज्ञान प्राप्ति को आगमन विधि है, और हरबर्ट द्वारा प्रतिपादित निगमन विधि से कुछ भिन्नता रखती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

17– प्रयोजनवादी शिक्षण विधियों में नयापन क्या है?

.....

18–योजना विधि के गुण बताइये?

.....

7.11 प्रयोजनवादी एंव छात्र संकल्पना

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं कि बालक एक सामाजिक प्राणी है। प्रयोजनवाद के अनुसार छात्र अनुभव का केन्द्र है। यदि वह अनुभव करने में असमर्थ है तो शिक्षा असम्भव है। प्रयोजनवादी वैयक्तिकता को महत्वपूर्ण मानता है। वह वैयक्तिकरण का जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य मानता है। बालक को किसी भी सिद्धान्तों में बांधा नहीं जाना चाहिये। बालक को विलक्षण मानकर ही उनकी शिक्षा होनी चाहिये।

प्रकृतिवाद के समान प्रयोजनवादी भी छात्र के व्यक्तित्व का एक प्रमुख पक्ष शरीर को मानता है। विद्यार्थी सक्रिय अनुभव प्राप्त करने वाला अंगी है। बालक निष्क्रीय रूप से जगत का प्रभाव ग्रहण करने वाला नहीं अपितु अनुभव के प्रवाह में सक्रिय रूप में गोता लगाने वाला है।

बालक का अस्तित्व केवल आंशिक या शारीरिक ही न होकर मनोवैज्ञानिक भी है। प्रयोजनवादी यह भी मानता है कि बालक अर्थ निकालने की प्रक्रिया में भाग लेता है। प्रयोजनवादियों के दृष्टि में सत्य हमेशा निर्मित होता है, यह अनुभवों का परिणाम है और छात्र तथा शिक्षक दोनों ही सत्य का निर्माण करते है। शिक्षा को 'बालकेन्द्रित' माना गया और प्रयोजनवादी यह अपेक्षा करते है कि शिक्षक बालकों की रूचि, क्षमता, आदतों आदि की पूर्ण जानकारी शिक्षक को होनी

चाहिये तभी वह सुचारू रूप से शिक्षा की व्यवस्था कर पायेगा। बालक की मूलभूत रूचियों की जानकारी शिक्षकों को कैसे हो/ जान डी0वी0 इस प्रकार की चार मूलभूत रूचियों को शिक्षा का आधार मानता है।

- वार्तालाप अथवा विनिमय की रूचि।
- जिज्ञासा अथवा नवीन वस्तुओं की खोज करने की रूचि।
- निर्माण की रूचि।
- फलात्मक अभिव्यक्ति की रूचि।

छात्र की संकल्पना का तीसरा प्रमुख तत्व उसका सामाजिक महत्व है। प्रयोजनवादी मानते हैं कि व्यक्ति का समाज के बिना कोई महत्व नहीं है। व्यक्ति का विकास उसके अपने जाति के द्वारा प्रतिक्रिया प्राप्त करके ही हुआ है। समाज व्यक्तियों का आंगिक संघटन है। व्यक्ति जन्म से ही अपने विचारों का आदान–प्रदान कर तादातम्य स्थापना का कार्य करता है। पर सामाजिक पुनर्जन्म उसका समाज में होता है। डी0वी0 के अनुसार वास्तविक शिक्षा तब होती है, जबकि सामाजिक परिस्थितियों को चुनौतियों के कारण उसकी शक्तियां उद्दीप्त होती है। आरम्भ में बालक की शक्तियां अविकसित हेाती है, उनका विकास होना तब प्रारम्भ होता है जब वे अन्य लोगों के साथ सामाजिक सम्बंध कायम करते है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

19–प्रयोजनवादी छात्र को क्या मानते है?

.....

20–प्रयोजनवादी बालक के व्यक्तित्व में किस पक्ष को प्रमुखता देते है?

.....

7.12 प्रयोजनवाद में शिक्षक की संकल्पना

पूर्व में आप प्रयोजनवादी शिक्षा में छात्र की संकल्पना जान चुके हैं, ठीक उसी प्रकार शिक्षक भी एक सामाजिक प्राणी माना गया जिसकी आनी क्षमतायें एवं रूचियां है और वह सामाजिक इकाई के साथ व्यक्तिक इकाई भी है। प्रयोजनवादी विचारधारा अध्यापक की समाज के सेवक के साथ–साथ ईश्वर के सच्चे दूत के

रूप में देखती है। प्रयोजनवादी शिक्षक के कार्य विभिन्न प्रकार के माने गये है। अध्यापक का प्रमुख कार्य छात्र द्वारा प्रभावपूर्ण अनुभव प्राप्त करने के लिये उपर्युक्त परिस्थितियां आयोजित करना है। शिक्षक भी अध्ययन समूह का सदस्य है अतः वह शिक्षक की परिस्थितियां को पूर्व नियोजित करे और स्वतंत्रता की रक्षा करनी चाहिये। प्रयोजनवादी शिक्षक के निम्न दायित्व प्रस्तुत करते हैं।

- अनुभव के लिये सामाजिक परिस्थितियों को सरल रूप में प्रस्तुत करना ताकि बालक की क्षमता के मुताबिक़ आसानी से तथा अल्प समय में शैक्षिक अनुभव अर्जित किया जा सके।
- अनुभव की सभी परिस्थितियों शैक्षिक एवं आदर्श नहीं हेाती शिक्षक सामाजिक अनुभवों को आदर्श एवं शैक्षिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करे।
- वास्तविक जगत में अनुभव संतुलित रूप में नहीं मिल पाता है शिक्षक का कार्य है कि वह छात्रों के सम्मुख सामाजिक अनुभवो को सन्तुलित रूप में प्रस्तुत करे।
- प्रयोजनवादी के अनुसार छात्र के व्यैक्तिक भिन्नता का सम्मान कर उसे समझे और लोकतांत्रिक दृष्टिकोण विकसित करे और छात्रों को सहयोग करने का दृष्टिकोण अपनायें।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

25.प्रयोजनवादी शिक्षक में किन गुणों की अपेक्षा करते हैं?

.....

22 प्रयोजनवादियों के अनुसार बालकों को सामाजिक अनुभव देने के लिये शिक्षक को क्या करना चाहिये?

.....

7.13 प्रयोजनवाद एवं अनुशासन

प्रयोजनवादी शिक्षार्थी की स्वतंत्रता में विश्वास रखता है और साथ ही साथ वह यह भी मानता है कि स्वतंत्रता अमर्यादित नहीं हो सकती है। प्रयोजनवादी 'सामाजिक अनुशासन' को महत्व देते है। विद्यालय में विद्यार्थी समुदाय का गठन कर उसके सहयोग से अनुशासित रहने का प्रयास करें।

प्रत्येक बालक सामाजिक स्वीकृति चाहता है और इस प्रकार सामाजिक दबाव अनुशासन का अत्यन्त सशक्त साधन बन सकता है। प्रयोजनवादी अनुशासन को भिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं। उनके अनुसार कक्षा में शान्तिपूर्ण छात्र अध्ययन करने के बजाय सामूहिक रूप से विचार विमर्श का अवसर दिया जाना चाहिये। छात्र अनुशासित तब स्वयं करेंगे जबकि सीखा जाने वाला तथा क्रिया छात्रों की रूचि से सम्बद्ध हो, और रूचिकर कार्य बालकों में संलग्नता की वृद्धि करती है और फिर यही प्रवृत्ति में आ जाता तो छात्र स्वयं अनुशासित होने में प्रवृत्त होता है। कार्य नीरस का होते हैं अतः यह आवश्यक है कि कार्य सुनियोजित हो बालक स्वयं योजना तैयार करे लक्ष्य निर्धारित करे तथा स्वयं अपने कार्यों का मूल्यांकन करें और इस प्रकार के व्यवहार के आत्म–विश्लेषण द्वारा यह अनुशासन में आबद्ध हो जायेगे।

प्रयोजनवादी यह मानता है कि कार्य स्वयं एक कठोर स्वामी है, कार्य खिलवाड़ नहीं है जब बालक किसी क्रिया में संलग्न हो जाता है, तो उसके अनुशासन में स्वयं को बांध लेता है। डी0वी0 विद्यालय में भी घर सा वातावरण लाना चाहता है परिवारों का कोई लिखित विधान नहीं होता, फिर भी परिवार के सभी सदस्य सहज रूप से अपने–अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं, तथा प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक एवं नैतिक विकास होता चलता है। यदि विद्यालय में भी इसी प्रकार पारिवारिक क्रियाओं में लगकर अध्ययन–अध्यापन क्रियायें आयोजित की जाये तो अनुशासन की समस्या स्वयं हल हो जाती है। व्यक्ति समाज का अंग है और इस नाते उसकी प्रकृति में सामाजिक स्वीकृति निहित है। अनुशासन की समस्या उपस्थित होने पर विद्यालय की ओर से दण्ड विधान कायम करने अथवा दण्ड व्यवस्था करने की अपेक्षा प्रयोजनवादी सामाजिक दबाव की प्रक्रिया को महत्वपूर्ण मानता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

24. प्रयोजनवादी विद्यालयी अनुशासन स्थापन की कौन सी विधा उपस्थित करते है?

.....

7.14 प्रयोजनवाद व पाठ्यक्रम

उपर बताये गये प्रयोजनवादी शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्यों की नजर से

इसकी शिक्षा व्यवस्था का रूप अत्यन्त लचीला और मनोवैज्ञानिक यानि बाल केन्द्रित प्रतीत होता है, और इस प्रकार से प्रयोजनवादी पाठ्यचर्या के बुनियादी सिद्धान्तों को स्वीकार करते है। प्रयोजनवादी मानते हैं कि ज्ञान का कोई स्वतत्रं अस्तित्व नहीं है, यह तो अनुभव का उप–उत्पाद्य है, तथा अनुभव को समृद्ध बनाने में सेहायक होता है, अतः प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम के अन्तर्गत ज्ञानात्मक विषयों की कोई सूची प्रस्तुत नहीं करता परन्तु सामाजिक अनुभवों के माध्यम से समग्र ज्ञान पर आग्रह रखता है। प्रयोजनवादी वैसे तो प्रमुख जातीय प्रवृत्तियों को पाठ्यक्रम का आधार बनाता है परन्तु ज्ञानात्मक विषयों में सामाजिक अध्ययनों को सबसे प्रमुख स्थान देता है, क्योंकि सामाजिक अध्ययन मानवीय अनुभव प्रदान करते हैं तथा मानव की सफलताओं की व्याख्या करते हैं, यदि जान डी0वी0 द्वारा स्थापित शिकागों के प्रयोगात्मक विद्यालय के पाठ्यक्रम को देखा जाये तो यह पायेगें कि डी0वी के प्रायोगिक विद्यालय में लिखने–पढ़ने तथा गणित की क्रियाओं से पढ़ाई आरम्भ नहीं होती, अपितु परिवार में होन वाली परिचित क्रियाओं से आरम्भ होती है। बालक की अभिव्यक्ति का विकास करने वाली मूलभूत सामाजिक सामग्री से कार्य आरम्भ होता है। गृह–निर्माण (काष्ठकला), वस्त्र–निर्माण (कताई,बुनाई,सिलाई) भोजन (पाक कला) आदि प्रवृत्तियों में बालक को लगाया जाता है। इन कार्यों को सुचारू रूप से करने में परोक्ष रूप से सामाजिक विनियम के विभिन्न तत्वों के सम्पर्क में बालक आता है, जैसे वार्तालाप, लिखना, पढ़ना, चित्र बनाना हिसाब करना आदि।

प्रयोजनवादियों को विज्ञान का अमानुषीय विवेचन पसन्द नहीं, यद्यपि वह सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के लिये वैज्ञानिक विधि को अपनाने की सिफारिश करता है। प्रयोजनवादी द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों को संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

- **उपयोगिता का सिद्धान्त**– प्रयोजनवादी मनुष्य के उद्देश्यों और इच्छाओं की पूर्ति पर बल देते है। उनके अनुसार पाठ्यक्रम में ऐसे विषय हो जो उपयोगी हो जैसे– भाषा, स्वास्थय विज्ञान, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान और शारीरिक प्रशिक्षण को स्थान दिया जाये। बालिकाओं के लिये गृहविज्ञान होना चाहिये। भविष्य के लिये किसी व्यवसाय का प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये।
- **बालक की रूचि का सिद्धान्त** – प्रयोजनवादियों के अनुसार बालक की रूचियां उसके विकास के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार से होता है, पाठ्यक्रम निर्माण में अवस्था के अनुसार रूचि का ध्यान रखा जाये जैसे प्रारम्भिक विद्यालय के छात्रों की खोज रचना, कला, प्रदर्शन और बातचीत में रूचि होता है, इसीलिये पाठ्यक्रम में पढ़ना लिखना, गिनना, हाथ का काम, ड्रांइग और प्रकृति अध्ययन रखे जाये।

- **अनुभव केन्द्रिता–** प्रयोजनवादी मानते है कि पाठ्यक्रम का बालक के अनुभव, भावी व्यवसायों और क्रियाओं के साथ घनिष्ठ सम्बधं होना चाहिये। सभी विषयों के साथ पाठ्यक्रम में स्वतंत्र, अर्थपूर्ण और सामाजिक क्रियाओं का भी स्थान होना चाहिये। डी0वी0 के अनुसार– *"विद्यालय समुदाय का अंग है, इसलिये यदि ये क्रियायें समुदाय की क्रियायें समुदाय की क्रियाओं का रूप ग्रहण कर लेंगी, तो ये बालक में नैतिक गुणों और पहल कदमी तथा स्वतंत्रता के दृष्टिकोण का विकास करेंगी। साथ ही ये उसे नागरिकता का प्रशिक्षण देंगी और उसके आत्म अनुशासन को ऊँचा उठायेंगी।"*
- **एकीकरण का सिद्धान्त–** जैसा कि आपको ऊपर बताया जा चुका है कि प्रयोजनवादी बुद्धि की एकता और ज्ञान की एकता में विश्वास करते हैं, अतः उनके अनुसार वास्तविक ज्ञान अखण्ड होना चाहिये यही कारण वे पाठ्यक्रम को विभिन्न विषयों में बांटना नहीं चाहते। रॉस ने स्पष्ट लिखा है कि– *"प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में विषयों के परम्परागत विभाजन की निंदा करते हैं एक विषय की दूसरे से अलग नहीं किया जाना चाहिये इसका कारण है कि मानव क्रियायें महत्वपूर्ण है न कि विद्यालय में पढाये जाने वाले विषय और उनके द्वारा सीखने के लिए दी जाने वाली सामग्री अलग अलग विषय पढाये जाने के बजाय सब ज्ञान एक साथ दिया जाय जिसका उस क्रिया से सम्बंध है जिसे वह कर रहा है।"*

ब्रूबेकर के शब्दो में– *"प्रयोजनवादी क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम चाहते है। वे पाठ्यक्रम को लाभप्रद लचीला गतिशील एंव सुसम्बद्ध रखना चाहते है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

25. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम में एकीकरण का सिद्धान्त क्या है?

.....

26. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम की मूलभूत विशेषतायें क्या है?

.....

7.15 सारांश

प्रयोजनवाद ने शिक्षा को एक नयी दिशा देकर नई क्रांति को जन्म दिया।

प्रयोजनवादी दर्शन से शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया। कक्षा के समग्र वातावरण में नया रूप आया। कक्षा में अध्ययन–अध्यापन का निष्क्रीय स्थान से हटकर छात्र क्रियाओं का प्रभावी स्थान बना। प्रयोजनवाद ने बालक की स्वतंत्रता का उद्घोष किया। लोकतांत्रिक युग में केवल व्यक्ति को ही अंतिम लक्ष्य माना गया शिक्षा में इस वास्तविकता को प्रयोजन में सबसे पहले स्वीकार किया गया। बालक शिक्षण प्रक्रिया का सक्रिय घटक बना और पाठ्यक्रम में क्रिया प्रधानता की विशेषता ने स्थान ले लिया और वैज्ञानिक विधि को शिक्षा में प्रतिस्थापित किया। शिक्षा की नवीन योजनाओं में सप्रयोजन शिक्षा का तथ्य स्वीकार्य हो गया। प्रयोजनवाद की सबसे बड़ी असफलताओं में अदर्शों एवं मान्यताओं की अवहेलना, सत्य को परिवर्तनशील मानना, सांस्कृतिक आदर्शों की उपेक्षा व शिक्षा के उद्देश्य न मानना इत्यादि है पर प्रयोजनवादी दर्शन का शिक्षा पर विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा इसकी प्रशंसा में रस्क ने लिखा है– प्रयोजनवाद, नवीन आदर्शवाद के विकास में एक चरण मात्र है, यह नवीन आदर्शवाद ऐसा होगा जो सदैव जीवन की वास्तविकता का ध्यान रखेगा और व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का समन्वय करेगा इसके साथ ही यह ऐसी संस्कृति का निर्माण करेगा जो कुशलता का पुण्य होती है, यह इकाई पढ़ने के पश्चात आपको ज्ञानात्मक एवं बोधात्मक स्तर पर घनात्मक प्रभाव अवश्य पड़ा होगा।

7.16 अभ्यास कार्य

प्रयोजन क्या है ? शिक्षा के सिद्धान्त उद्देश्य पाठ्यक्रम एवं कार्य प्रणाली को इसने किस प्रकार से प्रभावित किया है? विवेचना कीजिये।

7.17 चर्चा के बिन्दु

वर्तमान भारत की शिक्षा के पुनर्निमाण में आदर्शवादी प्रकृतिवादी एवं प्रयोजनवादी दार्शनिक विचारधारा सम्वेत रूप से उचित आधार प्रदान कर सकती है। चर्चा कीजिये।

7.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अमेरिका में यूरोप निष्कासित ल्यूरिटन द्वारा इस दर्शन के विकास एवं विस्तार के कारण।
2. अर्थक्रियावाद, व्यवहारवाद, करणवाद, पुनर्रचनावाद, अनुभववाद, फलानुमेय, प्रमाण्यवाद, प्रयोगवाद।
3. आदर्शवाद द्वारा प्रतिपादित पूर्व–सत्य के विरूद्ध आवाज और प्रकृतिवाद के अमानवीय वैज्ञानिक सत्य के विरोध स्वरूप।

4. प्रैग्मेटिज्म इस शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द प्रैग्मा से हुयी।

5. किसी कार्य व सिद्धांत के लिये व्यावहारिकता और उपयोगिता आवश्यक है, अन्यथा कोई महत्व नहीं। उपयेागिता पर बल देने के कारण प्रयोजनवाद नाम पड़ा।

6. प्राकृतिक नियम की धारणा निर्देशात्मक होने के बजाय वर्णनात्मक है।

7. ज्ञान अनुभव में निहित है। अनुभव तात्कालिक या मध्यस्थ हो सकता है। अनुभव अनुभूति की वस्तु है।

8. चर्ल्स सैण्डर्स पियर्स की पुस्तक में सर्वप्रथम प्रयोग।

9. विचार का प्रयोजन मानवीय रूचियों की संतुष्टि।

10. डी0वी0 ने प्रयोगात्मक विधि को जो वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रयुक्त होती है मानवीय सामाजिक समस्याओं का हल करने के लिये उपयुक्त माना।

15. जेा सिद्धान्त कार्य करते हैं, उपयेागी है।

12. मनुष्य मनोशारीरिक प्राणी है। एक सामाजिक प्राणी है, उसे सामाजिक कुशलता सीखनी चाहिये।

13. मनुष्य के समस्त अनुभवों की सम्भावनाओं को संगठित करना।

14. समाजिक कार्य को प्रमुखता, बालक को वास्तविक जीवन अनुभव प्रदान करना, शिक्षा हेतु पर्याप्त स्वतंत्रता, बालकेन्द्रिता, मानवीय एवं सामाजिक केन्द्र से प्रारम्भ, राज्य का हस्तक्षेप रहित।

15. उद्देश्य केवल व्यक्ति के होते हैं जो कि भिन्न और परिवतर्नशील होते हैं और उद्देश्य भी अवस्था के साथ –साथ बदलते हे तो शिक्षा के उद्देश्य स्थिर कैसे रह सकते हैं।

16. सम्पूर्ण विकास व्यक्तिगत मूल्यों एवं आदर्शों का निर्माण, सामाजिक कुशलता का विकास एवं गतिशील निर्देशन।

17. क्रिया आधारित, उद्देश्यपूर्ण, लचीली, एकीकृत एवं वैज्ञानिक।

18. वास्तविक परिस्थितियों में स्वयं के प्रयास द्वारा सीखना तथा सामाजिक मनोवृत्ति का निर्माण।

19. सामाजिक प्राणी एवं अनुभव का केन्द्र।

20. आंगिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों पक्ष को।

25. विषय का ज्ञाता, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त, क्रियाशील एंव लोकतांत्रिक दृष्टिकोण वाला।

22. सरलतम रूप में प्रस्तुतीकरण तथा संतुलित रूप में सीखने की उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करके।

23. विद्यालय में घर का सा वातावरण बनाकर पारिवारिक एवं सामाजिक क्रियायें करवाये जाये जिससे कि अध्ययन अध्यापन की क्रिया स्वाभाविक ढंग से हो सके और अनुशासन की समस्या स्वयं हल हो जाये।

24. पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों को अलग न करके एकीकरण रूप में प्रस्तुत किया जाये क्योंकि ज्ञान विभाजित नहीं अखण्ड होता है।

25. प्रयोजनवादी पाठ्यक्रम लाभप्रद, लचीला, गतिशील, सुसम्बद्ध एवं क्रिया प्रधानता।

7.19 कुछ उपयोगी पुस्तकें –

- रस्क आर0आ0 (1972) : *शिक्षा के दार्शनिक आधार,* जयपुर : हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- Butler J.D. (1951) : *Four Philosophies of Education*, New York Harper & Bros.
- Brubacher J.S. (1942) : *Modern Philosophies of Education*, New, York : Mac – Graw Hill Book Co.
- ओड एल0के0 (2005) : *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- पाल, गुप्त एवम् मदनमोहन (1995) : *शिक्षा दर्शन,* कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद
- चतुर्वेदी एस0 (1970) : *शिक्षा दर्शन,* लखनऊ, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ
- Kilpatrik W.H. (1954) : *Philosophy of Education*, New York, Macmillan & Co., 1954
- Henderson S.P. (1947) : *Introduction to Philosophy of Education*, Chicago University of Chicago.

इकाई – 8. यथार्थवाद तथा अस्तित्ववाद

संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 यथार्थवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

8.4 यथार्थवाद का अर्थ

8.5 यथार्थवाद के दार्शनिक आधार

8.6 यथार्थवाद के सम्प्रदाय

8.7 यथार्थवाद एवं शिक्षा

8.8 यथार्थवाद शिक्षा के उद्देश्य

8.9 यथार्थवाद एवं पाठ्यक्रम

8.10 यथार्थवाद में शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षालय की संकल्पना

8.11 अस्तित्ववाद की संकल्पना एवं सिद्धान्त

8.12 अस्तित्ववाद एवं शिक्षा

8.13 अस्तित्ववादी शिक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थी

8.14 अस्तित्ववाद पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधि

8.15 सारांश

8.16 अभ्यास कार्य

8.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें।

8.1 प्रस्तावना

यथार्थवाद किसी सुगठित दार्शनिक विचारधारा का नाम न होकर उन सभी विचारों का प्रतिनिधित्व करता है जो यह मानते हैं कि वस्तु का अस्तित्व स्वतन्त्र रूप से है। आदर्शवाद में हमने अध्ययन किया था कि 'वस्तु' का अस्तित्व हमारे ज्ञान पर निर्भर है। यदि विचार नही है तो वस्तु का कोइ अस्तित्व नही है, चाहे वह अनुभव में हो या न हो। वस्तु अथवा पदार्थ किसी प्रकार के ज्ञान पर आश्रित नहीं है। वस्तु तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान दोनों पृथक–पृथक सत्ताएं हैं और संसार की हर वस्तु का ज्ञान हमें हो यह आवश्यक नहीं है पर जगत की सम्पूर्ण रहस्य हमारी ज्ञान की सीमा में कभी नहीं आ सकता । ज्ञान प्राप्ति का क्रम निरन्तर चलता रहेगा, और ज्ञान वृद्धि के साथ

वस्तु जगत की हमारी जानकारी अधिक व्यापक और स्पष्ट होगी। यथार्थ जैसा कि यह संयार है वैसा ही सामान्यतः उसे स्वीकार करने में होता है। वास्तव में सब कुछ सामने देखकर अविश्वास नहीं किया जा सकता इसी कारण यथार्थ जैसा शब्द पैदा हुआ और व्यक्ति के विश्वास एवं दृष्टिकोण की भित्ति पर यथार्थवाद बना है। दूसरी ओर बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते ही विश्व में औद्योगीकरण एवं भूमण्डलीकरण का प्रभाव परिलक्षित होने लगा और संघर्ष के घिरे विश्व में भौतिकवादी धारा का प्रवाहित हुयी। मनुष्य के अस्तित्व का महत्व घटने लगा और इस गम्भीर समस्या को दूर कर मानव अस्तित्व को पुनर्जीवित करने हेतु अस्तित्ववादी विचारधारा का उद्‌भव हुआ। इस इकाई में हम अस्तित्ववाद विचारधारा एवं यथार्थवाद के उक्त विचार की ओर अधिक स्पष्टता के साथ समझने का प्रयास जायेगा।

8.2 उद्‌देश्य –

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- यथार्थवाद एवं अस्तित्ववाद की ऐतिहासिक आधार संकल्पना की विवेचना कर सकेंगे।
- यथार्थवाद एवं अस्तित्ववाद के दार्शनिक आधार एवं विभिन्न सम्प्रदायों का वर्णन कर सकेंगे।
- यथार्थवादी एवं अस्तित्ववाद शिक्षा की विशेषताएं एवं उद्‌देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- यथार्थवादी एवं अस्तित्ववाद पाठ्यक्रम, शिक्षक, शिक्षार्थी एवं शिक्षालय की संकल्पना की आख्यायित कर सकेंगे।

8.3 यथार्थवाद का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यथार्थवाद विचारधारा नहीं है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह वाद भी कई शताब्दियों से चला आ रहा है। अरस्तु ने अपनी पुस्तक 'फिजिक्स' में लिखा है – *"इस प्रकार की बहुत सी वस्तुयेंह" जिन्हें हमसे संकेत किया है। जैसे कि पशु, पौधे, हवा, अग्नि और जल और जो अधिक स्पष्ट ढंग से प्रदर्शित करने का प्रयत्न करेगा तो उसे मालूम होगा कि अन्य कम प्रकट वस्तुओं की अपेक्षा उसे ज्ञात होगा कि उसमें विभेद करना कठिन नहीं है कि किनका अस्तित्व है किनका नहीं।"* इसका अभिप्राय है कि जगत यथार्थ है। अरस्तु के बाद सन्त अक्विनास के विचारों में भी पदार्थ की यथार्थता का आभास मिलता है। सन्त अक्विनास ने माना कि ईश्वर ने वस्तु जगत का निर्माण किया है। इसके पश्चात दर्शन जगत में कमेनियस नामक शिक्षाशास्त्री ने यथार्थवाद की भावना का प्रचार किया। कमेनियस ने मन को एक वस्तु रूप दिया। उनके अनुसार मनुष्य का मन *"एक गोल आकार का दर्पण है जो कमरे में टंगा है और जिसमें उसके*

चारों ओर की सभी वस्तुओं की प्रतिच्छाया पड़ती है।"

कमेनियस के पश्चात यथार्थवाद का विकास वस्तुतः माना जाता है। इसके बाद सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी से यथार्थवाद ने एक नया रूप लेकर आगे की ओर विकसित हुआ। डेकोर्ट ने यथार्थवाद को एक नया रूप दिया और आदर्शवादी विचारों के साथ यथार्थवादी विश्वास को बढ़ावा दिया। डेकोर्ट ने अपने द्वितत्ववाद ने यथार्थवाद की स्पष्ट झलक दिया और स्पष्ट किया कि ईश्वर एवं प्रकृति अलग–अलग तत्व हैं। इसके पश्चात् स्पिनोजा ने भौतिक पदार्थ एवं वस्तुओं के प्रसार में ईश्वर के गुण को देखकर यथार्थवादी विचारधारा को हवा दी। स्पिनोजा के पश्चात लॉक ने अपने विचार प्रस्तुत किये कि अनुभव से ही ज्ञान प्राप्त होता है और अनुभव प्राप्त करने में प्रकृति सहयोग देती है। प्रथम प्रकार अनुभव बाह्य जगत के प्रभाव से इन्द्रियों के द्वारा मन को ज्ञान मिलता है। लॉक के पश्चात कान्ट के विचारधारा में भी यथार्थवादी झलक मिलती है। कान्ट के अनुसार हमारे इन्द्रियानुभव और प्रत्यक्षीकरण बाह्य जगत की पुनःउपस्थिति हैं। यदि ये हमारी चेतना में उपस्थित हैं तो कांट का यह विचार नवयथार्थवाद से मिलता है। शिक्षाशास्त्री हरबार्ट के विचार में भी यथार्थवादी पुट मिलता है क्योंकि हरबार्ट मन पर बाह्य जगत पर प्रभाव मानते हैं।

बीसवीं शताब्दी से यथार्थवाद की नयी विचारधारा ने जन्म लिया और यह नवयथार्थवाद कहलायी। राल्फ, बाटन, पैरो, एडविन, वी0होल्ट, वाल्टर टी0, मारावन, एडवर्ड, ग्लीसन, स्फालडिंग तथा वाल्टर वी0 पिटकिन आदि नवयथार्थवादी कहलाये। यूरोप में यथार्थवाद का विकास का श्रेय ब्रेटेनो तथा मीरांग तथा जेम्स और मोच को है। बाद में मूर तथा रसेल ने आदर्शवाद के विरोध में यथार्थवाद को बढ़ाया। अमेरिका में इंग्लैण्ड के दार्शनिक नन, रसेल आदि के प्रयासों से आगे बढ़ा। इसके पश्चात् एलेक्जेन्डर, लायड मार्गन, मायड, मूर, केम्प, स्मिथ, जोड आदि अन्य दार्शनिकों ने यथार्थवादी प्रवृत्ति प्रकट की है। इसके पश्चात् आलोचनात्मक यथार्थवाद ने जन्म लिया। इनमें यथार्थवाद ड्यूरट ड्रेक, आथर ओ0 लवज्याय, जेम्स विसेट प्रैट, जार्ज सथ्याना, आर्थर के0 राजर्स तथा सा0ए0 स्ट्रांग आदि प्रमुख हैं। नवयथार्थवाद एवं आलोचनात्मक यथार्थवाद में भेद केवल ज्ञान के सिद्धान्त में से हैं। आलोचनात्मक यथार्थवाद के अनुसार हमारी चेतना में वस्तु की उपस्थित नहीं हो तो बल्कि उसकी पुनरूपस्थिति होती है और चेतना में हम जिस वस्तु का अनुभव करते हैं वह बाह्य वस्तु से अलग होती है। नवयथार्थवादी ऐडमसन तथा एंड्रूसेट नामक नवयथार्थवादी के अनुसार वस्तु हमारे जगत ने यथार्थ होती हैं और प्रत्यक्षीकरण के तीन अंश होते हैं– प्रत्यक्षीकरण का कार्य, प्रत्यक्ष, प्रत्यक्षीकृत वस्तु। बाद में सेलार्स ने भौतिक यथार्थवाद की विचारधारा निकाला जिनके अनुसार संसार की वस्तुओं का स्थान तथा भौतिक गुण होता है और वे भौतिक प्रणाली में अविच्छेद रूप से बंधी हुयी है।

भारतीय दार्शनिक परम्परा में यथार्थवादी विचारधारा भी मिलती है। वेदों में

प्रकृति के तत्वों का वर्णन मिलता है, जिन्हें देवरूप स्वीकार किया गया और तत्सम्बन्धी उपासना हुयी। मानव शरीर को पंचतत्व का मेल माना और शरीर को धर्म का साधन माना। साधन को यथार्थ व अस्तित्ववान माना गया।

यथार्थवादी के तत्वमीमांसा के तत्व भारतीय दर्शन में मिलता है जिसमें संसार के पदार्थ भौतिक तथा मानसिक पदार्थ में बंटे माने गये। चरम यथार्थवादी चार्वाकवादी माने गये और इन्होंने संसार को यथार्थ माना। इन चार्वाकवादियों में इन्द्रियसुख को महत्व दिया। सांख्य दर्शन में भी यथार्थवादी तत्व पाये जाते हैं क्योंकि प्रकृति एवं पुरूष दो तत्व माने गये हैं। प्रकृति को सत्य, रजस और तमस् से युक्त माना गया और प्रकृति के परिवर्तन पुरूष के लिए उपभोग का आधार प्रदान करती है।

बौद्ध दर्शन में यथार्थवादी तथ्य प्रकट होते हैं, बौद्ध विषय वादियों की एक प्रशाखा मानता है कि बाह्य जगत है तथा उनका अपरोक्ष तथा साक्षात् प्रत्यक्ष होता है। बौद्ध धर्म का दूसरा सम्प्रदाय यह मानता है कि पदार्थों का उनके प्रत्ययों से अनुमान लगाया जता है जो उनकी प्रतिच्छाया तथा प्रतिरूप है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं में भी यथार्थवादी भावना पायी जाती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1.किस आदर्शवादी विचारक की किस पुस्तक में यथार्थवाद के पुट मिलते हैं।

.....

2.नवयथार्थवाद एवं आलोचनात्मक यथार्थवाद में मूलभूत अन्तर क्या था?

.....

3.भारत के किन दर्शन में यथार्थवादी तथ्य मिलते हैं।

.....

8.4 यथार्थवाद का अर्थ

यथार्थवाद के लिए अंग्रेजी का शब्द 'रियलिज्म' है। 'रियल' शब्द ग्रीक भाषा के रीस शब्द से बना है जिसका अर्थ है वस्तु। अतः रियल का अर्थ होता है वस्तु सम्बन्धी। यही कारण है "रियलिज्म' (यथार्थवाद) वस्तु के अस्तित्व से सम्बन्धित यह एक दृष्टिकोण है जिसके अनुसार संसार की प्रत्येक वस्तु सत्य है और प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष का अनुभव हमें इन्द्रियों से होता है। वास्तव में यथार्थवाद एक भौतिकवादी दर्शन है।

वस्तु को वास्तविक अथवा यथार्थ मानने के कारण ही इस विचारधारा को वास्तववाद अथवा यथार्थवाद की संज्ञा दी जाती है। यथार्थवाद जगत को मिथ्या कहने वाली भावना का विरोधी स्वर है।

- **कार्टर वी0 गुड महोदय के अनुसार** – *"वह सिद्धान्त जिसके अनुसार वस्तुगत यथार्थता या भौतिक जगत चेतन मन से स्वतन्त्र रूप में अस्तित्व रखता है, उसकी प्रकृति और गुण उसके ज्ञान से मालूम होते हैं।"*
- **रास महोदय के अनुसार** – *"यथार्थवाद यह मानता है कि जो कुछ हम प्रत्यक्ष में अनुभव करते हैं, उनके पीछे तथा उनसे मिलता जुलता वस्तुओं का एक यथार्थ जगत है।"*
- **स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में** – *"यथार्थवाद का अर्थ उस विश्वास अथवा सिद्धान्त से है जो संसार को वैसा ही मानता है जैसा वह हमें दिखाई पड़ता है – अर्थात संसार केलव एक प्रपंच मात्र है।"*
- **नेफ के अनुसार** – *"यथार्थवाद आत्मगत आदर्शवाद का प्रतिकार है, जो सत्य का निवास मानव मस्तिष्क में मानता है। सब यथार्थवादी इस बात से सहमत हैं कि सत्य और वास्तविकता का अस्तित्व है और रहेगा, भले ही किसी व्यक्ति को उनके अस्तित्व का ज्ञान न हों।"*
- **ब्राउन के अनुसार**– *"यथार्थवाद का मुख्य विचार यह है कि सब भौतिक वस्तुएं तथा बाह्य जगत के पदार्थ वास्तविक हैं और उनका अस्तित्व देखने वाले से पृथक है। यदि उनको देखने वाले व्यक्ति न हों, तो भी उनका अस्तित्व होगा और वे वास्तविक होंगे।"*

यथार्थवाद साधारण व्यक्तियों की विचाराधारा माना जाये तो कुछ अनुचित नहीं है। सरल यथार्थवाद वस्तु जगत के प्रति हमारे दैनिक जीवन अनुभव एवं विश्वास ही है। साधारणतया हम यह कह सकते हैं कि भौतिक सत्य को ही यथार्थवादी सब कुछ मानता ह। यथार्थवाद भौतिक जगत की सत्यता एवं सत्ता दोनों में विश्वास रखता है। यथार्थवाद प्रयोगवाद में विश्वास रखता है। डॉ0 चौबे ने स्पष्ट तौर पर यथार्थवादी दर्शन के विषय में कहा – *"यथार्थवाद अनुभव में भौतिक यथार्थता के जगत को वास्तविक एवं आधारभूत वस्तु मानता है। इसका विचार है कि भौतिक जगत ही वस्तुगत है और तथ्यगत जगत की कोई ऐसी वस्तु है जिसे जैसे वह है उसी तरह सरलता से स्वीकार कर लेता है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गयें रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

2. प्रकृतिवाद एवं यथार्थवाद के भौतिक जगत सम्बन्धी दृष्टिकोण में क्या अन्तर है?

3. यथार्थवाद सत्य की क्या अवधारणा मानते हैं?

8.5 यर्थाथवाद के दार्शनिक आधार

- **तत्व दर्शन में यर्थाथवादः–** यर्थाथवाद यह मानते हैं कि ब्रह्माण्ड गतिशील पदार्थ का बना है? हम अपने अनुभवों के आधार पर जगत के नियमित क्रियाकलापों को पहचान सकते हैं। पदार्थ गतिशील हैं और वह अस्तित्व में हैं इसलिए सत्य है।

- **ज्ञान शास्त्र में यथार्थवाद** – यथार्थवादियों का विचार है कि वास्तविक जगत का अस्तित्व है। हम वास्तविक वस्तु को जानते हैं क्योंकि इसका अस्तित्व है। हम यह कह सकते हैं कि वस्तु का वास्तविक जगत में अस्तित्व है तो वह सत्य है। कोई भी कथन विश्लेषण के पश्चात ही स्वीकार्य है। ज्ञान का अस्तित्व मस्तिष्क ही स्वीकार करता है।

- **मूल्य मीमांसा में यथार्थवाद** – यथार्थवादी प्राकृतिक नियमों में विश्वास करते हैं उनका कहना है कि मनुष्य इन नियमों का पालन करके सद्जीवन व्यतीत कर सकता है। प्रकृति सौन्दर्य से परिपूर्ण है। सौन्दर्य पूर्ण कला–कार्य, ब्रह्माण या प्रकृति की व्यवस्था तथा तर्क की प्रतिछाया है। कला की सराहना की जानी चाहिए।

यथार्थवाद के सिद्धान्त – यथार्थवाद प्रत्यक्ष जगत में ही विश्वास करते हैं उनके अनुसार अस्तित्व प्रत्यक्ष में हैं। उनके कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं जिस पर नीचे विचार किया जा रहा है।

- **दृश्य जगत ही सत्य**– यथार्थवादी यह मानते है कि जो कुछ हम देखते सुनते व अनुभव करते हैं वही सत्य है। प्रत्यक्ष ही सत्य है। इस जगत का सत्यता विचारों के कारण नहीं है अस्तित्व स्वयं में हैं।

- **इन्द्रियाँ अनुभव व ज्ञान का आधार** – सच्चे ज्ञान की प्राप्ति ने हमारी बाह्य इन्द्रियां सहायक होती हैं क्योंकि यह हमें अनुभव प्रदान कर पूर्ण एवं वास्तविक ज्ञान लेने का आधार बनाती हैं। रसेल व हाइटहैड ने संवेदना को ज्ञान का

आधार माना। रसेल के अनुसार – *"पदार्थ के अन्तिम निर्णायक तत्व अणु नहीं है, वरन संवेदन हैं। मेरा विश्वास है कि हमारे मानसिक जीवन के रचनात्मक तत्व संवेदना तत्व संवेदनाओं औति प्रतिभाओं में निहित होते हैं।"*

- **वस्तु जगत की निरन्तरता** – यथार्थवादी वस्तु जगत मे नियमितता को स्वीकार करते हैं। वे मन को भी यांत्रिक ढंग से क्रियाशील मानते हैं। यथार्थवादियों का विचार है कि अनुभव और ज्ञान के लिए नियमिता का होना आवश्यक है।
- **यथार्थवाद पारलौकिकता को अस्वीकार करता है** – यथार्थवाद प्रत्यक्ष को ही मानता है क्योंकि उसका अस्तित्व है और यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आधार है।
- **वर्तमान व व्यावहारिक जीवन को महत्व** – यथार्थवादी उन आदर्शों, नियमों एवं मूल्यों का कोई महत्व नहीं देते हैं। जिनका सम्बन्ध वर्तमान एवं व्यवहारिकता से नहीं है। बौद्धिकता व आदर्शवादिता जीवन को सुखी नहीं कर सकते उनका मानना है कि–
  - जीवन का लक्ष्य समाज का कल्याण होना चाहिए।
  - समाज के लोगों का दृष्टि कोण वैज्ञानिक हो।
  - सामाजिक सक्रियता पर बल दिया जाना चाहिए।
  - जीवन में वे क्रियायें अपनायी जायें जो लाभप्रद हों।
  - वर्तमान जीवन ही विश्वसनीय हैं और भौतिकता से परिपूर्ण होना चाहिए।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6. यथार्थवादी ज्ञान का द्वार किसे मानते हैं और क्यों ?

7. यथार्थवादी मानव जीवन के विषय में क्या विचार रखते है ?

8.6 यथार्थवाद के सम्प्रदाय

अब आप यर्थावाद के दार्शनिक आधार एवं सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। अब हम यह जानेंगे कि यथार्थवाद के कौन–कौन से सम्प्रदाय हैं इनके विषय में नीचे वर्णन किया गया है।

- **मानववादी यथार्थवाद** – इसे ऐतिहासिक यथार्थवाद कहा गया। इसका जाना सांस्कृतिक पुनरूत्थान के युग में हुआ। इस युग में मनुष्य को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया। इस दर्शन में मुख्य रूप जीवन एवं प्रकृति को महत्व दिया और प्राचीन साहित्य अध्ययन को महत्व दिया। इस विचारधारा को मानने वाले इरैसमस, रैबेले एवं मिल्टन थे।
- **समाजिकतावादी यथार्थवाद** – इस विचारधारा ने पुस्तकीय अध्ययन का विरोध किया। बालक में सामाजिक कुशलता को उत्पत्ति को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना एवं व्यवहारिक अनुभव आधारित शिक्षा पर बल दिया। लॉड मोटैन एवं जॉन लॉक प्रमुख विचारक थे।
- **ज्ञानेन्द्रिय यथार्थवाद** – इस विचारधारा का सबसे अधिक प्रभाव शिक्षा पर पड़ा। इसके दृष्टिकोण में प्रकृतिवाद एवं प्रयोज्यवाद के सभी अनुभवादी सिद्धान्तों की झलक मिलती है।
- इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री बेकन, जर्मनी के रॉटके व चेकोस्लोबाकिया का कामेनियस इस विचारधारा के विचारक माने गये ज्ञानेन्द्रिय यथार्थ ने ज्ञानेन्द्रियों को ज्ञान का मुख्य आधार माना इस विचारधारा ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8. मानवतावादी विचारधारा ने किसके अध्ययन पर जोर दिया?

9. ज्ञाननेन्द्रिय यथार्थवादी किस ज्ञान को सर्वोच्च मानते हैं?

8.7 यथार्थवाद एवं शिक्षा –

यथार्थवादी शिक्षा का क्रमबद्ध विवेचन हैरी ब्राउडी की पुस्तक "ब्रिल्डिंग अ फिलासफी ऑफ एजुकेशन" (1954) में प्राप्त होता है। यथार्थवादी शिक्षा की कुछ विशेषताएं नीचे वर्णित है–

- **उदार शिक्षा** – यथार्थवादी उदार शिक्षा पर बल देते थे। उन्हांने पुस्तकीय एवं अव्यवहारिक ज्ञान का विरोध किया। मिल्टन ने स्पष्ट कहा है कि – *"मैं उस शिक्षा को पूर्ण एवं उदार शिक्षा कहता हूँ जो एक व्यक्ति को न्यायोचित ढंग से कुशलतापूर्वक तथा उदारता के साथ निजी एवं सार्वजनिक– दोनों प्रकार के सभी कार्यों को शान्ति तथा युद्ध के समय पूर्ण करने के योग्य बनाती है।"*

- **विस्तृत एवं व्यवहारिक पाठ्यक्रम** – रास ने स्पष्ट किया है कि यथार्थवाद पुस्तकीय एवं अवास्तविक ज्ञान के विरोध में आया है। यथार्थवाद ने पाठ्यक्रम को विस्तृत बनाया। कार्टर वी गुड ने लिखा है – *"विस्तृत पाठ्यक्रम यथार्थवाद की एक प्रमुख विशेषत थी। 17 वीं शताब्दी के यथार्थवादियों के लिए यह स्वाभाविक नहीं थी कि वे 25 या 80 विषयों को अध्ययन हेतु प्रस्तुत करें। जिसमें लैटिन, फ्रैंच और वर्नाक्यूलर जैसी दो या तीन भाषाये, गणित की दो या तीन शाखायें, कई सामाजिक अध्ययन के विषय, बहुत से विज्ञान, दार्शनिक, सैन्य सम्बन्धी और व्यावसायिक तथा शिष्टाचार सम्बन्धी विभिन्न विषय हो।"* यथार्थवादियों ने पाठ्यक्रम को वास्तविक जीवन से जोड़ा।
- **विज्ञान शिक्षा पर बल** – यथार्थवाद के अनुसार व्यापक कोष और अन्य सूच्य एवं निरर्थक विषयों के स्थान पर विज्ञानों का अध्ययन का क्षेत्र में होना चाहिए। हरबर्ट स्पेन्सर ने अपने लेख "एजूकेशन" में स्पष्ट किया और आवश्यकतानुसार विभिन्न विज्ञानों के अध्ययन पर बल दिया एवं आगमन विधि के प्रयोग पर जोर दिया।
- **व्यावसायिक शिक्षा पर बल** – यथार्थवादी शिक्षा के साथ साथ व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल देता है। डेविनपोर का कथन है – *"कोई भी व्यक्ति किसी व्यवसाय के बिना शिक्षा का चयन न करें और न बिना शिक्षा के व्यवसाय का चयन करे।"*
- **समाजिक संस्थाओं को महत्व** – यथार्थवादी शिक्षा में विषयों की अपेक्षा प्राकृतिक तत्वों एवं सामाजिक संस्थाओं को महत्व दिया। पॉल मुनरो ने लिखा है – *"शिक्षा में यथार्थवाद उस प्रकार की शिक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिसमें भाषाओं और साहित्य की अपेक्षा प्राकृतिक घटनाओं और सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन को मुख्य विषय बनाया जाता है।"*
- **वास्तविक शिक्षण पर बल** – यथार्थवाद अध्यापक की शिक्षण विधि तथा मूल्यों से भी सम्बन्ध रखता है और इस बात पर बल देता है कि अध्यापक वास्तविक शिक्षण करे। रॉस ने लिखा है – *"शिक्षा में यथार्थवादी विचारधारा शिक्षक को शिक्षण विधि के सम्बन्ध में ही नहीं वरन् उसकी पाठ्य वस्तु की महत्ता एवं उसके मूल्य हेतु सतत् चिन्तनशील रहने के लिए चुनौती देती रहती है।"*
- **शिक्षा जीवन की पूर्णता** – यथार्थवादी मानते हैं कि शिक्षा को मानव को जीवन के सुख व उपभोग के लिए तैयार करना चाहिए।और शिक्षा मानव की रूचि, योग्यता एवं आवश्यकता के अनुसार नियोजित की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. यथार्थवादियों ने पाठ्यक्रम को व्यवहारिक एवं विस्तृत बनाने पर क्यों जोर दिया?

.....

8.8 यथार्थवादी शिक्षा के उद्देश्य –

मूल्यों के विषय में यथार्थवादी दृष्टिकोण व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ है। अतः उद्देश्य में वस्तुनिष्ठता की स्पष्ट झलक मिलती है।

- **जीवन जीने की कला प्रदान करना** – यथार्थवादी बच्चों को विद्वान बनाने के बजाय जीवन को सुचारू रूप से जीने की कला सिखाने की वकालत करते हैं। उनके अनुसार बालक को व्यावहारिक जीवन को सुख पूर्वक जीने के लिए सामाजिक एवं प्राकृतिक परिवेश का पूर्ण तथा समग्र ज्ञान आवश्यक है जिससे कि व्यक्ति समायोजित हो सके।
- **सामाजिक दायित्व के निर्वहन की योग्यता का विकास** – रॉस ने आग्रह कर लिखा है कि "शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों का इस प्रकार निर्माण करना है कि वे सामाजिक संस्थाओं में अपना दायित्व निभा सकें। वे सामाजिक संस्थायें हैं – परिवार, उद्योग, स्वास्थ्य संरक्षण राज्य इत्यादि।
- **वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास** – यथार्थवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास करना भी है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के लिए तर्कनापरक विवके आवश्यक है। इससे बालक तथ्यों को खोजबीन करके सोच–समझकर वास्तविकता को समझ सकेगा।
- **जीवन को सुखी व सफल बनाना** – यथार्थवादी वह मानते हैं कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो कि बालक को सुखी व सफल बनाये।
- **बालक का सर्वांगीण विकास** – यथार्थवादी यह मानते हैं कि शिक्षा को बालक के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व सामाजिक विकास करना चाहिये। इस सम्वेत् विकास से सर्वांगीण विकास हो पायेगा। रैवेले के अनुसार– *"शिक्षा का उद्देश्य – बालका का सर्वांगीण विकास करना है।"*
- **व्यावसायिक आत्मनिर्भरता** – यथार्थवादी मानते हैं कि जीवन को सभ्य, सुन्दर एवं उपयोगी बनाना है तो आत्मनिर्भरता अति आवश्यक है। विवेकानन्द जी के दर्शन में भी यथार्थवादी का पुट मिलता है उन्होंने स्पष्ट किया है – *मैं*

सच्ची शिक्षा उसे कहता हूँ जो बालक को इस योग्य बना दे कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो जाये।"

- **विवकेशील एवं सदाचारी बनाना** – मान्टेसरी के अनुसार *"व्यक्ति को बुद्धिमान एवं विवकेशील बनाना जिससे व्यक्ति जीवन को सफल एवं उपयोगी बना सके तथा समाज की उन्नति में सहयोग दे यही शिक्षा का उद्देश्य है।"* लॉक के अनुसार– *"शिक्षा का उद्देश्य – बालक में सद्गुण, बुद्धिमता, सदाचरण तथा सीखने की शक्ति का विकास करना होना चाहिए।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11. यथार्थवादी शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों से कोई चार उद्देश्य लिखिए।

8.9 यर्थाथवादं एवं पाठ्यक्रम

हम ऊपर यर्थाथवाद के अनुासार शिक्षा के उद्देश्य पढ़ चुके है। इन उद्देश्यों के अनुरुप शिक्षा का प्राठ्यक्रम विस्तृत व उपयोगी माना गया है। यर्थाथवादी पाठ्क्रम की निम्न सिद्धान्तों पर आधारति करना चाहते है–

- उपयोगिता का सिद्धान्त
- व्यापकता सिद्धान्त
- वैज्ञानिकता का सिद्धान्त
- उद्देश्य परिकल्पना का सिद्धान्त
- समन्वित होने का सिद्धान्त
- लचीलेपन का सिद्धान्त
- विविधता का सिद्धान्त

इन सिद्धान्तो को सम्मिलित करते हुये यर्थाथवादियो ने पाठ्यक्रम का निर्धारण किया है जो निम्नवत है–

- **मानवतावादी रैवले के अनुसार**–पाठ्यक्रम में अंकगणित, रेखागणित, खगोल विद्या तथा संगीत को स्थान देना चाहिये।
- **मिल्टन के अनुसार**–लैटिन, व्याकरण, गणित, ज्यामिति, कृषि, भौतिक शास्त्र, शिल्पकला, भूगोल, अर्थशास्त्र, नितिशास्त्र एवं खगोलविद्याा को सम्मिलित किया जाना चाहिये।

- **समाजिक यर्थाथवादी माइकल डी0 माण्टेसरी के अनुसार**–माण्टेसरी पाठ्रूक्रम में भाषा, प्राकृतिक अध्ययन, काव्यशास्त्र, तेर्कशास्त्र, भौतिकशास्त्र, ज्यामिति एवं इतिहास को महत्व देते है।
- **जॉनलॉक के अनुसार**–लॉक ने पाठ्यक्रम को कई भागों में विभक्त किया।

- अंग्रजी ड्राईग करना व लिखना
- फ्रेंच व लैटिन
- अंकगणित, नीतिशस्त्र, रेखागणित, भूगोल, इतिहास एवं ज्यामिति
- बइबिल, नीतिशास्त्र सामान्य व अन्तराष्ट्रीय कानून
- अंग्रेजी बोलने व लिखने की कला
- हस्तकार्य, व्यायाम, स्वास्थय रक्षा, घुड़सावारी, हथियार चलाना, नृत्य आदि

- **ज्ञानेन्द्रि यर्थाथवादी रिचर्ड मूलकरस्टर के अनुसार** –बालक के सर्वप्रथम मातृभाषा या बोलचाल की भाषा पढ़ाया जाय।
- **जॉन कॉमेनियस के अनुसार**–कॉमेनिययस ने पाठ्यक्रम में 17वी शताब्दी के विश्वकोशों को रखा
- **वैज्ञानिक यर्थाथवादी हरबर्ट के अनुसार**–पाठ्यक्रम में आत्मरक्षा की क्रियायें (शा0 विज्ञान, स्वाथ्य विज्ञान व पदार्थ विज्ञान), जीवन रक्षा (भूगोल, भाषा गणित), सन्तान रक्षा से सम्बन्धित (गृह विज्ञान, जीवन विज्ञान व बाल विज्ञान), समाज रक्षा (इतिहास, राजनीतिशास्त्र,अर्थशास्त्र) एवं अवकाश सम्बन्धि क्रियाये (कथा, संगीत, और साहित्य) सम्मिलित करने के बल पर दिया।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12. यर्थाथवादी पाठ्यक्रम की क्या विशेषता है?

.....

8.10 यर्थाथवाद में शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षालय की संकल्पना

- **शिक्षार्थी**– यर्थाथवाद बालक की एक अतिविकसित मस्तिष्क वाले अंगी के रुप में स्वीकार किया है। दिक् व काल से युक्त वह अविकसित जीव है। यर्थाथवादी मानते है कि मानव शिशु बृद्धिमान होता है। ह्वाइटहैड कहते है–*"विद्यालय में बालक सक्रिय मस्तिष्क वाला अंगी होता है। बौद्धिक क्रिया उसके समग्र शरीर में शरीर की प्रत्येक संवदेना में व्याप्त होती है। अधिगम*

प्रक्रिया में यह बौद्धिक प्रक्रिया अधिक सक्रिय रुप से आँख, कान, वाणी तथा हाथ में केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार मस्तिष्कीय–क्रिया तथा भौतिक सृजनशील–क्रिया के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है और इन्द्रियों एव विचारो के मध्य समन्वय स्थापित हो जाता है।" यर्थाथवादी मानते है कि बालक को कोई सन्दूक या उपकरण न मानकार उसे आवश्यक शैक्षिक अवसर आवश्यकतानुसार ही उपलब्ध कराना चाहिए। शिक्षा के साथ बालक को शारिरिक एवं मानसिक स्वास्थता के साथ–साथ साहस संवेदनशीलता व बुद्धि प्रदान की जानी चाहिए। यर्थाथवादी छात्र को पलायन की प्रवृति के विपरीत वर्तमान परिस्थितियों से जूझते हुए देखना चाहते है

- **शिक्षक संकल्पनाः–य**र्थाथवादी शिक्षक को ऐसे सहायक एवं पथप्रदर्शक के रुप में मानते है जो कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए शिक्षार्थी में अन्वेषण एवं चिन्तन की शक्ति विकसित करने का कार्य करता है। यर्थाथवादी शिक्षक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला व्यवहारिक एवं क्रियाशील होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन एवं वैज्ञानिक विधि का प्रयोग कर वह अपनी शिक्षण विधि में संशोधन एवं परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। बर्टैण्ड रसेल कहते है कि *"शिक्षक को अपने शिक्षण में अन्वेषण के साथ रोचकता भी लानी चाहिए। शिक्षण को बालक को अन्वेषण हेतु स्वतंत्र वातावरण प्रदान करना चाहिये।"*
- **शिक्षालय संकल्पनाः**– यर्थाथवाद ने शिक्षालय व्यवथा पर भी प्रकाश डाला है। कमेनियस का कथन है कि *"विद्यालय मनुष्यों के वास्तविक निर्माण का स्थान है।"* इससे स्पष्ट है कि शिक्षालय अत्यन्त आवश्यक है और वह स्थान है जहाँ बालक एक सफल और योग्य मानव बनता है। परन्तु यर्थाथवादी यह मानते है कि मानव विकास के लिए विद्यालयों का स्थान महत्वपूर्ण है और सबसे उपर है। विद्याालय में शान्ति, सुन्दरता और ज्ञान की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए। बालक–बालिकाओं के लिए पृक्षक शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिये। विद्यालयों की नवीनता एवं व्यावहारिक शिक्षा के द्वारा व्याप्त दोषों को दूर करना चाहिये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

13.यर्थाथवादी "शिक्षालय" की क्या अवधारणा रखते है?

.....

14.यर्थाथवादी शिक्षक में क्या गुण चाहते है?

.....

8.11 अस्तित्ववाद की संकल्पना एवं सिद्धान्त

अस्तित्ववाद बीसवी शताब्दी का नया दर्शन है। जहाँ विज्ञान और भौतिकवादी प्रवाह ने मनुष्य के अस्तित्व को ही मूल्यविहीन किया वही लोकतंत्रात्मक व समाजवादी राजनैतिक विचारधाराओं ने व्यक्ति के अस्तित्व से उपर समाज के अस्तित्व पर मुख्य चिन्ह लगा दिया तो मानव अस्तित्व को महत्व देने हेतु नयी दार्शनिक प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। इस विचारधारा ने यह अस्वीकार कर दिया कि समाज को व्यक्ति क अस्तित्व से ऊँचा माना जाय। इसलिए इस दार्शनिक अभिव्यक्ति ने मानव की भावात्मक अभिव्यक्ति को मजबूत आधार प्रदान करने का कार्य किया।

अर्थ– अस्तित्ववाद के मूल शब्द है "अस्ति" जो कि संस्कृत से शब्द 'अस्' धातु से बना है। जिसका अर्थ "होना" तथा अंग्रेजी का शब्द 'इक्सिटैन्सिलिज्म' शब्द "एक्स एवं सिस्टेरे" से बना है। जिसमें एक्स का अर्थ है बाहर और सिस्टेर का अर्थ है खड़े रहना अतः अस्तित्ववाद वह दार्शनिक दृष्टिकोण है जिसमे व्यक्ति अपने अस्तित्व को विश्वपटल पर स्पष्ट रुप से रखने का प्रयास करता है।

अस्तित्ववाद मुख्य रुप से इस प्रश्न में रुचि रखता है कि "मनुष्य क्या है?" प्रो0 ब्लैकहोम ने इसे सत्तावाद या सद्वाद का दर्शन माना उनका कथन है कि –*"अस्तित्ववाद सद्वाद या सत्तावद का दर्शन है, प्रमाणित तथा स्वीकार करने और सत्ता का विचार करने तथा तर्क करने के प्रयास को न मानने का दर्शन है।"*

अस्तित्ववाद इन तथ्यों पर विचार करता है–

1–अस्तित्ववाद का सार से अधिक महत्व–डेकार्टे का प्रमुख उद्धरण है– "मै सोचता हूँ इसलिए मेरा अस्तित्व है।" अस्तित्ववादी द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता उनके अनुसार मनुष्य का अस्तित्व पहले है तभी वह विचार कर सकता है। मनुष्य अपने अस्तित्व के पश्चात ही जीवित रहने के बारे में चेतना विकसित करता है। अस्तित्व वादी मनुष्य को मूल्यों का निर्माता मानते है। प्रो0 सात्रे का कथन है–*"मै केवल अपने को सम्मिलित करता हूँ। इस प्रकार का भाव अहं बोध का भाव है और इसके कारण वह अपने किये कार्यो की कमियों को जानकर सुधरने का प्रयास करता है।"*

2–सत्य और ज्ञान–अस्तित्ववादी सहज ज्ञान में विश्वास करते है। ज्ञान मानवीय होता है। व्यक्ति द्वारा अनुभव से प्राप्त ही ज्ञान सच्चा है यही सत्य है। सत्य व्यक्ति का आत्मपरक, यर्थाथ, आत्मानुभूति की उच्चतम व्यवस्था है। यह अमूर्त की परिणति स्वरुप है।

3–स्वतंत्रता–मनुष्य का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए उसे "चयन करने वाला अभिकरण" मानना आवश्यक है। उसकी स्वतन्त्रता सम्पूर्ण है। मनुष्य को क्या बनना है। इसका चुनाव करने लिए वह पूर्ण स्वतंत्र है। चयन करने तथा निर्मित होने की प्रक्रिया मानव के स्वयं के अस्तित्व में है। व्यक्ति सूक्ष्मरुप में ईश्वर का प्रतिमान है, जो वि: स्वतंत्रता के साथ कार्य कर सकता है।

4–वैयक्तिक मूल्यों को प्राथमिकता–अस्तित्ववाद में मूल्य सर्वथा वैयक्ति होते है। अतः सत एवं असत तथा शुभ एवं अशुभ केवल वैयक्तिक मूल्य है। जिनकी व्याख्या प्रत्येक

व्यक्ति अपने ढ़ग से कर सकता है। अस्तित्ववाद मनुष्य को भयंकर बोझ से लदा हुआ मानता है और अपनी असफलता के लिए मानव किसी पराशक्ति में आश्राय नहीं ढूँढ सकता।

5–मानव का स्वरुपः–अस्तित्ववादी मनुष्य को सभी गुणों से परिपूर्ण, अपने जीवन के निर्णय लेने में समर्थ एवं चेतनायुक्त मानते है। ब्लैकहोम लिखते हैं कि–*"मानव सत्ता की मानव सत्ता की परिभाषा नही दी जा सकती क्याकि वह प्रदत्त वस्तु नहीं है, वह प्रश्न है मानव सम्भावना मात्र उससे स्वयंभु बनाने की शक्ति है। उसका अस्तित्व अनिर्णित होता है क्योकि उसकी समाप्ति नहीं होती। मानव मात्र चेतन प्राणी ही नहीं अपितु अद्वितीय रुपेण वह आत्मचेंतना से युक्त है वह विचार ही नही वरन् विचार के लिए भी सोचता है।"*

अस्तित्ववाद दर्शन के सिद्धान्त–

अस्तित्ववाद दर्शन के अपने कुछ सिद्धान्त है, जिसके विषय में हमारा ज्ञान आवश्यक हैं और ये सिद्धान्त है–

1. व्यक्तिगत मूल्यों एवं प्रयासों को महत्व दिया जाना।
2. अस्तित्ववाद व्यक्तिगत मनुष्य की स्वतंत्रता एवं मुक्ति पर बल देता है। मुक्ति असीमित है।
3. अस्तित्ववाद सर्वश्रेष्ठता के अन्तयुर्द्ध से उठकर नैतिक बनकर साथ रहने पर बल देता है।
4. अस्तित्ववाद मनोविश्लेषणात्मक विधियों को अपनाने में विश्वास करता है।
5. अस्तित्ववाद मानव के अस्तित्व में विश्वास करता है, इसका आभास हमें प्रो0 ब्लैकहोम शब्दों में निम्नलिखित रुप में मिलता है–"अस्तित्ववाद सद्भाव या सत्तावाद का दर्शन है, प्रमाणित तथा स्वीकार करने और सत्ता का विचार करने और तर्क करने को न मानने का दर्शन है।"

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

15. अस्तित्ववाद के उद्भव का क्या कारण है?

.....

16. अस्तित्ववाद किसको महत्वपूर्ण मानते है?

.....

17. अस्तित्ववाद शब्द का मूल अर्थ कहाँ से आया?

8.12 अस्तित्ववाद एवं शिक्षा

अस्तित्ववादी दर्शन इतना क्रान्तिकारी तथा जटिल है कि शिक्षा की दृष्टि से इस पर कुछ कम विचार हुआ है। अस्तित्ववाद का पादुर्भाव एक जर्मन दार्शिनिक हीगेल के "अंगीकारात्मक या स्वीकारात्मक" आदर्शवाद का विरोध है। हम पूर्व में भी पढ़ चुके है कि यह अहंवादी दर्शन की एक खास धारा है।" मानव को चेतना युक्त, स्वयं निर्णय लेने अपने जीवन दशाओं को तय करने के योग्य मानते है तो ऐसी दशा में शिक्षा की आवश्यकता स्वयं सिद्ध हो जाती है। भारतीय दर्शन में इस दर्शन का प्रभाव परिलक्षित नहीं हुआ। परन्तु पाश्चात्य दर्शन ने इसका उल्लेख स्पष्ट रुप में मिलता हैं। अस्तित्ववाद के शैक्षिक विचार पर प्रथम पुस्तक 1958 में प्रकाशित हुई और इस ओर मुख्य योगदान प्रो0 मारिस, प्रो0 नेलर तथा प्रो0 ब्रूबेकर आदि का है।

शिक्षा का अर्थः– अस्तित्ववादी शिक्षा को मनुष्य की एक क्रिया या प्रवृति मानते है। शिक्षा मनुष्य के अपने व्यक्तिगत अनुभूति के रुप में पायी जाती है। अस्तित्ववादी शिक्षा को मनुष्य को अपने अस्तित्व की प्रदर्शित करने का माध्यम मानते है। अस्तित्ववादी के अनुसार शिक्षा व्यक्तिगत प्रयास है।

अस्तित्ववाद एवं शिक्षा के उद्देश्य –प्रो0 ओड के अनुसार अस्तित्ववादी शिक्षा के उद्देश्य अग्राकित अविधारणा पर आधारित है–

- मनुष्य स्वतंत्र है, उसकी नियति प्रागनुभूत नहीं हैं। वह जो बनना चाहें, उसके लिए स्वतंत्र है।
- मनुष्य अपने कृत्यो का चयन करने वाला अभिकरण है उसे चयन की स्वतंत्रता है। इनके आधार पर उद्देश्य निर्धारित है–

1.स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास–चयन करने वाला अभिकरण होने के नाते चयन प्रक्रिया में व्यक्ति को समग्र रुप से अन्तःग्रसित हो जाना पड़ता है। अतः शिक्षा का यह उद्देश्य है कि वह बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करे।

2.व्यक्तिगत गुणों व मूल्यों का विकासः–अस्तित्ववादी मानते है कि मानव स्वयं अपने गुणों एव मूल्यों को निर्धारित करता है। अतः शिक्षा को बालक में व्यक्तिगत गुणों और मूल्यों विकास की योग्यता विकसित करनी चाहिए।

3.मानव में अहं व अभिलाषा का विकास करना–इस सम्बन्ध में प्रो0 मार्टिन हीडेगर का कथन है–*"सच्चा व्यक्तिगत अस्तित्व ऊपर से थोपे गये और अन्दर से इच्छित किये गये अभिलाषाओं का संकलन है।"* अतः अस्तित्ववाद यह मानता है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की अहं भावना के साथ अभिलाषा का भी विकास करना होना चाहिये।

4.वास्तविक जीवन हेतु तैयारी:—मानव अस्तित्व जीवन में यातना एवं कष्ट सहकर ही रहेगी। अतः अस्तित्ववादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह भावी जीवन में आने वाले संघर्षो, कष्टों और यातनाओं को सहन कर सके जो उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन में आ सकते है। अस्तित्ववादी मृत्यु की शिक्षा देने के पक्ष में है।

5.व्यक्तिगत ज्ञान या अन्तर्ज्ञान का विकास करना:—इस सम्बन्ध में प्रो0 बिआउबर का कहना है—*'मानव एक पत्थर या पौधा नहीं है'* और अस्तित्ववाद इसके अनुसार दो—बातें मानते है कि मनुष्य अपनी बुद्धि और सूझ बूझा से काम करते है अतः अस्तित्ववादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत सहज ज्ञान या अन्तर्ज्ञान का विकास करना है और मानव को अपने क्रियाओं हेतु निर्णय लेने में सहायता देना है।

बोध प्रश्न—

टिप्पणी—क—नीचें दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख—इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

18. अस्तित्ववादी मानव को वास्तविक जीवन के लिए क्यों तैयार करना चाहिये?

.....

19. अस्तित्ववादी मनुष्य में अहं भावना का विकास करना क्यों चाहतें है?

.....

8.13 अस्तित्ववादी शिक्षा में शिक्षक एवं शिक्षार्थी—

अस्तित्ववाद के अनुसार हमे छात्र के अस्तित्व को महत्व देना चाहिये। अस्तित्ववादी विद्यार्थी के कुछ कर्तव्य निर्धारित करते है। विद्यार्थी स्वयं में महत्वपूर्ण और सन्निहित होते है। अस्तित्ववाद के अनुसार, विद्यार्थी एक मुक्त या निश्चित परिश्रमों एवं विचारशील प्राणी होता है। विद्यार्थियों की शिक्षा अलग—अलग प्रकार से उनकी योग्यता एवं व्यक्तित्व के अनुसार होनी चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को अपने व्यक्तित्व के विकास एवं पूरा ध्यान देना चाहिये। अस्तित्ववादी बालक के व्यक्तित्व में इन गुणों की परिकल्पना करते है—

- आत्मबोध, आत्मनियर्णय या आत्मनियंत्रण की शक्ति।
- आत्मशुद्धि व आत्मकेंद्रिता के गुण।

- विचारों, एवं इच्छाओं को प्रकट करने की क्षमता।
- सौन्दर्यबोध की क्षमता।
- जीवन पर्यन्त ज्ञान की इच्छा का विकसित करते रहने की क्षमता।
- अध्यापक के साथ सम्बन्ध स्थापन की क्षमता।
- भावात्मक पक्ष की सृदृढ़ता

जैसा कि छात्र संकल्पना में स्पष्ट किया गया है कि अस्तित्ववाद स्वतंत्रता में विश्वास करता है। अस्तित्ववादी अध्यापको को स्वतंत्र विचार करने वाला स्वेच्छा से काम करने वाला, स्वतंत्र मूल्यों को स्थापित करने वाला, आशावादी, व्यावहारिक एवं निर्भीक होना चाहियें। अस्तित्ववादी मानते है कि अध्यापक में विद्यार्थी को उसके अनुकूल तैयार करने की अभिक्षमता होनी चाहिए। शिक्षक को जीवन के वास्तविक अनुभव प्राप्त कर उसके अनुकूल विद्यार्थी तैयार करने हेतु तैयार रहना चाहिये। अस्तित्ववादी यह मानते है कि विद्यार्थियों को आत्मानुभूति के लिए तैयार करना चाहिए और विद्यार्थियों को निजता की अनुभूति करते हुये जीवन के सत्य का बोध कराये। अस्तित्ववादी अनुभूति के माध्यम से विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास करे और इस प्रकार से अस्तित्ववादियों के अनुसार शिक्षक के दायित्व बहुत अधिक है और उसमे विशेष गुण की आवश्यकता होगी उससे अपेक्षा की जाती है कि–

- वह विषय सामग्री के प्रस्तुतिकरण में विद्यार्थियों को उसके सत्य के खोज के लिए स्वतंत्रता प्रदान करे।
- विद्यार्थियों में मस्तिष्क का स्वयं संचालक एवं नियंत्रण की क्षमता विकसित करे।
- विद्यार्थियों को चरित्र गठन कर स्वयं सिद्ध सत्य मानने की क्षमता उत्पन्न करे।
- विद्यार्थियों को चयन करने की स्वतंत्रा प्रदान करें।
- विद्यार्थियों को स्वयं की अनुभूति करने का अवसर प्रदान करे।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

20. अस्तित्ववादी बालक को क्या मानते है?

.....

21. अस्तित्ववादी शिक्षक में किन गुणों की परिकल्पना करते है?

.....

8.14 अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ

पाठ्यक्रम—अस्तित्ववादी जैसा कि पढ चुके है व्यक्ति की वैयक्तिकता को महत्व देता है। अतः यह स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम में हम ऐसे विशेषताओं को अवश्य पायेंगे जिनमें मानव जीवन का अस्तित्व प्रधान है। अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम को विशाल रखना चाहते है। क्योकि उसमें सम्पूर्ण परिवेश (प्रकृति एवं जीवन) का अनुभव सम्मिलित हो पायेगा। अस्तित्ववाद समाज विज्ञान को स्थान प्रदान करता है पर फिर भी यह पक्ष विचारणीय रहता है कि इसके अध्ययन द्वारा विद्यार्थी को अपने आप की निरीहता तथा अंस्तित्व हीनता का अहसास करवाया जाता है।

अस्तित्ववादी वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन को महत्व नही देता है क्योकि वैज्ञानिक अध्ययन निर्वैयक्तिक होता है। उसमे निजता समाप्त होती है। अस्तित्ववादी वैज्ञानिक सत्य को पूर्ण सत्य नहीं मानते है। उनके अनुसार व्यक्ति द्वारा जो चयन किया जाता है वहीं पूर्ण सत्य एवं स्वीकार्य है। अस्तित्ववादी पाठ्यक्रम में कला, साहित्य, इतिहास, विज्ञान, भूगोल, संगीत, दर्शन, मनोविज्ञान, तथा विभिन्न विषयों एवं क्रियाओं को विशेष स्थान दिया जाता है। कला खेलकूद एवं व्यायाम को यथोचित स्थान मिलना चाहिए क्योकि यह विद्यार्थियों के अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए संसार को ज्ञान देते है एवं स्वतंत्र आत्मप्रकाशन का अवसर देते है।

शिक्षण विधि—अस्तित्ववादी ज्ञान मिमांसा के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपने प्रयत्नों से ज्ञान प्राप्त करता है। जो भी धारणाएँ तथ्य आदि उसने ग्रहण किये है। और उसका उत्तरदायित्व उसका स्वयं है। ज्ञान मानवीय होता है।अस्तित्ववादी सामूहिक विधि का विरोध करते है। वह शिक्षण प्रक्रिया को पूर्णतया व्यक्ति केन्द्रित बनाने के प्रबल समर्थक है। सामूहिक विधि वैयंक्तिकता के विकास में बाधक है। विद्यार्थी को एकल शिक्षा दी जानी चाहियें। पृथक शिक्षा के साथ "स्वप्रयत्न द्वारा शिक्षा" का अवसर दिया जाना चाहिये। अन्तर्ज्ञान विधि की परिस्थितिया भी विद्यार्थी को दी जानी चाहियें। अस्तित्ववादी प्रश्नोत्तर विधि से प्रयोग को भी आवश्यक मानते है। क्योकि यह बालक को प्रदर्शन का अवसर उपलब्ध कराती है। अस्तित्ववादी आत्मीकरण के साथ समस्या विधि के प्रयोग को उचित मानते है क्योकि इससे वैयक्तिक योग्यता एवं आत्मदर्शन का पूरा अवसर मिलता है। शिक्षा में अस्तित्ववाद का पूर्णरुपेण नूतन है परन्तु व्यक्तिवादी विचार के कारण शिक्षा मे इसका प्रभाव काफी स्पष्ट है क्योंकि वर्तमान स्वतंत्र युग में व्यक्ति महम्वपूर्ण हो गया है।

- ओड एल0के0 (2005) : *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- पाल, गुप्त एवम् मदनमोहन (1995) : *शिक्षा दर्शन,* कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद
- चतुर्वेदी एस0 (1970) : *शिक्षा दर्शन,* लखनऊ, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ
- Kilpatrik W.H. (1954) : *Philosophy of Education*, New York, Macmillan & Co., 1954
- Henderson S.P. (1947) : *Introduction to Philosophy of Education*, Chicago University of Chicago.

खण्ड

3

शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

इकाई-9 5
धर्म और शिक्षा

इकाई-10 24
जनतंत्र और शिक्षा

इकाई-11 39
शैक्षिक मूल्य

इकाई-12 55
अनुशासन और स्वतंत्रता

MAED-01- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

खण्ड-1	**शिक्षा के दार्शनिक आधार**
इकाई-1	दर्शन का स्वरूप एवं विषय क्षेत्र
इकाई-2	शिक्षा की अवधारणा एवं कार्य
इकाई-3	शिक्षा और दर्शन के बीच सम्बन्ध
इकाई-4	शिक्षा दर्शन का स्वरूप एवं आवश्यकता
खण्ड-2	**शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय**
इकाई-5	प्रकृतिवाद
इकाई-6	आदर्शवाद
इकाई-7	प्रयोजनवाद
इकाई-8	यथार्थवाद तथा अस्तित्ववाद
खण्ड-3	**शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार**
इकाई-9	धर्म और शिक्षा
इकाई-10	जनतंत्र और शिक्षा
इकाई-11	शैक्षिक मूल्य
इकाई-12	अनुशासन और स्वतंत्रता
खण्ड-4	**शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार**
इकाई-13	शिक्षा और समाज
इकाई-14	शिक्षा और राष्ट्रीयता
इकाई-15	शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीयता
इकाई-16	शिक्षा के विज्ञान

खण्ड–3 दार्शनिक दृष्टिकोण से शैक्षिक समस्यायें–

प्रस्तुत खण्ड विभिन्न शैक्षिक समस्याओं से सम्बंधित है, जिन समस्याओं के विषय में विस्तार से चर्चा की गयी है, वह धर्म, जनतंत्र की व्यवस्था, शैक्षिक मूल्य एवं अनुशासन और स्वतंत्रता का शिक्षा से सम्बंध, आवश्यकता, व्यवस्थापन के उपाय आदि है।

इकाई–9 "धर्म और शिक्षा" के अन्तर्गत धर्म की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये मानव जीवन में धर्म के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। धर्म एवं शिक्षा के अन्योन्याश्रिता का वर्णन करते हुये धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता की विवेचना की गयी। धर्म शिक्षा के समक्ष चुनौतियों को रखते हुये उसके सम्भावित उद्देश्य विषय सामग्री एवं शिक्षण विधियों पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई–10 "जनतंत्र और शिक्षा" के अन्तर्गत जनतंत्र की संकल्पना पर विचार करते हुये, उसके आदर्श और शिक्षा की आवश्यकता की भी चर्चा की गयी है। ज़नतंत्र में शिक्षा के स्वरूप को बताते हुये उसके शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बंध, अनुशासन आदि की विशेषताओं पर भी विस्तार से विवेचना की गयी है।

इकाई–11 "शैक्षिक मूल्य" के अन्तर्गत मूल्यों का सम्प्रत्यय उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, मूल्य, शिक्षा एवं समाज, मूल्य शिक्षा की आवश्यकता की विस्तार से चर्चा की गयी है। शैक्षिक मूल्यों का व्यवस्थापन हेतु शिक्षक की भूमिका एवं सुझावों को भी प्रस्तुत किया गया है।

इकाई–12 "अनुशासन एवं स्वतंत्रता" के अन्तर्गत शिक्षा में इन दोनों प्रवृत्तियों की अवधारणा की व्याख्या करते हुये इनके आवश्यकता को समझाया गया है। स्वतंत्रता एवं अनुशासन स्थापन के उपायों को सुझाया गया है।

यह इकाई ज्ञानात्मक एवं बोधात्मक स्तर पर आपके लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

इकाई–9 धर्म और शिक्षा

संरचना –

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 धर्म की अवधारणा

9.4 मानव जीवन में धर्म का महत्व

9.5 धर्म और शिक्षा का संबन्ध

9.6 धर्म शिक्षा की आवश्यकता

9.7 धर्म शिक्षा की चुनौतियां

9.8 धर्म शिक्षा के सम्भावित मूल उद्देश्य

9.9 शिक्षा में धर्म का सम्भावित रूप

9.10 धर्म शिक्षा की विषय सामग्री

9.11 धर्म शिक्षा की शिक्षण विधियां

9.12 सारांश

9.13 चर्चा के बिन्दु

9.14 अभ्यास कार्य

9.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

धर्म मानव जीवन का आधार रहा है क्योकि धर्म ने मानव जीवन को सार्थकता एवं पहचान दी है और इसी प्रकार से शिक्षा और जीवन का आपसी सम्बन्ध अटूट है। शिक्षा का समूचा लक्ष्य मानव जीवन को निरन्तर विकास की ओर ले जाना है और मानव जीवन के अनेक आयाम एवं पक्ष है और मनुष्य को उसकी संस्कषति स्वरूप देती है। धर्म और संस्कषति का अटूट अंग मानव जीवन को प्रभावित करने वाले अनेक तत्वो में से धर्म भी एक प्रमुख तत्व है। इसी प्रकार से शिक्षा और धर्म का सम्बन्ध आदि काल से है। आदि काल से ही शिक्षा का कार्य एक साधन के रूप में कार्य करते हुए धर्म विशेष का प्रचार प्रसार करना था। वर्तमान में शिक्षा और धर्म के सम्बन्ध को नये रूप में परिभाषित किया जा रहा है। इस इकाई में हम धर्म का सम्प्रत्यय, शिक्षा और धर्म का

सम्बन्ध, धर्म के कार्य, धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता आदि के विषय में अध्ययन करेगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेगे कि आप–

- धर्म की अवधारणा को समझकर विविध रूपों में उसके अर्थ को बता सकेगें।
- मानव जीवन में धर्म के महत्व का वर्णन कर सकेगें।
- धर्म और शिक्षा के महत्व को बता सकेगें।
- धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता की विवेचना कर सकेगें।
- धर्म शिक्षा के समक्ष चुनौतियों को समझा सकेगें।
- धर्म शिक्षा के लिये पाठ्यवस्तु एवं शिक्षण विधियों को वर्णित कर सकेगें।

9.3 धर्म की अवधारणा

ह्वाइट हैड ने धर्म को "शिक्षा का सार" माना है। शिक्षा के क्षेत्र में धर्म के महत्व को अस्वीकार नही किया जा सकता है क्योकि धर्म के अभाव में शिक्षा व्यक्ति को कठोर एवं स्वार्थी बना देती है और सामाजिक प्रगति की योजना में धर्म को स्थान नही दिया जाता है तो उस शक्ति की अवहेलना की जाती है जो सामाजिक संगठन को दृढ बनाती है। रॉस का कहना है कि *"शिक्षा का आधार यदि धार्मिक हो तो यह हमारा पथ प्रदर्शन ठीक से कर सकती है और नवयुवको को ठीक मार्ग पर ला सकती है।"* इसी प्रकार रायबर्न ने भी भारत के सम्बन्ध में लिखा है कि *"यहॉ के जनतन्त्र के विद्यालयों का कार्य धर्म के कारण सरलतापूर्वक चल सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि मानव जीवन में धर्म का महत्व अत्यधिक है।"* आज विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दी जाने की मॉग देश– विदेश सभी जगह की जा रही है। तब यह जाना जाये की धर्म क्या है?

भारतीय परिप्रेक्ष्य में – व्यास का कथन है कि *"आरणात् धर्म इत्याहुः"* अर्थात् यह कहा जाता है कि धर्म वही है जिसे धारण किया जाता है। समाज में व्यक्ति जीवन प्रति जो धारणा बनाता है या धारणा करता है वही धर्म है। धर्म संस्कृत के "धृ" धातु से बना है जिसका अर्थ है जो धारण किया जाये। जब क्या धारण किया जाये स्पष्ट हो जाये तो वह धर्म बन जाता है। धर्म एक प्रकार से कर्त्तव्य के द्वारा कुछ समाजोपयोगी तथा आत्मोपयेगी बातों या गुणों को धारण करना कहा जा सकता है। जेम्स ने कहा है – *'धार्मिक जीवन में आत्म समर्पण और त्याग को प्रोत्साहित किया जाता है और अनावश्यक बातो को इसलिये त्यागा जाता है, जिससे सुख की वृद्धि हो*

सके। इस प्रकार उन बातो को सरल और सुविधा जनक बनाता है, जो जीवन की प्रत्येक दशा में आवश्यक है।"

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह।

धी विद्या सत्यमक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम्।

धर्म के दस लक्षण धृति, क्षमा, दम, स्तेय, शुचिता, इन्द्रिय निग्रह, धीर, विज्ञा (ज्ञान), सत्य, अक्रोध (भावनात्मक असंतुलन) है।

अंग्रजी में 'रिलीजन' शब्द की उत्पति लैटिन के दो शब्दों से हुयी – री और लीगर । इसका अर्थ है टू बाइन्ड बैक" अर्थात् "सम्बन्ध स्थापित करना"। इस प्रकार, धर्म वह है जो सम्बन्ध स्थापित करता है। गिस्बर्ट ने लिखा है– *"धर्म दोहरा सम्बन्ध स्थापित करता है: पहला मनुष्य और ईश्वर के बीच दूसरा – ईश्वर की संतान होने के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच"*। धर्म के दो पक्ष आन्तरिक पक्ष में ईश्वर से सम्बन्धित मनुष्य के विचार, विश्वास और भावनायें आती है। बाह्य पक्ष में प्रार्थनायें और धार्मिक रीति रिवाज आते है।

डासन ने स्पष्ट किया है – *"जब कभी और जहाँ कही मनुष्य ऐसी बाह्य शक्तियो पर निर्भरता अनुभव करता है, जो रहस्यपूर्ण और मनुष्य की शक्तियों से कही अधिक उच्चतम मानी जाती है वही धर्म होता है।"*

गिस्बर्ट के अनुसार –"धर्म ईश्वर या सेवाओं के प्रति उसके उपर मनुष्य अपने को निर्भर अनुभव करता है, गतिशील, विश्वास एवं आत्म समर्पण है।

आध्यात्मिक पक्ष से –हीगेल के अनुसार– *"धर्म एक प्रकार का सार्वजनिक दर्शन है।"* टेलर का मत है कि – *"धर्म आध्यात्मिक जीवों में विश्वास है।"* इस प्रकार का विचार ह्यइटहैड ने व्यक्त करते हुये लिखा है कि *" धर्म एक ऐसे तत्व का दर्शन है , जो हमारे परे पीछे और भीतर है – जो वास्तविक (सत्य) है और जिसकी अनुभूति की प्रतीक्षा होती है –जो ऐसा तत्व है , जिसकी अन्तिम आदर्श रूप से आशा रहित खोज होती है।"* आध्यात्मिक दृष्टि से धर्म मूल्यों की खोज और धारण करना है।

नीति के रूप में धर्म – कान्ट ने कहा है –*"धर्म हमारे सामने कर्त्तव्यों को देवी आदेशों के रूप में मान्यता देने को कहता है।"* इस प्रकार धर्म कर्तव्यपालन है रामचरितमानस में कई प्रसंगों में कर्त्तव्य पालन को धर्म की संज्ञा दी गयी है। अभिप्रेतार्थ यह निकालना चाहिये कि *"धर्म नैतिकता का श्रोत है। वहीं व्यक्ति नैतिक है ,जिसमे धर्म की भावना है । परन्तु नैतिकता धर्म का एक अंग है।"*

भावना के रूप में धर्म – धर्म का पोषण मनुष्य की भावनाओं से होता है। हाकिंग ने धर्म की *"वह अन्तर्भाविना या प्रकर्षो कहा है जो अतः प्रेरणा के साथ होती*

है।" सालोमन रीनास ने लिखा है कि–*'धर्म इच्छाओं का योग है जो हमारी बौद्धिक शक्तियों के स्वतंत्र प्रयोग में बाधा डालती है।'* जबकी फायड ने कहा है – *'धर्म को मानवता की दबी हुई भावनाओं से प्रेरित विश्वव्यापी मानस विकार माना जाना चाहिये।"* भावना ने ही धर्म में कट्टरता उत्पन्न की जो वर्तमान में विश्व समाज के समक्ष अनसुलझी उलझन है और इसने कई बार विश्व की मानव जाती को संकट में डाला ।

धर्म एक संस्था के रूप में – धर्म को एक संस्था के रूप में भी देखा जा सकता है क्योंकि इसका निर्माण सम्वेत रूप से समाज ने ही किया है और उनके वैचारिक भावनात्मक, परम्परात्मक एवं व्यवहारात्मक एकता पाई जाती है जिसका पालन उस धर्म के मानने वाले या संस्था के सदस्य करते है।

धर्म को सदैव व्यापक अर्थ में स्वीकार करना चाहिए क्योंकि वह मानवता के प्रति व्यक्तिगण और सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा सांसारिक लौकिक तथा पारलौकिक दोनों रूपों में विभिन्न कर्तव्यों के पालन में होता है। धर्म को धारण कर व्यक्ति का अस्तित्व एवं व्यक्तित्व दोंनों पुरा हों जाता है। धर्म जीवन के प्रति सर्वव्यापक सर्वदेशीय, सर्वकालिक दृष्टिकोणबनाता है। ग्रैण्डमाइसन लिखते है कि –*"धर्म व्यक्तित्व और सामाजिक विश्वासों, स्थायी भावों और अभ्यासों का कुल योग है, जिसका अपना एक उदेश्य होता है, एक शक्ति जिसे मनुष्य सबसे बड़ा मानता है, जिस पर निर्भर रहता है और जिसके साथ वह सम्बन्ध स्थापित कर सकता है अथवा सम्बन्ध स्थपित कर लिया है।"*

बोध प्रश्न

टिप्पणी क– नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपना उतर लिखिए

ख– इकाई के अन्त में दिए गये उतरों से उत्तर का मिलान करें।

1– धर्म का वास्तविक अर्थ क्या है ?

.....

2-- धर्म के बगैर मानव जीवन को नीरस क्यों माना गया

.....

9.4 मानव जीवन में धर्म का महत्व

1933 में महात्मा गाँधी ने मानव जीवन में धर्म को एक महान शक्ति बताया है और कहा–*"धर्म वह शक्ति है जो व्यक्ति का बड़े–बड़े संकट में ईमानदार बनाये रखती है और यह इस संसार में दूसरे में भी व्यक्ति की आशा का अन्तिम सहारा है।"* मानव

जीवन में धर्म के निम्न कार्य बताये जा सकते है–

- धर्म व्यक्ति का व्यक्तित्व एव अस्तित्व को सुनिशिचत करता है।
- धर्म जीवन को आधार प्रदान करता है।
- यह मानव मस्तिष्क को शान्ति देता है और हृदय में आशा का संचार करता है।
- धर्म मानव जीवन कों मानसिक दृढता प्रदान कर नैतिक रखता है।
- यह मानव समूह को व्यवहारात्मक, विचारात्मक, परम्परात्मक एवं भावात्मक रूप से जोडें रहता है।
- धर्म मनुष्य को संस्कषति ण्वं सभ्यता के निर्माण एवं निर्वाह का आधार प्रदान करता है।
- यह व्यक्ति को परिवार, समाज एवं देश से जोडता रहता है।
- धर्म ने मानव जीवन के सम्पूर्ण इतिहास को नया रूप देकर संजोया।
- धर्म मनुष्य को अध्यात्मिकता एव नैतिकता का मार्ग दिखाता है।
- धर्म मनुष्य को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से संघर्ष करने की शक्ति का संचार करता है।
- जीवन के अन्तिम सत्य (मोक्ष) को प्राप्त करने हेतु प्रथम सीढी धर्म का ही है।
- धर्म व्यक्ति की भौतिक एंव आध्यात्मिक उन्नति को आधार प्रदान करता है। कहा भी गया है– यतो अभ्युदय–निश्श्रेयस सिद्धिः स धर्मः। (जिससे व्यक्ति की शारीरिक और आध्यात्मिक उन्नति हो वही धर्म है)
- मानव के सम्पूर्ण इतिहास पर धर्म की छाप है इसकी पुष्टि करते हुये गिर्स्बट ने लिखा है–*"अमरीकी और फ्रान्सीसी क्रांन्तियों पर धर्म की छाप थी और 09 जनवरी 1905 तक रूसी क्रान्तियों पर भी प्रबल धर्मिक प्रभाव था। आधुनिक समय में महात्मागाँधी और आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में होने वाले महान सामाजिक और आथिक आन्दोलनो का आधर धर्म है।"* हम सक्षेप में कह सकते है की धर्म एक सर्व व्यापक शक्ति है जो व्यक्ति और समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। हुमायुँ कबीर ने सत्य लिखा –*"धर्म अनेक संघर्षों का अन्त करता है। यह उन शक्तियों का संचार करता है जो कठिनाइयों और पराजयों कों स्वीकार नही करती है।"*

बोध प्रश्न

टिप्पणी –

क– नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखिए

ख– इकाई के अन्त में दिए गये उतरों से उत्तर का मिलान करें।

3– मानव जीवन धर्म के कुछ महत्वपुर्ण कायों की सुचीबद्ध कीजिये ।

.....

9.5 धर्म और शिक्षा का सम्बन्ध

प्राचीन काल से ही धर्म शिक्षा का प्रेरणा श्रोंत रहा है और शिक्षा जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है, जिससे व्यक्ति के व्यवहारो, प्रवषतियों एव संवेगों में परिवर्तन और सुधार होता है। यही कारण है कि यही कारण है कि धर्म और शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के आरम्भ के साथ ही हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से भी शिक्षा का धर्म से संम्बन्ध है। प्राचीन काल में भी अगर हम दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि शिक्षा का जन्म धर्म के आगोश में हुआ अपने प्रारम्भिक दौर में शिक्षा का लक्ष्य धर्म–उपदेशो का प्रचार–प्रसार करना था और धार्मिक पुस्तकें और धर्म कि बाते ही मुख्यतः शिक्षा का पाठ्यक्रम थी। भारत में वैदिक शिक्षा, बौद्ध शिक्षा, जैन शिक्षा, मुस्लिम शिक्षा आदि शब्द जहॉ धार्मिक शिक्षा के द्योतक है तो इसाई मिशनरियों नें धर्म का सहारा लियां। उस समय भी शिक्षा और घर्म का सम्बंध साधन और साध्य के रूप में था और शिक्षा का अर्थ था एक साधन के रूप में कार्य करते हुये धर्म विशेंष का प्रचार प्रसार करना। शिक्षा की पाठ्यसामग्री धार्मिक शिक्षायें सिद्धान्त व उपदेश थे। आश्रम मठ मदरसे आदि शिक्षा के प्रमुख स्थल थे। शिक्षक का कार्य धर्म विचारक, धर्म गुरू, बौद्ध भिक्षु, पादरी, मौलवी आदि करते थे। निकोलस हैंस ने धर्म को शिक्षा का एक प्रमुख आधार माना और यह माना कि धर्म शिक्षा को अध्यात्मिक आधार प्रदान करता है और आध यात्मिक अवयव व्यक्तिव के भौतिक पक्ष के विरोधी नही वरन पूरक है। जब दोंनो मिलकर काम करते है तो वे राष्ट्रीय संस्कृति का उन्नतशील युग प्रस्तुत करते है। हमारे देश में ही नही विदेशों में भी शिक्षा एवं धर्म की अन्योन्याश्रितता बताई गयी है। इस सम्बन्ध में बटलर का कथन है–"यदि शिक्षा को केवल निर्देश नही कहा जा सकता तो वह क्या है। अपनी शक्तियों को अनुभव करने उसके ज्अटिल विचारो कार्यो और संस्थाओं को आगे बढने में सहायता करने के विचार से जाति के आध्यात्मिक स्वतत्वों के साथ क्रमिक व्यवस्थापन शिक्षा का अर्थ होना चाहिए। वे आध्यात्मिक स्वतत्व कई प्रकार के है। लेकिन निश्चित रूप में वे पॉच प्रकार के है। बालक अपने वैज्ञानिक दाय, साहित्यिक दाय, सौन्दर्यात्मिक दाय, संस्थागत दाय व धार्मिक दाय का अधिकारी होता है। धर्म का शिक्षा में महत्व है क्योकि धर्म–

- शिक्षा को मजबूत आधार प्रदान करता है।
- शिक्षा को विचारात्मक सहयोग देता है।
- दर्शन के निर्माण में सहायक होता है।
- धर्म शिक्षा को आध्यात्मिकता व नैतिकता का पुट देता है।
- शिक्षा में शिक्षक, शिक्षार्थी व शिक्षालय तीनों पर विचारात्मक प्रभाव डालता है।
- शिक्षा में संस्कषति व सभ्यता को संरक्षण देता है।
- यह शिक्षा का साध्य है और जीवन मूल्यों का सम्वाहक है।

सही मायने में धर्म शिक्षा के गुणों की मान्यता आज भी है। इसीलिये विदेश एवं भारत में अनेक आयोगों ने धार्मिक व नैतिक शिक्षा की जोरदार सिफारिश की। इग्लैण्ड के एक समाचार पत्र टाइम्स ने लिखा कि *" किसी शिक्षा को शिक्षा कहलाने के लिये धर्म को अपना आधार बनाना चाहियें।"* अमेरिका, इग्लैण्ड, यूरोप एवं भारत तथा अन्य देश जहॉ विविध प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था है, सभी धर्म की आवश्यकता को समझ रहे है। धर्म और शिक्षा को अलग नही किया जा सकता क्योंकि–

- शिक्षा और धर्म दोनों का लक्ष्य मानव जीवन का उत्थान है।
- शिक्षा और धर्म का सम्बन्ध साधन और साध्य का है।
- शिक्षा और धर्म दोनो एक दूसरे के क्षेत्र, उद्देश्य एवं लक्ष्य को प्रभावित करते है और दूर होने पर संकुचित होकर व्यापकता छोड़ देगें।
- शिक्षा और धर्म दोनों मानवीय गुणों के विकास के लिये है।

जार्ज डब्लू फिस्के ने लिखा है –"शिक्षा की अगणित परिभाषाओं में से कोई भी ऐसी नही है जो धर्म की शिक्षा की सम्भावना और आवश्यकता को सीखने की तहान प्रक्रिया का अंग मानने का सुझाव न देती हो। भौतिकवादी दृष्टिकोंण के सिवाय सभी दृष्टिकोण से शिक्षा में धार्मिक पहलू और धार्मिक विषयवस्तु दिखाई देती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी –

क– नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपना उतर लिखिए

ख– इकाई के अंन्त में दिए गये उतरों से उत्तर का मिलान करें।

4. प्राचीन काल में शिक्षा की क्या संकल्पना थी ?

.....

5. शिक्षा धर्म के लिये क्या करती है।

.....

9.6 धर्म शिक्षा की आवश्यकता

मानव व समाज में धर्म शिक्षा का स्थान सदैव सर्वोपरि रहा हैं परन्तु शिक्षा में धर्म का दृष्टिकोणव्यापक एवं उदार होना चाहिए। धर्म आधारित जड़ता वैमनस्य को जन्म देती है। शायद इसी बात को ध्यान में रखकर भारत जैसे लोकतन्त्रात्मक देश में महात्मा गॉधी ने वर्धा शिक्षा योजना में धर्म को कोई स्थान नही दिया और कहा– *"हमने वर्धा शिक्षा योजना में धर्मो की शिक्षा को इसलिये स्थान नही दिया है, क्योंकि हमें विश्वास है कि आजकल जिस प्रकार धर्मो की शिक्षा दी जाती है और उसका अनुसरण किया जाता है उससे एकता के बजाय संघर्ष उत्पन्न होता है।"* अतः धार्मिक शिक्षा संकीर्णता से उठकर व्यापक धर्म पर आधारित होनी चाहिये। इसके महत्व को नीचे दिया जा रहा है –

- व्यक्ति का सर्वांगीण विकास को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास पर निर्भर न होकर आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता होती है जो कि धर्म प्रदान करता है।
- धर्म के आदर व पालन से मनोवृत्ति पर प्रभाव पड़ता है और व्यक्तिगत तथा सामाजिक बुराईयों का अन्त होता है।
- भौतिकवादी युग में मनुष्य भग्नाशा, दुश्चिन्ता एवं तनाव में जीता है। धार्मिक शिक्षा मष्तिष्क को पोषण देकर स्वस्थ व संघर्षशील बनाता है।
- सभी धर्मों के आवश्यक तथ्यों को पढाने से सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना उत्पन्न होगी।
- धर्म आधारित शिक्षा भौतिकवादी युग एवं वैज्ञानिक प्रयोगो एवं विश्व पर बढते तनाव से विश्व को बचाने एवं एक नई दृष्टिकोणदेने में समर्थ होगी।
- धर्म शिक्षा व्यक्ति में सत्य सदाचार इमानदारी आदी उत्तम गुणों का विकास करती है।
- धार्मिक शिक्षा बालको के मूल प्रवर्षत्ति को शोधन कर स्वच्छ व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होगी।
- इससे संवेगों, भावना एवं वृत्तियों का परिष्कार कर सकते है।
- धर्म असभ्यता, पाशविकता एवं बर्बरता को दूर करने का साधन है।
- धार्मिक शिक्षा मन की स्थिरता, इच्छाशक्ति एवं एकाग्रता को विकसित करने में योग देती है।
- धार्मिक शिक्षा उचित आदर्शो का निर्माण कर मानव को सदाचारी बना सकती है।

- धार्मिक शिक्षा सामाजिक नियन्त्रण एवं एकता की उन्नति कर वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना उत्तपन्न करती है।
- धर्म शिक्षा संस्कषति एवं सभ्यता को संरक्षण प्रदान कर हस्तान्तरण में योगदान देती है।

उपर्युक्त के आधार पर हम कह सकते है कि मानव एवं समाज के जीवन में धर्म का स्थान अति महत्वपूर्ण है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

क– नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपना उतर लिखिए

ख– इकाई के अंन्त में दिए गये उतरों से उत्तर का मिलान करें।

6. धर्म शिक्षा मनुष्य को नैतिक कैसे बनाती है?

.....

7. धर्म शिक्षा धार्मिक सहिष्णुता कैसे उत्पन्न करेगी ?

.....

6.7 धर्म शिक्षा की चुनौतिया

धर्म शिक्षा अतिशिघ्र संकुचित दृष्टिकोणमें आ जाती है, क्योंकि इस शिक्षा को देने के लिए अति उदार दृष्टिकोणचाहिये। धर्म आधारित शिक्षा के समक्ष ये चुनौतियां होगीं –

- एक ही संस्था में कई धर्मो की शिक्षा देना असम्भव है, क्योंकि विद्यार्थी विविध धर्मो से सम्बन्धित हाते है।
- धार्मिक कर्मकाण्ड विद्यालय पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना कठिन है।
- धार्मिक शिक्षा को प्राप्त करने हेतु उदार दृष्टिकोणचाहिये। संकुचित दृष्टिकोणकट्टरता को जन्म देती है।
- अध्यापक के पास धार्मिक शिक्षा देने हेतु धर्म आधारित ज्ञान की आवश्यकता होगी।
- धर्म का वैज्ञानिक ण्व तार्किक आधार को जानकर उसके अनुसार शिक्षा देना कठिन होता है।
- प्राचीन काल में भी जब शिक्षा का आधार धर्म था तब धार्मिक कट्टरता चरम

सीमा पर पहुँची और धर्म के प्रचार प्रसार हेतु शिक्षा को ही हथियार बनाकर कमजोर वर्ग एवं देशों पर दबाव डाला गया जो कि दूर्भाग्यपूर्ण है।

- "आत्मानुभूति" द्वारा ही धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न होती है और यह काफी दूरूह और वयक्तिक योग्यता पर निर्भर करता है जो की कठिन है।

धर्म शिक्षा का मार्ग कठिन है और इसे शिक्षा व्यवस्था का अंग बनाने से पूर्व व्यवस्थित नियोजन करना पड़ेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

क– नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपना उतर लिखिए

ख– इकाई के अन्त में दिए गये उतरों से उत्तर का मिलान करें।

8. धर्म शिक्षा के पीछे मूल समस्या क्या है ?

.....

9.8 धर्म शिक्षा के सम्भावित मूल उद्देश्य

धर्म शिक्षा आदि काल से कई लक्ष्यों को लेकर दी जाती है पर शिक्षा के उद्देश्य उद्देश्य निश्चित ही रहे होगें–

- जीवन में उत्तम गुणें के विकास के लिये धर्म शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना।
- भावनाओं का उदात्तीकरण करना। धर्म की शिक्षा द्वारा व्यक्ति में श्रद्धा, भक्ति, आदर, सम्भाव, एवं कर्तव्य निष्ठा की भावना विकसित करने का प्रयास किया जाना है।
- धर्म शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व का सन्तुलित विकास करना है और सन्तुलित विकास में चारित्रिक एवं भावनात्मक विकास भी आता है।
- धर्म शिक्षा बालक के आचरण, आदत, ज्ञान, कौशल आदि की सुरक्षा करने का उद्देश्य भी रखता है।
- संस्कृति व सभ्यता का संरक्षण करना।
- जनतान्त्रिक मूल्यों को धार्मिक सहिष्णुता द्वारा जीवित रखना व उत्पन्न करना।
- बालकों में वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना उत्पन्न करना।
- शिक्षा व्यवस्था को सम्पूर्णता प्रदान करना।

- सामाजिक पतन से मानव प्रजाति की रक्षा करना।
- नैतिक उत्थान द्वारा आत्मानुशासन की भावना विकसित करना।

बोध प्रश्न

टिप्पणी

क– नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपना उतर लिखिए

ख– इकाई के अंन्त में दिए गये उतरों से उत्तर का मिलान करें।

9. धर्म शिक्षा में आपके अनुसार क्या उद्देश्य होने चाहियें ?

.....

9.9 शिक्षा में धर्म का सम्भावित रूप

शिक्षा में धार्मिक पुट की व्यवस्था आदिकाल से रही है। परन्तु जनतन्त्र के दौर में विश्व के विभिन्न देश धर्म को शिक्षा व्यवस्था में सम्मिलित करने में सतर्क हो गये है। भारत प्रभुत्व सम्पन्न, लोकतन्त्रात्मक, धर्म निरपेक्ष और समाजवादी राष्ट्र है। धर्म निरपेक्ष शब्द 42 वें संशोधन (1976) द्वारा जोड़ा गया। राज्य का किसी भी विशेष धर्म से कोई लगाव नहीं होता बल्कि सभी धर्मों को वह समान रूप से महत्व देता है। हमारे संविधान की 29वीं अनुच्छेद में हमें धार्मिक स्वतंत्रता दी है पर हमारा शासन धर्म निरपेक्ष है। अतः घोषित किया गया कि किसी भी प्रकार की धार्मिक शिक्षा पूर्णतया सहायता प्राप्त विद्यालयों में नहीं दी जायेगी। इस प्रकार भारत जैसे अधिकांश देश अपनी शिक्षा व्यवस्था में धर्म को सम्मिलित करने में निहितार्थ तलाशते रहे। यूरोप का इतिहास भी धार्मिक कट्टरता के रंग से रंगा है तो भारत में भी आदिकाल से ही धार्मिक संघर्ष होते आये हैं। परन्तु संविधान में धर्म और शिक्षा के आपसी सम्बंध की दृष्टि से अनुच्छेद 28 में कहा गया–

- राज्य निधि से पूरी तरह से पोषित शिक्षा संस्थान में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी।
- खण्ड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था पर लागू नहीं होगी। जिसका प्रशासन राज्य करता है, किन्तु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुयी है, जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।
- राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक

शिक्षा में भाग लेने के लिये या किसी ऐसी संस्था में या उससे संलग्न संस्था में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिये तब तक बाध्य नहीं किया जायेगा जब कि उस व्यक्ति ने अनुमति न दे दी हो।

- अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी संस्था में किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इसमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जायेगा।
- अनुच्छेद 30(1) धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।
- अनुच्छेद 30(2) शिक्षा संस्थाओं में सहायता देने में राज्य धर्म आधारित विभेद नहीं करेगा।

इन सभी से स्पष्ट होता है कि राज्य की कोई नीति व्यक्ति और उसका धार्मिक अधिकार के बीच बाधा नहीं बन सकती, परन्तु शिक्षा व्यवस्था के पुनव्यवस्थापन के लिये धर्म शिक्षा की व्यवस्था की बात सभी आयोग करते रहे है। राज्य की तटस्थ नीति का अभिप्राय साम्प्रदायिक दृष्टि से सबमें सद्भाव मेल मिलाप बनाये रखना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1948–49 में डा0 राधाकृष्णन की अध्यक्षता में राधाकृष्णन आयोग गठित हुआ। इस आयोग ने साफ शब्दों में धार्मिक व नैतिक शिक्षा की जरूरत को समझते हुये अनेक सुझाव दिये।

❖ **राधाकृष्णन आयोग के विचार** हिन्दु और मुस्लिम– काल में धर्म का शिक्षण शिक्षा के लिये आवश्यक अंग था और यह सामाजिक जीवन के लिये उपयोगी माना जाता था। अंग्रेजो नें तटस्थता की नीति अपनाकर धार्मिक शिक्षा को कोई स्थान नहीं दिया यद्यपि भारत धर्म निरपेक्ष राज्य है पर धर्म की उपेक्षा नहीं करता और इन विचारों को व्यक्त कर आयोग ने धार्मिक शिक्षा के बारे में निम्न सुझाव दिये–

- सब शिक्षा संस्थाओं को अपना काम कुछ मिनट का मौन ध्यान के बाद प्रारम्भ करना चाहिये।
- बी0ए0 से पहले वर्ष में बुद्ध, कन्फ्यूशियस, जोरेस्टर, सुकरात, ईसा, शंकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य, मुहम्मद, कबीर, नानक, गांधी आदि महान धार्मिक नेताओं की जीवनियां पढ़ी जाय।
- दूसरे वर्ष में संसार की धार्मिक पुस्तकों से कुछ मानवतावादी चरित्रों के आदर्शों को अध्ययन किया जाना चाहिये।
- तीसरे वर्ष में धर्म के दर्शन की मुख्य समस्याओं का अध्ययन किया जाना

चाहिये।

❖ **कोठारी आयोग के विचार–** भारत ने धर्म निरपेक्ष नीति को ग्रहण किया है। इस नीति को अपनाने का अर्थ है राजनैतिक आर्थिक और सामाजिक मामलों के सभी नागरिकों को वह चाहे किसी भी धर्म के मानने वाले हो समान अधिकार प्राप्त होगा, किसी भी सम्प्रदाय के साथ न तो कोई पक्षपात किया जायेगा और उसके साथ कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा, और राज्य के विद्यालयों में धार्मिक सिद्धान्तों की शिक्षा नहीं दी जायेगी। परन्तु इस प्रकार में समाज में धार्मिक शिक्षा और धर्मों के बारे में शिक्षा में भेदभाव करना पड़ता है। शिक्षा आत्मा की अनन्त खोज से सम्बन्धित है जिसकी विभिन्न धर्मों द्वारा खोज की जाती है। अतः भारत जैसे अनेक धर्म वाले देश में किसी एक धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती वरन् सभी धर्मों के सहिष्णुतापूर्ण अध्ययन को बढ़ावा दे वरन् सहिष्णुतापूर्ण सभी धर्मों के अध्ययन को प्रश्रय दे। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा–

- हमारा यह सुझाव है कि प्रत्येक प्रमुख धर्म से सम्बंधित चुनी हुयी जानकारी देने वाला एक पाठ्यक्रम स्कूलों एवं कालेजों में प्रथम उपाधि तक प्रारम्भ किये जाये और नागरिकता सम्बंधी पाठ्यक्रम में या सामान्य शिक्षा के एक भाग के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिये। यह विषय के महान धर्मों पायी जाने वाली मूलभूत समानताओं को भी स्पष्ट करे और यह देश के सभी भागों में एक जैसा हो।

❖ **हीथ कोट ने स्पष्ट कहा है–** *"सिद्धान्त में धर्म और शिक्षा को भले ही एक–दूसरे से अलग कर दिया जाये पर वास्तव में ऐसा विचार असम्भव है। शिक्षा और धर्म का उद्देश्य और लक्ष्य वास्तव में एक ही है। सच्ची शिक्षा का आधार धर्म है और शिक्षा को धर्म से अलग करने का प्रयास उसके क्षेत्र, उद्देश्य और लक्ष्य को सीमित करना है।"* इसी तथ्य को स्पेंस ने भी स्पष्ट किया– *"यदि किसी बालक या बालिका को इस तथ्य का ज्ञान नहीं कराया कि जीवन के बारे में एक धार्मिक दृष्टिकोणभी मौजूद है, तो उसे ठीक तरह से शिक्षित नहीं कहा जा सकता है।"*

इस सम्बंध मे रॉस के ये शब्द सारगर्भित है– *'आज अधिकाधिक विचारशील लोगों का विश्वास यह हो गया है कि यदि हम शिक्षा के द्वारा उच्च कोटि की सभ्यता का निर्माण करना और उसको बनाये रखना चाहते है, एवं कुछ समय के बाद होने वाले पशुता के प्रदर्शन से उसकी रक्षा करना चाहते हैं, तो शिक्षा को धर्म पर आधारित किया जाना आवश्यक है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10. जनतंत्र देश की शिक्षा में धार्मिक पुट की आवश्यकता सर्वाधिक क्यों है?

.....

9.10 धार्मिक शिक्षा की विषय सामग्री

भारत जैसे विविध धर्मो के देश में विद्यार्थियों की धार्मिक शिक्षा में क्या पढ़ाया जाये इसका समाधान गांधी जी ने यह कहकर किया कि– *'मेरे लिये नैतिकता, सदाचार और धर्म पर्यायवाची शब्द है। नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्त सब धर्मों के समान है। इनको बालकों को निश्चित रूप से पढ़ाया जाना चाहिये और इसको प्यार्प्त धार्मिक शिक्षा समझा जाना चाहियें।'* आयोगों व समितियों ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

धार्मिक शिक्षा समिति 1944 के सुझाव– इस समिति के अध्यक्ष लाहौर के विशप बार्ने थे, और 1946 में समिति ने सुझाव दिया।

- धार्मिक व नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों को स्थान व पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाये।
- धर्मो की सम्मति से सामान्य नैतिक व आध्यात्मिक सिद्धान्तों का शैक्षिक कार्यक्रम तैयार करें।

विश्वविद्यालय आयोग 1950 के सुझाव –

- विद्यालय स्तर पर – श्रेष्ठ कहानियों व धार्मिक सिद्धान्तों को समावेशित करें।
- महान व्यक्तियों की श्रेष्ठ भावनाओं व जीवनी को समावेशित किया जाये।

धार्मिक व नैतिक शिक्षा समिति 1959 का सुझाव– 1960 में प्रस्तुत इस रिपोर्ट में यह सुझाव दिये–

- शिक्षा के सब स्तर में धर्मों के आधारभूत विचारों की शिक्षा तुलनात्मक विधि से दी जाये।
- मानसिक विकास के अनुसार आध्यात्मिक सिद्धान्तों का शिक्षण।
- धार्मिक व नैतिक पुस्तकों को तैयार करें।

- प्राथमिक स्तर पर सेवा भावना की उत्पत्ति सप्ताह के दो घण्टे नैतिक शिक्षा दी जाये।
- मुख्य धर्मों के उपदेशों व कला को पढ़ाया जाये।
- माध्यमिक स्तर पर – सभी धर्मों के सिद्धान्तों का शिक्षण किया जाये।
- सेवा भावना विद्यार्थियों में जाग्रत की जाये।
- विश्वविद्यालय स्तर पर डिग्री कोर्स के लिये– विभिन्न धर्मों के सामान्य अध्ययन को अनिवार्य बनाया जाये।
- पवित्र ग्रन्थों को पढ़ाया जाये।
- स्नात्कोत्तर स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन कराया जाये।

शिक्षा आयोग 1964 के सुझाव –

- छात्रों को मूल्यो की शिक्षा दी जाये।
- विद्यालय के कार्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाय।
- सब धर्मो को उचित स्थान देकर सबके आदर्श सम्मिलित किये जाये। मूल्य सम्बन्धित शिक्षण के साथ महान धर्मो का सिद्धान्त पढाया जायें।
- विश्व विद्यालय स्तर पर विद्याथियो को कुशल नागरिक बनाने के साथ मानसिक विकास के अनुसार आध्यात्मिक सिद्धान्तों का शिक्षण किया जाये। मुख्य धर्मों के उपदेशों व कला को पढ़ाया जाये।

विश्वविद्यालय स्तर पर डिग्री कोर्स के लिये– विभिन्न धर्मों के सामान्य अध्ययन को अनिवार्य बनाया जाये। पवित्र ग्रन्थों को पढ़ाया जाये। स्नात्कोत्तर स्तर पर तुलनात्मक अध्ययन कराया जाये।

प्रथम वर्ष में महान धार्मिक नेताओं की जीवनियां पढ़ायी जाये द्वितीय वर्ष में धार्मिक ग्रन्थों मेंसे सार्वभौमिक महत्व के चुने भागों को पढ़ाया जाये। तुलनात्मक धर्म विभागों द्वारा उपयुक्त धार्मिक साहित्य पढ़ाया जाये

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

2. धर्म शिक्षा का प्रारम्भ किस स्तर की शिक्षा से होना चाहिये और क्यों?

.....

9.11 शिक्षा की विधियां

धार्मिक व नैतिक शिक्षा की विधियों के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुये शिक्षा आयोग ने लिखा है– *"हमारा विश्वास है कि यह शिक्षा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों विधियों से दी जानी चाहिये हम अप्रत्यक्ष प्रभाव के कार्यों को अधिक महत्व देते है।"*

प्रत्यक्ष विधियॉ –

शिक्षा आयोग के अनुसार– समय तालिका में निर्धारित घण्टे– मोहियुद्दीन के अनुसार– *"धार्मिक नैतिक व पौराणिक कहनियां एवं महान धार्मिक व सामाजिक कथाओं का समावेश।"*

शिक्षा अयोग के अनुसार– *"नैतिक पुस्तकों, धर्म ग्रन्थों व धार्मिक समस्याओं व तुलनात्मक धर्म का अध्ययन। "*

मोहियुद्दीन के अनुसार – *"शिक्षक द्वारा धार्मिक व नैतिक सिद्धान्तों पर विचार–विमर्श करवाना व शिक्षक द्वारा इन समस्याओं का निवारण।'*

अप्रत्यक्ष विधियॉ–

- राधाकृष्णन आयोग के अनुसार– *"प्रातःकालीन मौन चिन्तन मौन प्रार्थना, धार्मिक संगीत व धार्मिक गीतका गायन ।"*
- प्रातःकालीन सभा– हुमायूँ कबीर ने लिखा है– *"दैनिक सभा सम्मिलित उपासना या महान ग्रन्थों के वाचन के द्वारा छात्रों को जीवन के कुछ उच्चतम मूल्यों के सम्पर्क में आने और मानवीय आदर्शों एव महत्वाकांक्षाओं की मूलभूत एकता को समझने का अवसर देती है।*
- धार्मिक समारोह– सभी विद्यालयों में महान प्रवर्तक के जन्मोत्सव और सभी धर्मों के धार्मिक उत्सव गुणात्मक वातावरण का निर्माण करने में सहायता करती है। सुल्तान मुहीउद्दीन ने लिखा– *"ये उत्सव धार्मिक मावना को प्रोत्साहित करने और जीवित रखने में एवं धार्मिक वातावरण का निर्माण करने में सहायता देते है।"*
- विद्यालय में सामुदायिक वातावरण– विद्यालय में सामुदायिक क्रिया कलाप कराये जाने चाहिये जिससे कि परस्पर समझ व प्रेम पनपे खेल का मैदान उत्तम वातावरण दे सकता है। रॉस के अनुसार *ऐसा विद्यालय पर्वत के शिखर पर मौजूद प्रकाश की तरह होगा, जिसे छिपाया नहीं जा सकता है।"*
- **सामूहिक कार्यों को बढ़ावा**– शिक्षा आयोग ने विभिन्न प्रकार के समूह कार्य समाज सेवा कार्य अनुभव, सामूहिक खेलकूद का आयोजन की विद्यालयों से

सिफारिश की। रोसेक ने लिखा है– *"अध्ययनों से सिद्ध होता है कि समूह में ही हमारे धार्मिक मूल्यों दृष्टिकोणों और आदर्शों का सर्वोत्तम प्रकार से विकास होता है।"*

- **विद्यालय का गुणात्मक वातावरण**– धार्मिक व नैतिक सहिष्णुता की उत्पत्ति के लिये विद्यालय का वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह तभी सम्भव है, जबकि विद्यालय में ऐसा वातावरण बने। महायोगी श्री अरविन्द ने स्पष्ट किया कि *"चाहे धर्म की किसी रूप में स्पष्ट शिक्षा दी जाये या नहीं पर ईश्वर की मानवता के लिये देश के लिये और इन सबमें अपने जीवित रहने के लिये धर्म के इस सार को प्रत्येक विद्यालय का आदर्श माना जाना आवश्यक है।"* विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने स्पष्ट कहा है कि *"यदि हमारी शिक्षा संस्थायें छात्रों को धार्मिक बल प्रदान करना चाहती है, तो उनमें सादगी और पवित्रता का वातावरण होना चाहिये, जो जीवन पर स्थायी प्रभाव डालता है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12. विद्यालय में "धर्म सहिष्णुता" का वातावरण उत्पन्न करने हेतु क्या करना चाहिये?

.....

13. धार्मिक शिक्षा देने की कौन सी विधि आपको सर्वाधिक उपयुक्त लगती है, और क्यो ?

.....

9.12 सारांश

धर्म की संकल्पना अपने वास्तविक रूप में व्यापक है और बुनियादी तौर पर इसके सम्बंध मनुष्य की हर प्रकार की प्रगति और उन्नति से जुड़ा है। समय–समय पर इसमें बदलाव आया और धर्म को संदेह के घेरे में लेकर संकुचित अर्थ में देखा गया संकीर्णता के कारण धार्मिक कट्टरता व आतंकवाद ने जन्म लिया पर धर्म को पुनः नये रूप में देखा जाने लगा आज यह एक मानव कल्याणकारी दर्शन है। जिसका अर्थ है जातिविहीन, वर्गविहीन, शोषणमुक्त सर्वहितपोषक एवं सर्वोदय समाज की स्थापना है और यह विश्व के धर्म समन्वयात्मक समाज की सीपनाके लिये पहल है। भविष्य के

धर्म दर्शन के लिये हमारे समक्ष अनेक चुनौती तो शिक्षा इस चुनौती का सामना करने का साधन है, शक्ति है, माध्यम है और शिक्षा और धर्म एक दूसरे के पूरक है।

9.13 चर्चा के बिन्दु

वर्तमान विश्व अशान्ति और आतंकवाद का मुख्य कारण नैतिक पतन एवं धार्मिक कट्टरता है। क्या धार्मिक कट्टरता विद्यालयी शिक्षा के माध्यम से रोकी जा सकती है, तो धर्म निरपेक्ष राज्य में शिक्षा व्यवस्था में क्या प्रबंध करने होंगे। चर्चा कीजिये।

9.14 अभ्यास कार्य

1. "धर्म इस ससांर में तथा दूसरे में भी व्यक्ति की आशा का अंतिम सहारा है।" स्पष्ट कीजिये तथा समाज में और मानव जीवन में धर्म के कार्यों की विवेचना कीजिये।
2. सिद्धान्तः धर्म तथा शिक्षा को एक–दूसरे से अलग किया जा सकता है, परन्तु व्यावहारिक रूप में ऐसा विचार असम्भव है। क्या आप इस कथन से सहमत है ? यदि हां तो क्यों?

9.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सम्बन्ध स्थापित करना, धारण किये जाने वाला।
2. व्यक्तित्व को सरल सहज व ईश्वर के प्रति आस्थावान बनाता है।
3. आध्यात्मिक, व्यवहारात्मक, विचारात्मक, परम्परात्मक व भावनात्मक जुडाव, संघर्ष हेतु शक्ति, व्यक्तित्व एवं अस्तित्व की सुनिश्चितता।
4. धर्म प्रचार हेतु साधन के रूप में।
5. मजबूत आधर विचारात्मक सहयोग।
6. व्यक्ति के मनोवृत्ति पर प्रभाव डालकर बुराइयों को दूर कर उत्तम गुणें का विकास करके।
7. संवेगो, मनोवृत्तियों का परिष्कार कर उत्तम गुणें का विकास कर एकता की उन्नति कर वसुधैवकुटुम्बकम की भावना का विकास।
8. उदासीनता, धर्म कट्अरता, विविध धर्म के विद्यार्थी निश्चित पाठ्यक्रम का अभाव।
9. संस्कृति सभ्यता का संरक्षण, वसुधैवकुटुम्बकम्, नैतिक उत्थान, व्यक्तित्व का विकास।

10. धर्म सहिष्णुता, नैतिकता।

11. प्राथमिक स्तर की शिक्षा से धर्म शिक्षा का प्रारम्भ हो जिससं कि बचपन से ही धार्मिक सहिष्णुता उत्पन्न हो जाये।

12. सभी धर्मो के अच्छे आदर्श का शिक्षण, धर्मो के उत्सव।

13. अप्रत्यक्ष विधियां– इनकों विद्यालय में करवाना आसान है।

9.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Saijidian GK (1957) : *Education, Culture and Social order*, Bombay Asia Publishing House.

प्रेमनाथ (1969) : *शक्षा के सिद्धान्त*, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

Brauner, C.T. (1965) : *Problems in Education* Englwood chiffs.

पाल गुप्ता एवं श्रीवास्तव (1969) : *शिक्षा के सिद्धान्त, एवं शैक्षिक नियोजन*, न्यू कैलाश प्रकाशसन, इलाहाबाद

चॉद किरन (1997) : *शिक्षा, दर्शन और समाज*, साहित्य कुंज, ध्रुव कक्ष, बेतिया

10– जनतंत्र और शिक्षा

संचरना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 जनतंत्र की संकल्पना

10.4 जनतंत्र के आदर्श

10.5 जनतंत्र के लिये शिक्षा की आवश्यकता

10.6 जनतंत्र में शिक्षा का स्वरूप

10.7 जनतंत्र और शिक्षा का उद्देश्य

10.8 जनतंत्र और पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियां

10.9 जनतंत्र में शिक्षक व शिक्षार्थी

10.10 जनतंत्र और विद्यालय एवं अनुशासन

10.11 सारांश

10.12 चर्चा के बिन्दु

10.13 अभ्यास कार्य

10.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

समय के परिवर्तन के साथ समाज की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक व्यवस्था में परिवर्तन आता है। ज्ञान विज्ञान, कला, कौशल एवं उद्योग के क्षेत्र में विकास ने औद्योगिक एवं भूमण्डलीकरण के विकास को गति दी। आधुनिक युग में विश्व के अधिकांश देशों में जागरूकता आयी और क्रांतियां हुयी फलस्वरूप आम जनता को शासन व्यवस्था का अधिकार मिला और यहीं जनतंत्र कहलाया। जनतंत्र वह शासन व्यवस्था है जिसमें शासन करने का अधिकार आम नागरिकों को होता है। यह जनता को कुशलता पर निर्भर है। कुशलता व समझ का विकास शिक्षा का उद्देश्य है क्या जनतंत्र और शिक्षा आपस में अन्योन्याश्रित है। इस इकाई में हम जनतंत्र की संकल्पना के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हुये इसके लिये शिक्षा व्यवस्था के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- जनतंत्र की संकल्पना को समझकर उसकी विशेषताओं की विवेचना कर सकेंगे।
- जनतंत्र के आधार एवं उद्देश्यों के विषय में बता सकेंगे।
- जनतंत्र के प्रमुख आदर्शो को स्पष्ट कर सकेंगे।
- जनतंत्र के लिये शिक्षा की आवश्यकता के कारण बता सकेंगे।
- जनतंत्रीय शिक्षा के स्वरूप एवं उद्देश्यों को वर्णित कर सकेंगे।
- जनतंत्र हेतु शिक्षा के पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों पर प्रकाश डाल पायेंगे।

10.3 जनतंत्र की संकल्पना

आधुनिक युग जनतंत्र व्यवस्था का युग है। जनतांत्रिक शासन व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। वर्तमान जनतंत्र साम्राज्यवादी प्रशासन के पश्चात् आया जबकि सम्पूर्ण विश्व औद्योगिक एवं भूमण्डलीकरण के प्रभाव में आया तो मनुष्य के अस्तित्व व अधिकारों में सर्वोच्चता आयी और विभिन्न देशों ने जनतंत्र शासन व्यवस्था को सहृदय होकर स्वीकारा। वैसे यह भी सत्य है कि जनतंत्र सिद्धान्तों की नींव पुरातन युग में भी प्रतीत होती है, परन्तु जनतंत्र की वर्तमान इमारत नवीन अवश्य है।

जनतंत्र (डेमोक्रेसी) का साधारण अर्थ है जन+तंत्र या लोक+तंत्र जनता का शासन या शासन पर नियंत्रण, जनतंत्र एक प्रकार से सामाजिक संगठन है, और इसके अर्थ को भी विविध रूपो में लिया जाता है।

राजनैतिक अर्थ में जनतंत्र– राजनैतिक दृष्टि से लोकतंत्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुये "डायसी" ने लिखा है–*"लोकतंत्र संसार का वह रूप है, जिसमें प्रशासकीय वर्ग सम्पूर्ण राष्ट्र का बहुत बड़ा भाग होता है।"*

अब्राहम लिंकन–*"प्रजातंत्र वह सरकार है जो जनता की, जनता द्वारा तथा जनता के लिये है।"*

सामाजिक संगठन के अर्थ में– सामाजिक दृष्टिकोणसे लोकतंत्र का अर्थ वह व्यवस्था जिसमें वर्गगत जातिगत एवं लैंगिक भेदभाव के बगैर व्यक्ति की उन्नति के समान अवसर मिले।

डा0 वर्मा के अनुसार– *"लोकतंत्र सामूहिक रूप से राजनैतिक तथा सामाजिक प्रगति की एक प्रक्रिया है।"*

भाटिया के शब्दो में– *"सामाजिक लोकतंत्र–वर्ग जन्म या सम्पत्ति पर आधारित समस्त भेदों का अभाव है।"*

कैण्डल ने जनतंत्र की परिभाषा देते हुये कहा – *"एक आदर्श रूप में जनतंत्र जीवन की एक विधि है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके उत्तरादायित्व पर आधारित है।"*

जीवन यापन की प्रणाली के रूप में– लोकतंत्र जीवन–यापन की एक प्रणाली है, जिसमें समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनी समस्त शक्तियो को विकसित करने के लिये स्वतंत्रता तथा जीवन–यापन करने के हेतु समान अवसर प्राप्त होते हैं। बायड बोड ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है– *"लोकतंत्र जीवन यापन का एक ढंग है और जीवन के ढंग का अर्थ है– जीवन के प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र को प्रभावित करना।"*

शैक्षिक अर्थ में– यह अत्यन्त नवीन प्रत्यय है। जनतंत्र वास्तव में सम्मिलित जीवन के अनुभवों से भी सम्बंधित है, जिसमें जीवन–यापन, समानता, भात्रता, और स्वतंत्रता के साथ होता है। सभी व्यक्ति को शिक्षा का समान अधिकार है। शिक्षा के क्षेत्र में जनतंत्र के अनुसार व्यक्तियों के समान सुविधा, समान अवसर व विद्यालय में समानता प्रदान करना है। शैक्षिक अर्थ में जनतंत्र की व्याख्या करते हुये बोड महोदय लिखते है– *"एक ओर जनतांत्रिक आन्दोलन का अर्थ हुआ व्यक्ति की रूचियों और क्षमताओं के विकास द्वारा उसकी मुक्ति शिक्षा के क्षेत्र में इसका अर्थ हुआ व्यक्तिगत विभिन्नताओं व्यक्गित आत्मप्रयत्न स्वतंत्रता और आत्मप्रकाशन पर बल लेकिन दूसरी ओर जनतंत्र का अर्थ हुआ व्यापक सामाजिक चेतना, सामान्य उत्साह के लिये उत्तरदायित्व की एक उच्च भावना।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

10. राजनैतिक अर्थ में जनतंत्र को परिभाषित कीजिये?

.....

2. आधुनिक युग जनतंत्र का युग क्यों कहलाया?

.....

10.4 जनतंत्र के आदर्श

जनतंत्र का स्वरूप कुछ निश्चित उद्देश्यों पर आधारित होता है ये आदर्श है–

- मानव के अस्तित्व व व्यक्तित्व को सम्मान करना क्योंकि वह जनतंत्र का आधार एवं निर्माता है।
- प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार, स्वतंत्रता व सामाजिक न्याय का अवसर मिलना।
- सभी नागरिकों को स्वतंत्रतापूर्ण रहने और शिक्षा आदि के समान अवसर एवं सुविधायें प्रदान करना।
- जनतंत्र का विश्वास व्यक्तियों की क्षमताओं, शक्ति, बुद्धि एवं योग्यता में होता है।
- जनतंत्र में नागरिकों से कुछ दायित्वों का निर्वहन अपेक्षित होता है।
- जनतंत्र समाज के सभी वर्गों को संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान करता है।
- जनतंत्र धर्म आधारित भेदभाव से दूर रहकर, साम्प्रदायिक कट्टरता को मिटाकर धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास करता है।
- जनतंत्र में आत्मशासन की प्रवृत्ति लोगों में व्याप्त रहती है।
- जनतंत्र शान्तिपूर्ण, संघर्षरहित समाज की स्थापना को प्रश्रय देता है।
- जनतंत्र विशाल दृष्टिकोण को प्रोत्साहन देता है।
- जनतंत्र में स्वतंत्रता के अर्थ आत्मानुशासन व आत्मनियंत्रण के रूप में होता है।
- जनतंत्र उदार दृष्टिकोण एवं बुद्धि के साथ जीवन जीने को प्रश्रय देता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

3. लोकतंत्र नागरिकों में उच्च आदर्शों की कल्पना क्यों करता है?

.....

10.5 जनतंत्र के लिये शिक्षा की आवश्यकता

हुमायूँ कबीर ने कहा है कि– *"प्रजातंत्र सामाजिक संयोग और सामाजि प्रगति के लिये पाशविक शक्ति को अनुनय में बदलने का प्रयास करता है, शक्ति के बजाय*

विवेक को समाज का पथ प्रदर्शन करने वाला सिद्धान्त बनाने का अर्थ है। शिक्षा व्यक्तियों को समाज के रचनात्मक सदस्यों के रूप में तैयार करें।" इस आधार पर जनतंत्र के लिये शिक्षा की आवश्यकता स्वयं निर्धारित हो जाती है।

- नागरिकों को जनतंत्र को सफलता पूर्वक संचालन के गुण उत्पन्न करने के लिये शिक्षा का कार्य अहम है।
- नागरिकों को प्रबुद्ध सर्तक एवं जागरूकता उत्पन्न करने के लिये शिक्षा की आवश्यकता होगी।
- जनतंत्र को सफल आधार प्रदान करने हेतु सफल मानव संसाधान तैयार करने हेतु शिक्षा चाहिये।
- नागरिकों में जनतंत्र के आदर्श समानता, भाईचारा, धर्म सहिष्णुता उत्पन्न करने हेतु शिक्षा की भूमिका अहम है।
- शिक्षा के द्वारा जनतंत्र समाज में लोंगो को अपने अधिकारों के प्रति संचेतना जागष्त होती है।
- जनतन्त्र में व्यक्ति स्वयं साध्य है और इसलियें शिक्षा का प्रमुख कार्य उसको अपनी शक्तियों के पूर्ण विकास के लिये अधिकाधिक अवसर प्रदान करना है।
- शिक्षा द्वारा मानव ने उम्पादन शक्ति को उत्पन्न एवं विकसित किया जाये जिससे राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि हो सके।
- शिक्षा नागरिकों को दायित्व निर्वहन के प्रति सजगता उम्पन्न करे।
- शिक्षा के द्वारा जनतन्त्र समाज में संस्कृति का पुनरूत्थान किया जाना चाहिये।
- शिक्षा सर्वांगीण विकास का माध्यम है। अतः यह जनतन्त्र को कुशल व शिक्षित नागरिक प्रदान करती है।
- जनतन्त्र नागरिकों के कुशलता एवं दक्षता पर निर्भर है। इसलिये जवाहर लाल नेहरू ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रथम वर्षगाठ के अवसर पर कहा था कि– *"प्रजातन्त्र की कुशलता एवं निर्भरता यहाँ के शिक्षित नागरिकों पर है अतः हमें एक निश्चित समय के अन्दर सभी को शिक्षित कर लेना है।"*

शिक्षा की इसी आवश्यकता को ध्यान में रखकर सरकार ने सबके लिये शिक्षा, सम्पूर्ण साक्षरता, शिक्षा के सार्वजनीकरण, स्कूल चलो अभियान और सर्वशिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम चलाये जिससे की भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या शिक्षित हो जाये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

4. जनतंत्र की सफलता शिक्षित जनता पर क्यों निर्भर करती है ?

.....

10.6 जनतंत्र में शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा जनतंत्र का प्रमुख आधार होती है, लोकतंत्र एक आदर्श है और व्यक्ति व समाज दोनों एक दूसरे के सहायता से पूर्णता को प्राप्त करते है। ड्यूवी ने लोकतंत्र में शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये कहा है कि *"लोकतंत्र में इस प्रकार की शिक्षा होनी चाहिये जिससे व्यक्तियों का सामाजिक सम्बंध और नियंत्रण व्यक्तित्व रूचि उत्पन्न हो और उनमें ऐसी मानसिक आदतों का निर्माण हो, जिनसे अव्यवस्था उत्पन्न हुये बिना सामाजिक परिवर्तन का होना सम्भव हो।"*

लोकतंत्र में शिक्षा का स्वरूप कुछ इस प्रकार का होना चाहिये–

- शिक्षा एक आवश्यक साधन के रूप में विकसित है।
- शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया के रूप में व्यवस्थित हो क्योंकि व्यक्ति समाज का निर्माण करता है और समाज व्यक्ति का निर्माण करता है।
- शिक्षा मनुष्य को सम्पूर्ण मानव बनाये क्योंकि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार एक ऐसे नागरिक के रूप में बढ़ने के लिये अवसर और सुविधा देती है, जिससे उसके सभी अंगों का पूर्णरूपेण से विकास हो।
- शिक्षा का रूप 'जन शिक्षा' के स्वरूप में हेा अर्थात् शिक्षा सभी नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करे।
- शिक्षा उदार एवं लचीली है, अर्थात् लोकतंत्र की आवश्यकताओं के आधार पर सभी पक्षों में बदलाव लाया जा सके।
- शिक्षा बाल केन्द्रित होनी चाहिये, क्योंकि लोकतंत्र में मनुष्य का बहुत महत्व है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें

5– जनतंत्र में शिक्षा व्यवस्था की मुख्य विशेषतायें लिखिये।

.....

10.7 जनतंत्र और शिक्षा के उद्देश्य--

डयूवी ने लिखा है कि *"लोकतंत्र केवल सरकार का रूप न होकर, उससे भी कुछ अधिक है। यह मुख्यतः सहयोगी जीवन और सम्मिलित रूप से किये गये अनुभव की विधि है।'* इस प्रकार से यह निश्चित है कि शिक्षा लोगों को तैयार करे। शिक्षा को लोगों में सहजीवन व सहअस्तित्व की भावना विकसित करनी चाहिये। लोकतंत्र में शिक्षा के उद्देश्यों को तीन रूपों में बांटा जा सकता है–

1. व्यक्तिक उद्देश्य
2. समाज सम्बन्धी उद्देश्य
3. राष्ट्र सम्बन्धी उद्देश्य

1– **व्यक्ति सम्बन्धी उद्देश्य**– जनतंत्र में शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हो सकते है –

- **शारीरिक विकास**– जनतंत्र शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक के स्वास्थ्य को उत्तम बनाना।
- **मानसिक विकास का उद्देश्य**– शिक्षा को बालक का मानसिक विकास कर उसमें स्वतंत्र विचार तर्क एवं निर्णय शक्ति उत्पन्न करनी चाहिये।
- **चारित्रिक विकास का उद्देश्य**– शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों में अच्छे चरित्र का निर्माण करना है। जाकिर हुसैन के अनुसार– *"हमारे शिक्षा कार्य का पुर्नसंगठन और व्यक्तियों का नैतिक पुनरूत्थान एक दूसरे से अविच्छिन्न रूप से गुथें हुये है।"*
- **आध्यात्मिक विकास**– शिक्षा के द्वारा व्यक्ति में आध्यात्मिक एंव नैतिक गुणों का विकास किया जाना चाहिये, जिससे कि समाज में शान्ति बनी रहे। श्री अरविन्द ने कहा है– *"शिक्षा का उद्देश्य विकसित होने वाली आत्मा को सर्वोत्तम प्रकार से विकास करने में सहायता देना और श्रेष्ठ कार्य के लिये पूर्ण बनाना होना चाहिये।"*
- **व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास**– लोकतंत्र का सम्पूर्ण कलेवर उसके नागरिकों पर ही निर्भर है, अतः जनतंत्र में शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य – मानव व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास करना है। शिक्षा को मानव की मनोवैज्ञानिक सामाजिक, भावात्मक और व्यावहारिक आवश्यकताओं पर ध्यान देना है।

आत्मनिर्भरता की प्राप्ति– स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट तौर पर कहा है *"मैं*

सच्ची शिक्षा उसको कहता हूँ जो बालक को इस योग्य बना दे कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो सके।" शिक्षा को विद्यार्थियों में व्यावसायिक कुशलता की उन्नति पर ध्यान देना चाहिये। डा0 राधाकष्णन ने लिखा है– *"हमें युवकों को यथासम्भव सर्वोत्तम प्रकार के सर्वकार्य–कुशल, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के लिये प्रशिक्षित करना चाहिये। उन्हें शिष्टाचार और सम्मान के अलिखित नियमों को अपनी इच्छा से मानना सीखना चाहिये।"*

2– **समाज सम्बधी उद्देश्य**– जनतंत्र में समाज हेतु शिक्षा के निम्न उद्देश्य होतें है–

समाजवादी समाज की धारणा – यह कार्य शिक्षा ही कर सकती है कि वह समाज के मध्य विषमताओं को मिटाकर स्वस्थ और सुखी जीवन व्यतीत करने के समान अवसर, सामाजिक सुरक्षा की भावना नागरिकों में उत्पन्न करे। जवाहर लाल नेहरू ने शिक्षा के इस उद्देश्य पर बल देते हुये कहा था कि *"मैं समाजवादी राज्य में विश्वास करता हूँ मैं चाहता हूँ कि शिक्षा का इस उद्देश्य की ओर विकास किया जाये।"*

संस्कृति का संरक्षण एवं पोषण– शिक्षा का एक दायित्व यह भी है कि वह भावी पीढ़ी में संस्कषति का सुरक्षित हस्तान्तरण करे और सांस्कृतिक तत्वों एवं धरोहरों के प्रति विद्यार्थियों को सचेत बनाये। ओटावे ने शिक्षा के इस कार्य की ओर इंगित किया है– *"शिक्षा का एक कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमान को अपने तरूण और कार्यशील सदस्यों को प्रदान करना है।"*

सामाजिक दायित्वों के प्रति जागरूकता एवं क्रियाशीलता– व्यक्ति समाज की इकाई है, अतः यह आवश्यक है कि वह समाज में सबके साथ मिलकर समाज के जीवन को नैतिक और भौतिक दृष्टिकोण से अधिक अच्छा बनाने का उत्तरदायित्व ले और उसमें इस प्रकार की भावना का समावेश शिक्षा द्वारा ही की जा सकती है।

जन शिक्षा की व्यवस्था– शिक्षा जनतंत्र का आधार है अतः प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षित होना अति आवश्यक है क्योंकि शिक्षित व्यक्ति अपने कर्तव्य का निर्वहन ठीक प्रकार से कर सकता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा घर – घर व जन–जन में फैले और उन्हें उद्दीप्त करे। स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है – *"मेरे विचार से जनता की अवहेलना महान राष्ट्रीय पाप है। कोई भी राजनीति उस समय तक सफल नहीं होगी जब तक भारत की जनता एक बार अच्छी तरह से शिक्षित न हो जाये।"*

नेतृत्व के गुणों का विकास– लोकतंत्र का भविष्य कुशल नेतृत्व में है और

जनता की सहभागिता आवश्यक होने के कारण यह आवश्यक है शिक्षा व्यवस्था भावी पीढ़ी में नेतृत्व के गुण उत्पन्न करे। भावी पीढ़ी की शिक्षा इस प्रकार से तैयार करे कि यह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कुशल नेतृत्व कर सके। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इस उद्देश्य की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये लिखा है– *"जनतंत्रीय भारत में शिक्षा महत्वपूर्ण उद्देश्य – व्यक्तियों के गुणों का विकास करना है।"*

भावात्मक एकता का विकास– भावात्मक एकता का अभिप्राय है सम्पूर्ण देश की जनसंख्या का भावनात्मक रूप से एक होना यह लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाती है। भावात्मक एकता आंतरिक संघर्ष को कम करती है। शिक्षा भावी पीढ़ी को उन कुशलताओं अभिरूचियों एवं दर्षष्टिकोणों का हस्तांतरित करती है, जिससे समाज की रक्षा होती है।

अन्तर सांस्कर्षतिक भावना की उत्पत्ति– लोकतंत्र नागरिकों के एकता पर निर्भर करता है। लोकतंत्र ने यह अति आवश्यक है, कि विविधता में एकता के दर्शन हो और यह मानसिक एंव भावात्मक सुदृढ़ता से ही सम्भव है कि व्यक्ति प्रत्येक धर्म व संस्कर्षति का आदर करे और भावात्मक सुदृढ़ता एवं मानसिक परिपक्वता लाने का कार्य शिक्षा को करना होगा।

3– राष्ट्र सम्बधी उद्देश्य– शिक्षा राष्ट्र के लिये यह कार्य करती है।

राष्ट्रीय एकता का विकास– शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य भावी जीवन में राष्ट्रीय एकता का विकास करना है, क्योंकि लोकतंत्र का आधार एकता है, और एकता की भावना उत्पन्न व पुष्ट करने का कार्य शिक्षा करती है।

राष्ट्र की आर्थिक सम्पन्नता हेतु उत्पादकता की वृद्धि में सहयोग– लोकतंत्र की सफलता नागरिकों के आर्थिक सम्पन्नता पर निर्भर करता है क्योंकि आर्थिक विपन्नता कर्तव्य विमुख बनाती है, और आर्थिक सम्पन्नता राष्ट्र की उत्पादन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव डालती है, अतः शिक्षा का प्रमुख कार्य उत्पादन में वर्षद्धि कर कुशल मानव संसाधन भी तैयार करना है।

कुशल नागरिकता का प्रशिक्षण– जनतंत्र में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य लोगों को नागरिकता का प्रशिक्षण देना भी है, क्योंकि कुशल नागरिक हो जनतंत्र को एक बेहतर दिशा दे सकते है, और नागरिक कुशलता उत्पन्न करने का कार्य शिक्षा का है। अमरीकी शिक्षा के 35वें बुलेटिन में इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि *"लोकतंत्र में शिक्षा को प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञान, रूचियों आदर्शों, आदतों और शक्तियों का विकास करना चाहिये, जिससे कि वह अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके और उस स्थान को*

प्रयोग स्वयं व समाज दोनों के उच्च लक्ष्यों की ओर ले जाने को तैयार हो।"

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

6–जनतंत्र के नागरिकों में शिक्षा एवं कुशलता की आवश्यकता क्यों महसूस की जाती है?–

.....

10.8 जनतंत्र एवं शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियॉ–

जनतंत्र नागरिकों की व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास एवं दक्षता पर निर्भर होता है अतः ऊपर दिये गये उद्देश्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम निम्न सिद्धान्तों पर आधारित हो–

1–व्यापकता का सिद्धान्त

2– विभिन्न विषयों के मध्य सहसम्बंध का सिद्धान्त,

3– सामाजिक एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति का सिद्धान्त

4– उपयोगिता एवं क्रियाशीलता का सिद्धान्त

5– व्यावसायिक दक्षता की उत्पत्ति का सिद्धान्त

6– क्रियाशीलता का सिद्धान्त

7– विविधता का सिद्धान्त

8– लचीलेपन का सिद्धान्त

9– अनुभवों के संगठन का सिद्धान्त

10– व्यावहारिकता का सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर जनतंत्रीय शिक्षा में उन विषयों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिये जिससे व्यक्ति अपने वैयक्तिक भेदों के अनुसार विषयों व क्रियाओं का चयन कर सके, और पाठ्यक्रम में मातृभाषा व अन्य भाषायें, कृषि विज्ञान, प्रकषति अध्ययन हस्त कौशल कला, गणित, विज्ञान सामाजिक विषय, स्वास्थ्य शिक्षा, गृह शिल्प आदि विषयों को प्रमुख स्थान देते हुये विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रम को भी रखा जाता है। पाठ्यक्रम रोचक, सरस, सरल एवं विविधता से परिपूर्ण होना चाहिये।

शिक्षण विधियां– जनतंत्र की शिक्षा के पाठ्यक्रम में इन विशेषताओं के आधार पर कुछ विशेष शिक्षण विधियां को अपनाना आवश्यक हो जाता है–

सहसम्बंध विधि– इस विधि का प्रयोग विभिन्न विषयों को सह सम्बंध करके शिक्षण करने हेतु होता है। प्रोजेक्ट एवं बेसिक शिक्षा पद्धतियों में इस शिक्षण विधियों का प्रयोग होता है।

वाद विवाद – इस विधि का प्रयोग विद्यार्थियों को तर्कपूर्ण चिन्तन करने, विचार रखने व सही गलत का परख करवाने के लिये प्रयुक्त होती है।

समस्या विधि– इस विधि का प्रयोग विद्यार्थियों को समस्या समाधान की तत्परता, क्रियाशील उचित प्रतिक्रिया करने तर्कपूर्ण चिन्तन कर उत्तर पाने के गुण उत्पन्न करने हेतु होता है।

योजना विधि– यह विधि विद्यार्थियों को स्वतंत्र वातावरण में गतिशील रहकर स्वयं सीखने व परिश्रम करने के गुण उत्पन्न करने हेतु प्रयुक्त होती है।

प्रयोग विधि– इस विधि का प्रयोग विद्यार्थियों को स्वयं करके सीखने व समझने के गुण करने हेतु किया जाता है।

निरीक्षण विधि– इसका प्रयोग विद्यार्थियों को ध्यान पूर्वक देखने सोचने व समझने के गुण उत्पन्न करने हेतु होता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

7– जनतंत्र शिक्षा के पाठ्यक्रम में कौन सी विशेषता होनी चाहिये?

.....

10.9 जनतंत्र में शिक्षक एवं शिक्षार्थी

जनतंत्र में व्यक्ति महत्वपूर्ण है अतः शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है, और प्रत्येक स्तर की शिक्षा में शिक्षक का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है और शिक्षक से विशेष गुणों की अपेक्षा की गयी है जैसे–

- शिक्षक को प्रतिभावन व उच्च चरित्र वाला होना चाहिये।
- वह स्वतन्त्र विचारक व्यापक दृष्टिकोणवाला एवं आशावदी होना चाहिये।

- वह अपने विषय का ज्ञाता एवं प्रभावशाली शिक्षण में दक्ष हो।
- लोकतांत्रिक विचारों को रखने वाला, उच्च आदर्शों को रखने वाला, और विद्यार्थियों को स्नेह करने वाला हो।
- मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणवाला, सहयोगी एवं धैर्यवान हो।
- अपनी संस्कषति एवं सभ्यता से स्नेह व आदर करने वाला हो।
- शिक्षक समाज एवं राष्ट्र के प्रति संवेदनशील व जागरूक हो। वह समाज व राष्ट्र को जोड़ने का प्रयास करे।
- विद्यार्थियों की समस्या, रूचि आवश्यकता व रूझान को जानने वाला हो और जनतंत्र में शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह राष्ट्र एवं समाज के प्रति समर्पित रहता हो।

शिक्षार्थी– जनतंत्र में शिक्षार्थी विशेष हेाता है, क्योंकि वह भावी राष्ट्र का नागरिक होता है। अतः उसमें विशेष योग्यता एवं गुणों की अपेक्षा की जाती है। शिक्षार्थी राष्ट्र एवं समाज के प्रति जागरूक हो। शिक्षा प्राप्त करने में रूचि रखता हो। शिक्षार्थी उदात्त विचारो वाला सरल एवं सच्चरित्र हो। शिक्षार्थी समाजवादी एवं धर्म सहिष्णुता दृष्टिकोणवाला हो। शिक्षा ग्रहण कर अपने एवं राष्ट्र के प्रति उपयोगी हो। बालक शिक्षा व्यवस्था का केन्द्र होता है उसे अपनी रूचि, रूझान, योग्यता एवं आवश्यकतानुसार विषयों एवं क्रियाओं का चुनाव कर अपने विकास के लिये स्वतंत्रता, सुविधायें और पर्यावरण दिया जाता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

8–जनतंत्र व्यवस्था में शिक्षक को कैसा होना चाहिये?

.....

9–शिक्षार्थी को जनतंत्र में क्या सुविधा दिये जाने की बात कही गयी है?

.....

10.10 जनतंत्र और विद्यालय एवं अनुशासन

विद्यालय एक औपचारिक संस्था है जिसका निर्माण समाज अपने आदर्शों की

पूर्ति के लिये करता है। समाज विद्यालयों से अपनी भावी पीढ़ी को शिक्षित करने की आशा करता है। जनतंत्र को सफल बनाने के लिये विद्यालयों के संगठन एवं प्रशासन में लोकतंत्रीय आदर्शों को क्रियान्वित किया जाये, जनतंत्र समाज के विद्यालय जनतत्र स्वरूप के ही होगें । विद्यालयों का दायित्व अत्यधिक है। विद्यालय भावी पीढ़ी को वर्तमान पीढ़ी से जोड़ता है। विद्यालय में अध्यापकों को पाठ्यक्रम निर्धारण से लेकर शिक्षण करने की स्वतंत्रता हो। शिक्षक अपने शिक्षण एवं व्यवहार से शिक्षार्थियों में जनतंत्र के आदर्श जाग्रत करे। विद्यालय में शिक्षकों, शिक्षार्थी, अभिभावक व प्रशासन से आपसी समझ की आशा की जाती है। विद्यालयो से यह आशा की जाती है कि वे ऐसा वातावरण बनाये जिसमें देश की योग्य मानव संसाधन मिल सके।

अनुशासन– जनतंत्र में उच्च आदर्शों के द्वारा स्वानुशासन पर अत्यधिक बल दिया जाता है। इसमें दमनात्मक अनुशासन के लिये स्थान नहीं है, परन्तु स्वतंत्रना का अभिप्राय "स्वच्छन्दता" नहीं है। शिक्षार्थियों को विद्यालय के नियम से परिपूर्ण पाठ्यक्रम से स्वयं अनुशासित रहने की प्रवृति जागृत करने को अवसर दिया जाता है। विद्यालय में शिक्षार्थियों को विभिन्न कार्यों में छात्र समूहों को नेतृत्व देकर अनुशासित रहने व रखने की आदतों का विकास कराया जाता है। शिक्षार्थियों को यह अहसास कराया जाता है कि अधिकार एवं कर्तव्य एक–दूसरे से बंधे होते हैं बच्चे सामाजिक कर्तव्य तभी कर सकते हैं जब उनहे सामाजिक अधिकार प्राप्त हों। इसके लिये बच्चों के व्यष्टित्व के आदर की बात हम पहले कर चुके हैं और यह आवश्यक है कि विद्यालयों की व्यवस्था और उनके कार्यक्रमों को निश्चित करने में विद्यार्थियों का हाथ होना चाहिये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

10–जनतंत्र व्यवस्था में विद्यालयों में कैसे अनुशासन की कामना की जाती है?

.....

10.11 सारांश

इस इकाई में हमने जनतंत्र का सम्प्रत्यय, शिक्षा की आवश्यकता, उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियॉ, शिक्षक–शिक्षार्थी, शिक्षालय एवं अनुशासन के विषय में विवेचना की है। विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत की गयी विवेचना से यह स्पष्ट है, जनतंत्र

वर्तमान विश्व की प्रचलित प्रशासन व्यवस्था का प्रकार है, और विशेष सिद्धान्तों पर निर्भर है जिसके लिये नागरिकों का शिक्षण प्रशिक्षण आवश्यक है और शिक्षित कर जागरूक करने का कार्य शिक्षा का है। और इसके लिये सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में कुछ विशेषताओं और आदर्शो की आशा की जाती है।

10.12 चर्चा के बिन्दु

भारत जैसे जनतंत्र देश में शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिये? क्या भारत की शिक्षा व्यवस्था जनतंत्र देश के लिये आवश्यक उद्देश्यों के अनुरूप संचालित हो रही है, अगर नहीं तो किन बिन्दुओं पर समस्यायें है– चर्चा कीजिये।

10.13 अभ्यास कार्य

शिक्षा की जनतंत्रीय धारणा से आप क्या समझते है। जनतंत्रात्मक शिक्षा के पाठ्यक्रम शिक्षा विधियों, उद्देश्यों तथा अनुशासन की सक्षेप मे विवेचन कीजिये।

10.14 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. वह सरकार जो जनता के द्वारा जनता के लिये और जनता में से हो।
2. द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् उपनिवेशवाद की समाप्ति के पश्चात् अधिकांश देशों ने जनतंत्र शासन व्यवस्था को अपनाया।
3. नागरिकों के उच्च आदर्श उन्हें जनतंत्र के लिये दक्ष एवं योग्य नेतृत्व प्रदान करता है।
4. शिक्षित जनता सभी स्तर पर सफल नेतृत्व देने में सक्षम ।
5. उदार लचीली, व्यापक, बालकेन्द्रित, सोद्देश्य, व्यावहारिक ।
6. शिक्षा एवं कुशलता जनतंत्र को योग्य नेतृत्व/एवं मानव संसाधन प्रदान कर विकास का राह दिखाती है।
7. लचीला, सरस, व्यापक, विविधता, उपयोगिता, व्यावहारिकता।
8. उच्च आदर्श, उच्च विचार, लोकतांत्रिक दष्टिकोण, विषय ज्ञाता, दक्ष, राष्ट्र के प्रति संवेदनशील, चरित्रवान
9. आवश्यकतानुसार, रोचक, स्तरानुसार उपयोगी रूचि के अनुसार बाल केन्द्रिता शिक्षा का प्रावधान।
10. स्व आत्मानुशासन उचित वातावरण व शिक्षक के अनुकरण द्वारा अनुशासन।

10.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें–

Dewy J (1940) : Democracy & Education
New York : Macrillan & Co. 1940

Saijidian GK (1957) : Education, Culture and Social order, Bombay Asia Publishing House.

प्रेमनाथ (1969) : शिक्षा के सिद्धान्त, इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

Brauner, C.T. (1965) : Problems in Education Englwood chiffs.

पाल प्रमुख एवं श्रीवास्तव (1969) : शिक्षा के सिद्धान्त, एवं शैक्षिक नियोजन, न्यू कैलाश प्रकाशसन, इलाहाबाद

इकाई 11 शैक्षिक मूल्य

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मूल्यों का सम्प्रत्यय

11.4 दार्शनिक विचार धारा में मूल्य

11.5 मूल्य शिक्षा तथा समाज

11.6 शैक्षिक मूल्यों की आवश्यकता

11.7 शैक्षिक मूल्य एवं शिक्षक की भूमिका

11.8 शिक्षा में मूल्य व्यवस्थापन हेतु सुझाव

11.9 सारांश

11.10 अभ्यास कार्य

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

किसी राष्ट्र की पहचान उसके सम्पन्नता से न होकर उसके नागरिकों के व्यक्तित्व एवं जीवन मूल्यों के आधार पर होती है। व्यक्ति की गुणात्मकता उसके विचारों, भावनाओं एवं कार्यों पर निर्भर करती है और व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास इन सबके विकास पर निर्भर करता है। सम्पूर्ण एवं संतुलित व्यक्तित्व के विकास का दायित्व शिक्षा पर ही है। शिक्षा मनुष्य में उचित आदतों प्रवषत्तियों अभिवषत्तियों एवं व्यावहारिक दक्षताओं का विकास करती है। यह सब मूल्य है और बालक इन्हें अपने घर एवं विद्यालय से अधिकांश विकसित करता है। शिक्षा में मूल्य के महत्व का अनुभव एक सर्वसम्मत मांग है परन्तु शैक्षिक मूल्यों के विकास में शिक्षा प्रभावी भूमिका नहीं निभा पा रही है। सम्पूर्ण स्तर की शिक्षा व्यवस्था वस्तान्तत्मक है, संस्कारात्मक नहीं। मूल्य क्या है और इनकी आवश्यकता, प्रकार एवं व्यवस्थापन के लिये आवश्यक क्रिया कलापों की चर्चा इस इकाई में की गयी है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- मूल्य के सम्प्रत्यय को विभिन्न पक्षों से स्पष्ट कर सकेंगे।
- मूल्यों की प्रकषति एवं दार्शनिक विचारधारा का वर्णन कर सकेंगे।
- मूल्यों के विभिन्न प्रकारों को सूचीबद्ध कर सकेंगे।
- शैक्षिक मूल्यों के सन्दर्भ में शिक्षक की भूमिका एवं कार्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा में मूल्य व्यवस्थापन हेतु आवश्यक सुझाव दे पायेंगे।

11.3 मूल्यों का सम्प्रत्यय

मूल्य एक अमूर्त सम्प्रत्यय है और इसका सम्बंध मनुष्य के भावनाओं से होता है। यह उसके व्यवहार में परिलक्षित होता है और मनुष्य अपने को समाज में उच्चतम स्परूप में रखने हेतु प्रयत्नशील रहता है। इस सम्बंध में डबलू0एच0 किलपैट्रिक का कथन है कि– *"अब हम देखते हैं कि मनुष्य के लक्ष्य खोजने के व्यवहार की क्षमता से उसकी इच्छाओं और प्रयत्न उत्पन्न होते हैं, और इन इच्छाओं और प्रयत्नों के फलस्वरूप सचेतन ढंग से चुने गये उद्देश्य (लक्ष्य) तथा साधन प्राप्त होते हैं। चूँकि उद्देश्यों में संघर्ष होता है, इसलिये मनुष्य स्वभावतः अपने लक्ष्यों को परस्पर एक दूसरे के साथ तौलता है और जब यह तौलना अत्यधिक आलोचनात्मक ढंग से होता है, तो मूल्यों की उत्पत्ति है।"*

मनुष्य अपने सिद्धान्तों को ही मूल्य बना लेते हैं और यही मूल्य मनुष्य का जीने का सहारा व तरीका बन जाते हैं। मूल्य उसके व्यवहार को नियत्रित करते हैं। मूल्य का मानव जीवन में बहुत महत्व है तो फिर इनका शिक्षा के क्षेत्र में भी महत्व होना स्वाभाविक है। रीड महोदय ने स्पष्ट लिखा है– *"शिक्षा जीवन का एक भाग है और स्पष्टतया शिक्षा में मूल्यों से सम्बंधित प्रश्न जीवन में मूल्यों के महान प्रश्नों से अलग नहीं रह सकते,कृकृकृ जीवन के मूल्य शैक्षिक व्यवहार में निहित होते है।"*

मूल्य की संकल्पना– यह विचारणीय प्रश्न है कि मूल्य क्या है? क्योंकि मूल्य का विचार मनुष्य को स्वतः उस जीवन दर्षष्टि की और ले जाता है जो उसे यह दर्षष्टि देता है कि वह जाने की जीने के लिये किसका महत्व है। प्रोफेसर अर्बन ने अपनी पुस्तक "फण्डामेण्टल ऑफ ऐथिक्स" में लिखा है कि– *"मूल्य वह है जो मानव ईच्छा को तष्त करे जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षण में सहायक हो। वास्तव में जीवन के मूल्यों की अनुभूति के लिये महान गतिशीलता की प्रक्रिया होती है।"*

धर्मशास्त्र में नैतिक मूल्यों को ही मूल्य माना गया। प्रत्येक धर्म के कुछ नैतिक नियम होते हैं और मनुष्य को उनका पालन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में करना होता है। जब ये नियम मनुष्य के व्यवहार को नियंत्रित एंव निर्देशित करने लगते हैं तब वे उसके लिये मूल्य बन जाते हैं।

मानव शास्त्री मूल्यों को सांस्कृतिक लक्षणों के रूप में स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में संस्कृति और मूल्य अभिन्न होते हैं, कोई संस्कृति अपने मूल्यों से ही पहचानी जाती है।

मनोवैज्ञानिकों ने मूल्यों को मनुष्य की रूचियों, पसन्दों और अभिवर्षत्तियों के रूप में लिया है, फिलंक महोदय के अनुसार *"हम जिसे पसन्द करते हैं और महत्व देते हैं, वे ही हमारे लिये मूल्य होते हैं। मूल्य मानक रूपी मानदण्ड है जिसके अनुसार मनुष्य अपने सामने उपस्थित क्रिया–विकल्पों में से चयन करने में प्रभावित होते हैं।"*

समाजशास्त्री मूल्यों का सम्बंध समाज के विश्वास, आदर्शों, सिद्धान्तों और सामाजिक मानदण्डों से जोड़ते है। उनकी दर्षष्टि में किसी समाज के विश्वास, आदर्श, सिद्धान्त और व्यवहार मानदण्ड ही उस समाज के मूल्य होते है। दरअसल मनुष्य अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को चयनित कर उन्हें तथ्य के रूप में लेता है। लक्ष्यों में प्रतिस्पर्धा से सर्वअभीष्ट लक्ष्य ही चयनित होता है। समाज इसे नियम परिनियम के रूप में प्रतिष्ठित करता है और यह सभी सदस्यों के अन्तःकरण एवं विश्वास के रूप में धारित होते हैं, और मूल्य कहलाते हैं। समाजशास्त्री रूपाकमल मुकर्जी ने मूल्यों को परिभाषित करते हुये कहा है–

"मूल्य समाज द्वारा उन इच्छाओं और लक्ष्यों के रूप में परिभाषित किया जा सकते हैं, जिन्हें अनुबंध, अधिगम या समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अभ्यान्तरीकष्त किया जाता है, और जो आत्मनिष्ठ, अधिमान तथा अकांक्षाओं का रूप धारण कर लेते हैं।"

मूल्यो का स्वरूप

- मूल्य अमूर्त सम्प्रत्यय है।
- मूल्य एक प्रकार से इच्छा की संतुष्टि में है, अर्थात् यह इच्छा संतुष्टि के साधन के रूप में होता है।
- इनका विचारात्मक पक्ष भावनायें या धारणायें है, और क्रियात्मक पक्ष उसके व्यवहार एवं आचरण हैं।
- सत्य निर्णय व मानदण्ड के रूप में प्रकट होते है, और व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करते हैं।
- मूल्य एक प्रकार से वस्तु या विचार से स्थित गुण है जिससे तात्कालिक संतुष्टि प्राप्त होती है।
- रीड महोदय के अनुसार– *'विचारों के आदान–प्रदान में मूल्यवान ही मूल्य है। उसे हम ग्रहण करते हैं।"*

- मूल्य विकासशील होते हैं और सामाजिक सम्बंध एवं क्रियाओं से विकसित होते हैं।
- मूल्य हमेशा निश्चयात्मक होते हैं, अर्थात् जिनमें अच्छाई होती है, उन्हें ही ध ारण किया जाता है।
- मूल्य मनुष्य की पसंद एवं धारण शक्ति पर निर्भर करते हैं तथा अनुभव एवं अनुमति मे सहायक होते हैं।
- शिक्षा के क्षेत्र में मूल्य उद्देश्यों पाठयक्रमों विधियों एवं शिक्षकों से सम्बंधित होते है।
- मूल्य बदलते रहते है। यह व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर न होकर वस्तुनिष्ठा व आलोचना पर भी निर्भर करते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1– मूल्य से आपका क्या अभिप्राय है ?

.....

2– मल्यों की कुछ विशेषतायें बताइये ?

.....

11.4 दार्शनिक विचारधारा एवं मूल्य–

मूल्य सर्वव्यापी एवं सर्वमान्य है। अपने जीवन के प्रतिदृष्टिकोणही मानव मूल्यों में विविधता के कारण बनते हैं और यह विविधा शिक्षा प्रणाली में भी दिखायी देती है। विविध दार्शनिक सम्प्रदायों के अनुसार मूल्यों में विविधता पायी जाती है। प्रत्येक दर्शन के क्षेत्र में मूल्य दर्शन की एक शाखा पायी जाती है, प्रत्येक सम्प्रदाय में मूल्यों का मान व स्वरूप अलग–अलग होता है। प्रकषतिवाद में नैतिक मूल्यों का आधार सुखवादी और इस कारण सुख व आनन्द को जीवन की उच्चतम अच्छायी माना जाता है। प्रकषतिवादी धार्मिक मूल्यो को भी प्रकषति के संदर्भ में अभिहित करते हैं। आदर्शवाद में मूल्यों का स्पष्ट महत्व परिलक्षित होता है। आदर्शवाद मूल्यों का वास्तविक अस्तित्व मानता है। आदर्शवादी नैतिक मूल्यों को अधिक महत्व देते हैं, आदर्शवादी सद्जीवन

मूल्यों से मानते हैं। धार्मिक मूल्यों को ईश्वर के विचार से आदर्शवादी लोग सम्बद्ध करते हैं। सामाजिक मूल्य समाज को स्थापना, सहगठन तथा सुनियोजित रूप में मिलते है।

यथार्थवाद में मूल्य वास्तविक रूप में अनुभव पर आधारित होता है, तथा अनुभव करने वाले के रूचि व मनोवर्षत्ति पर निर्भर करता है। संसार की वे सभी वस्तुयें जो आनन्ददायक एवं उपयोगी हो वही मूल्यवान है। जो स्थायी सुख दे वे नैतिक मूल्यों से अनुकुल माना जा सकता है। यथार्थवादी सौन्दर्यात्मक मूल्यों को व्यक्तिगत मानते हैं वास्तव में सौन्दर्य का मूल व्यक्ति की रूचि में होता है। साहित्य–संगीत कला आदि का आनन्द भावों की वस्तुनिष्ठता में हेाता है। जब भाव बाह्य रूप में वस्तुनिष्ठ हो जाते हैं, वे मूल्य बन जाते हैं। यथार्थवादी ईश्वर में विश्वास नहीं करते यह भी एक मूल्य हैं। यथार्थवादी दैविकता एवं दैवी पुरूषों की पवित्रता को ही मूल्य मानते हैं। यथार्थवादी मूल्य के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोणरखते हैं। सामाजिक मूल्य का आधार भौतिक जगत एवं व्यक्ति ही होता है।

प्रयोगवाद में मूल्यों का अस्तित्व व्यक्ति और समाज के बीच होने वाली क्रियाओं पर निर्भर करता है, और इन्हीं क्रियाओं के फलस्वरूप मूल्य बनते हैं, ये पूर्व निर्धारित नहीं हेाते। जितने भी व्यक्ति समाज में होते हैं, उनकी अपनी आत्म–भावना होती है। ये परस्पर में मिलते–जुलते है तथा भाषा के माध्यम से विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। इनके परिणामस्वरूप मूल्यों का निर्माण हेाता है और मूल्यों का आधार मानव परिस्थिति एवं अनुभव हेाते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3– आदर्शवादी किन मूल्यों पर बल देते हैं?

.....

4– यथार्थवादी दर्शन में मूल्य किस पर आधारित होता हैं?

.....

11.5 मूल्य, शिक्षा तथा समाज

मानव को सच्चे अर्थों में संस्कष्त सभ्य एवं सफल बनाने का श्रेय मानव मूल्यों को है। मूल्य परायण जीवन ही जीवनव का लक्ष्य है। पंचकोशों के आधार पर देह, प्राण,

मन, बुद्धि तथा आत्मतत्व का स्वस्थ विकास ही तो सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास है। इसकी निम्न दस दिशाये भी हो सकती है–

- सहजता– स्वाभाविकता के माध्यम से सरलता, स्पष्टता, सादगी व अकषत्रिमता।
- सौम्यता– शालीनता, विनम्रता, मधुरता, प्रियता तथा प्रसन्नवदनता के सहयोग से।
- सहष्दयता– संवेदनता, सहानुभूति, सौम्यता, दायलुता, उदारता तथा परोपकार।
- प्रेम स्नेह– ममता, अनुराग, संख्य आदि का रूप ग्रहण करके।
- सुचिता– पुनीत भाव शुद्धि स्वच्छता आदि के माध्यम से चारित्रिक दृढ़ता।
- धैर्य संयम के माध्यम से त्याग व संतोष का विकास।
- सहनशीलता और क्षमावान बनकर आक्रोश और शान्ति की अवस्था में रहना।
- सरस्वती के माध्यम से प्रज्ञा व मेघा का उपयुक्त विकास तथा दुर्गा सा साहस और शक्ति।
- आत्म निरीक्षण, परीक्षण, दोष दर्शन, परिष्कार के बाद आत्म–उन्नयन का पथिक बनाना।
- देश काल व परस्थिति के अनुसार विवेक पूर्वक आचरण करना।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य भी तो बालक का सर्वांगीण विकास करना होता है और इस प्रकार से शिक्षा एंव मूल्य परस्पर सम्बंधित होते है। वास्तव में शिक्षा वह आधार होती है वह साधन है जो कि मूल्यों की अनुभूति व प्राप्ती कराने में सक्षम है। समाज अपने मूल्यों के व्यवस्थापन एवं हस्तारण हेतु विद्यालयों की स्थापना करते है और अध्यापकों से यह आशा की जाती है कि वे विद्यार्थियों को इन मूल्यों को हस्तांतरण करे। यह आवश्यक है कि यह जाना जाये कि मूल्य कितने प्रकार के होते है। पाल गुप्त एवं मोहन के अनुसार– मूल्यो का वर्गीकरण–

1– व्यक्तिनिष्ठ व वस्तुनिष्ठ– इससे तात्पर्य यह है कि जिन मूल्यों के द्वारा व्यक्ति की इच्छा व आवश्यकता निश्चित होती है, वह व्यक्तिनिष्ठ व दूसरी ओर वस्तुनिष्ठ मूल्य वस्तु और स्थिति पर निर्भर करते हैं। ये आंतरिक व वाह्य मूल्य भी कहलाते है।

2– साधन मूल्य व सांस्कृतिक मूल्य– साधन मूल्यों की प्राप्ति वाह्य कारकों पर निर्भर करती है, इससे इन्हें वाह्यगत मूल्य भी कहते हैं इसके चार उपभेद है (अ) परिचयात्मक (ब) प्रयोगात्मक (स) सामाजीकरण करने वाले व (द) रीति सम्बंधी। सांस्कृतिक मूल्य स्वयं उपयोगी होते हैं। सौन्दर्यात्मक अनुभूति व बौद्धिक

आनन्द इसके प्रकार है। सांस्कृतिक मूल्य के दो उपभेद उदार एवं भावात्मक है। उदार मूल्य बौद्धिक अन्तदर्षष्टि और विवेकपूर्ण चिन्तन में पाये जाते हैं। भावात्मक व सौन्दर्यपूर्ण तथ्यों में भावात्मक मूल्य मिलते हैं।

3–नैतिक धार्मिक व आध्यात्मिक मूल्य– नैतिक मूल्य नीतिगत व्यवहारों से सम्बंधित है तो धार्मिक मूल्य धार्मिक आस्था विचारों एवं क्रियाकलापों से सम्बंधित है। आध्यात्मिक मूल्य परम् सत्ता की प्राप्ति से सम्बंधित है।

4–चरम मूल्य एवं मूल मूल्य– चरम मूल्य प्रभु के अस्तित्व में है तो मूल मूल्य भी एक प्रकार का चरम मूल्य है, और ईश्वर सभी मूल्यों का मूल है।

5–अस्थायी व सीमित मूल्य – अस्थायी मूल्य मुख्यतः समाज में उपयोग होते है और परिथितियों से प्रायः अस्थिर हो जाते हैं, और इनमें प्राप्त मूल्य भी सीमित ही हुआ करते हैं।

6–व्यक्तिक व सामाजिक मूल्य– जो मूल्य किसी व्यक्ति को अन्य से अलग करे वे व्यक्तिक मूल्य है, तथा व्यक्ति समाज से विहीन नहीं रह सकता ओर इससे वह समाज के कुछ निर्धारित मान्यताओं नियमों को मानता है, तो वह सामाजिक मूल्य कहलाते हैं। समाज की सभी संस्थायें सामाजिक मूल्यों पर आधारित होती हैं।

7–भौतिक व अभौतिक मूल्य– भौतिक पदार्थों से सम्बंधित निर्णय व मानदण्ड भौतिक मूल्य व अभौतिक पदार्थों (ईश्वर) से सम्बंधित मूल्य अभौतिक या आध्यात्मिक कहलाते है।

8–शैक्षिक मूल्य– ये मूल्य शिक्षा के उद्देश्यों से सन्दर्भित होते हैं। ये कई मूल्यों के संगठन होते है, जैसे (1) स्वास्थ्य का मूल्य,(2) बौद्धिक मूल्य,(3) मानवीय मूल्य,(4) व्यावसायिक मूल्य,(5) नागरिकता के मूल्य,(6) सांस्कृतिक मनोरंजनात्मक मूल्य, (7) नैतिक मूल्य, धार्मिक मूल्य। शैक्षिक मूल्य मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं व पक्षों से सम्बधित होते हैं। यह हम जानते हैं कि शिक्षा का क्षेत्र सम्पूर्ण जीवन है विश्व है अतः व्यक्ति आपसे समाज से जो भी कुछ सीखता है उसका माध्यम शिक्षा बनती है।

शैक्षिक मूल्यों का वर्गीकरण–

क. स्वास्थ्य सम्बंधी मूल्य–व्यक्ति का सुन्दर स्वास्थ्य, निरोग, शरीर, खेलकूद, व्यायाम, अभिनय, सुख के साधन अपना मूल्य जीवन में रखते हैं, यही उसके स्वास्थ्य या मनोरंजन सम्बंधी मूल्य माने जाते हैं।

ख. सामाजिक मूल्य–ये वे मूल्य है जिनको अपनाकर कोई भी व्यक्ति किसी भी समाज का प्रभावी सदस्य बन जाता है और शिक्षा इनका भी विकास शिक्षण व

शिक्षणेत्तर क्रियाकलापों के माध्यम से करती है।

ग. **नैतिक मूल्य**–ये वे मूल्य है जो बालक को नीतिगत व्यवहार एवं क्रियाकलाप करने हेतु अभिप्रेरित करते हैं। बालक का नैतिक विकास एक प्रमुख शैक्षिक उद्देश्य है।

घ. **बौद्धिक मूल्य**– ये मूल्य बालक के सद् ज्ञान से सम्बंधित है जो कि विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम से बालक को प्राप्त होते हैं, परन्तु व्यक्तिगत रूचि के कारण यह मूल्य विविधता लिये रहता है।

ड. **धार्मिक मूल्य**–ऐसे मूल्य जिनका सम्बंध व्यक्ति के धार्मिक अनुभवों से है और धर्म की विभिन्न नीतिगत पक्ष इस मूल्य को वषद्वित करते है।

च **संस्था सम्बंधी मूल्य**– मनुष्य जिस संस्था में रहता है उसके कुछ अपने निजी मूल्य होते हैं, और ये भी शैक्षिक मूल्यों के अन्तर्गत आते हैं। इन संस्थाओं का निर्माण भावनाओं के कारण होता है। जाति समुदाय, सभा सोसाइटी, पाठशाला, राजनैतिक पार्टिया, व्यावसायिक संघ आदि इनके उदाहरण हे। इन सबके प्रति मनुष्य में मूल्य उत्पन्न होते है। ब्राउडी द्वारा बताये गये ये मूल्य एक दूसरे रूप में है क्योंकि इनमें शिक्षा के सविधिक एवं अविधिक पक्षों को ध्यान में रखा गया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5– व्यक्तिनिष्ठ व वस्तुनिष्ठ मूल्य क्या है?

.....

6– शैक्षिक मूल्यों के अन्तर्गत कौन–कौन से मूल्य समाहित हैं?

.....

7– संस्था सम्बंधी मूल्य से आप क्या समझते हैं?

.....

11.6 शैक्षिक मूल्यों की आवश्यकता

नागरिकों के निर्माण का दायित्व शिक्षा पर हैं। शिक्षा द्वारा ही आदतों, प्रवषत्तियों, अभिवषत्तियों तथा काग्रकारी दक्षताओं का विकास किया जा सकता है।

बच्चों के मूल्यों के विकास पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। सबसे अधिक प्रभाव उनके वातावरण का पड़ता है। मूल्यों की शिक्षा का महत्व को अनुभव सभी करते है पर उसकी निश्चित न होने के कारण विद्यालय में इसका सही रूप में विकास करने में असुविधा होती हैं, क्योंकि निर्धारित स्वरूप के अभाव में नैतिक शिक्षा में व्यैक्तिकता एवं आत्मनिष्ठा की सम्भावना सदा बनी रहती है, और साथ ही साथ और साध्य में अभीष्ट सामंज़स्यय स्थापित नहीं हो पाता है।

शैक्षिक मूल्यों के उद्देश्य मूल्य शिक्षा के उद्देश्य निम्नवत है–

- जीवन में मानवीय मूल्यों की उपयोगिता समझना।
- बच्चों में मानवीय मूल्यों के प्रति चेतना जागष्त करना उन्हें अस्थावान बनाना।
- मानवीय मूल्यों के विकास हेतु उपयुक्त अधिगम अवसर प्रदान करना।
- बच्चों में अच्छी आदतों का विकास करते हुये उनके व्यवहार में आपेक्षित परिवर्तन लाना।
- शिक्षा के साथ–साथ बच्चों का नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास करना।
- शैक्षिक मूल्यों को विकसित कर बालक को आदर्श एंव मानदण्ड के अनुरूप आचरण के लिये प्रेरित करना।
- बालक में आत्मानुभूति की कला विकसित करना।
- बालकों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करना।

वर्तमान बदलते परिवेश में शिक्षा बालक को सही अर्थों में मानव बनाने के अतिरिक्त सब कुछ बनाती है, क्योंकि चहुँ और मूल्य का उन्मूलन हो रहा है शैक्षिक मूल्यों के प्रतिस्थापन न होने के कारण सम्पूर्ण सामाजिक ढांचा चरमरा गया है शिक्षा व्यक्ति को संस्कारवान बनाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने मूल्य शिक्षा के सम्बंध में निम्न विचार दिये–

- जीवन के लिये आवश्यक मूल्य दिन प्रतिदिन ह्यस हो रहे और मूल्यों पर से ही लोगों का विश्वास उठाता जा रहा है, अतः शिक्षा क्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है जिससे सामाजिक और नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा सशक्त साधन बन सके।
- शिक्षा द्वारा उन सार्वजनिक एवं शाश्वत मूल्यों का विकास होना चाहिये, जो देश के लोगों को एकता की ओर ले जा सके। इन मूल्यों से धार्मिक अंध ा–विश्वास,कट्टरता, असहिष्णुता, हिंसा और भाग्यवाद का अंत करने में साध्य हो।

- संघर्षात्मक भूमिका के साथ–साथ मूल्यों की शिक्षा एक गम्भीर सकारात्मक पहलु हैं, जिसका आधार हमारी सांस्कृतिक विरासत, राष्ट्रीय लक्ष्य और सार्वभौमिक दर्षष्टि है, जिस पर मुख्य तौर पर बल देना चाहिये।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या नवम्बर 2000 में मूल्यों की शिक्षा के सम्बंध में उल्लेखित किया है कि, भारतीय पारम्परिकता को नागरिक शिक्षा पद्धति से जोड़कर राष्ट्र की संस्कृति पहचान के अवसर पाठ्यक्रम में प्रदान किये जाने चाहिये जिसमें राष्ट्रीय अस्मिता का सुदृढ़ीकरण हो जैसे जाति, धर्म, विचारधारा लिंग के मतभेदों को समाप्त करने की जानकारी संकलित हो, प्रार्थना, ध्यान, मौन साधना के पीछे हुये वैज्ञानिक तथ्यों को स्पष्टीकरण का प्रावधान हमारे पाठ्यक्रम में किया जाना चाहिये।
- प्रगतिवादी युग में विज्ञान व तकनीकि का प्रयोग भयंकर अस्त्र–शस्त्रों के निर्माण के लिये भी हो रहा है, जिससे मानघ जाति के अस्तित्व के लिये संकट उत्पन्न हो गया है ऐसी स्थिति ने विद्यार्थियों में नैतिक चेतना के जागरण की आवश्यकता है।
- पूरे समाज में उन्हें उन मूल्यों का पालन होते दिखायी नहीं देता जिनका वर्णन पुस्तक में हेाता है इसलिये बालकों को सही जीवन शैली को अपनाने की शिक्षा देना आवश्यक है, क्योंकि मानव मात्र का विकास उचित मूल्यों पर ही आधारित है।
- आज की शिक्षा नैतिकता व धार्मिकता विहीन दिखायी देती है जिसके कारण विद्यार्थियों में बढ़ती अनुशासन हीनता चरम सीमा पर पहुॅच रही है। इन्ही सब कारणो से सभी स्तर की शिक्षा में मूल्यों का व्यवस्थापन आवश्यक हैं

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8– हमारी शिक्षा केवल वष्तान्तमक है, संस्कारात्मक नहीं। समझाइये।

.....

9–शिक्षा में मूल्यों का व्यवस्थापन में क्या कठिनाई है?

.....

11.7 शैक्षिक मूल्य एवं शिक्षक की भूमिका

भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षक को आचार्य कहा गया, जिसका अभिप्राय है सद्गुणों से परिपूर्ण। उसे अग्निराचार्य, प्रज्जवलक, प्रकाशक, पावक तथा शोधक माना गया। सुल्तान मुहीउद्दीन ने लिखा कि– *"इस देश के विद्यालयों में प्रत्यक्ष नैतिक व धार्मिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा की एक लम्बी परम्परा रही है।"* गुरूओं का चरित्र एवं क्रियाकलाप अनुकरणीय था। ऋग्वेद में आचार्य को अज्ञानता से ज्ञान की ओर ले जाने वाला पथ प्रदर्शक कहा गया है (आपस्तम्ब धर्मसूत्र)। गीता दर्शन में स्पष्ट कहा गया है कि *"गुरू का कार्य राजघरानों तक पहुँचा और सुयोग्य नागरिक व सुयोग्य प्रशासन बनाने का दायित्व भी गुरू को मिला।"* कर्मयोग ज्ञान योग व भक्तिर ा विधि ही ज्ञान देने का माध्यम थी। नवधा भक्ति ने आध्यात्मिक मूल्यों का उत्थान एवं व्यवस्थान किया। डॉ0 युसुफ हुसैन के अनुसार– *"मुस्लिम काल के मदरसों में अध्यापक एक अच्छा मुसलमान तो तैयार करने में समर्थ हुये, परन्तु नेतृत्व के गुणों के विकास करने में विफल रहे।"* इसका अभिप्राय है कि आदिकाल से ही शैक्षिक मूल्यों के व्यवस्थापन का कार्य शिक्षक ने ही कियाहै। धार्मिक व नैतिक शिक्षा समिति (1960) ने स्पष्ट किया कि शिक्षा के सभी स्तरों पर नैतिक दार्शनिकों एवं आध्यात्मिक सिद्धान्तों से परिचय छात्रों को कराया जाना चाहिये।

शिक्षक छात्रों के साथ धार्मिक व भौतिक विचार–विमर्श करे। यह विचारणीय है कि आदिकाल से जब शिक्षक अपने अनुकरणीय आचरण एवं शिक्षण से ही विद्यार्थियों में शैक्षिक मूल्यों का व्यवस्थापन करता था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि–

- आचार्य शिष्य को नया जन्म देता है– अर्थात् अविद्या से मुक्त करके ज्ञान से परिपूर्ण जीवन प्रदान करे।
- आचार्य मष्त्यु देवता है– अर्थात् मनुष्य की पशुवत दैहिक प्रवर्त्तियों को शमित कर यमस्वरूप कठोरता से उनहे नष्ट कर देता है।
- आचार्य वरूण है– अर्थात् शिष्यों के दोषों को धुलकर स्वच्छ, धवल चरित्र प्रदान करता है।
- आचार्य सोम औषधि तथा पय है– अर्थात् शिक्षक सोम व चन्द्रमा के समान शान्ति प्रदायक है।
- आचार्य ब्रह्मचारी है– अर्थात् आचार्य लोभी भ्रष्टचारी न होकर संयमित हो।
- आचार्य ईश्वर से बढ़कर है– अर्थात् शिक्षक ईश्वर तक जाने का मार्ग बताता है।

उपरोक्त कार्य यह इंगित करते हैं कि शिक्षा में मूल्य व्यवस्थापन का कार्य में शिक्षक की भूमिका अहम है।

मूल्य व्यवस्थापन हेतु शिक्षक द्वारा की जाने वाली गतिविधियॉ–

- पाठ्यवस्तु में समाहित मूल्यों को बच्चों से छंटवाकर चर्चा कर बच्चों को मौलिक अभियक्ति का अवसर दिया जाये।
- सूचना पट्ट पर नये बोध विचार लिखवायें व चर्चा करवाये जिससे उनमें मूल्यों की समझ उत्पन्न हो।
- विद्यालय के दीवारों पर सद्वाच्य लिखना तथा महापुरूषों के चित्र लगाना जिससे छात्रों की दर्षष्टि अच्छी बातों पर पड़े।
- बालसभा में मानवीय मूल्यों पर प्रतियोगिता सुलेख नीति श्लोक, दोहे कविता पाठ आदि का आयोजन करना।
- अध्यापक अपनी नियमितता एवं सद्कार्यों से विद्यार्थियों को प्रेरित करें।
- प्राकषतिक विपदा की स्थिति में जरूरत मंद लोगों की सहायता करवाने हेतु विद्यार्थियों को प्रेरित कर सहानुभूति, सहायता व परमार्थ के गुण उत्पन्न करे।
- कार्यानुभव, कला, संगीत, शारीरिक शिक्षा, स्काउट गाइड खेल आदि का आयोजन कर विभिन्न मानवीय व सामाजिक मूल्यों का विकास करे।
- शैक्षिक भ्रमण, बाल मेला, राष्ट्रीय पर्वों, उत्सवों के अवसर पर मानवीय मूल्यों की चर्चा करना विभिन्न महापुरूषों व शहीदों के जयन्तियों को आयोजित कर सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों को जागृत करे।
- विद्यालय में श्रमदान वक्षारोपण सौन्दर्यीकरण से सम्बंधित क्रिया कलापों को कराकर स्वावलम्बन की भावना विकसित करे।
- स्थानीय गुणीजनों प्रतिभाओं व विशिष्ट जनों के प्रति विद्यार्थियों में आदर एवं सम्मान की भावना का विकास करे।
- अध्यापक, अभिभावक संघों को सक्रिय कर घर के वातावरण को शिष्टाचार से परिपूर्ण बनाने हेतु प्रेरित करें।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10–वैदिक युग की शिक्षा में मूल्यों के व्यवस्थापन का दायित्व किस पर था ?

.....

11–शिक्षक को वरूण व यम क्यों कहा गया है?

.....

11.8 शिक्षा में मूल्य व्यवस्थापन हेतु सुझाव

शिक्षा व्यवस्था में मूल्यों की शिक्षा का विकास वास्तव में दुरूह कार्य है। शिक्षातंत्र में ऐसी कोई विधि नहीं है जिसका उपयोग कर मूल्यों को विकसित किया जाये। यदि निम्न प्रकार की गतिविधियों पाठ्यक्रम में समाहित की जाये तो शैक्षिक मूल्यों को हम विकसित कर सकते हैं।

- बच्चों को मूलभूत, नैतिक सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा दी जाय, यथा सत्य, सामाजिक उत्तरदायित्व बड़ों के प्रति श्रद्धा, सहानुभूति की शिक्षा को विद्यालयी कार्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाये।
- कुछ सत्र मूल्यों को दैनिक जीवन से सम्बंधित प्रयोग के रखे जाये।
- पाठ्यक्रम में सभी धर्मो के मूलतत्व रखे जाये। बच्चों को आदर्श बातों की अध्ययन के पश्चात् चर्चा करायी जाये।
- मूल्य की शिक्षा और समस्याओं के समाधान पर विचार–विमर्श कराया जाये।
- प्रेरक प्रार्थना सभा का आयोजन किया जाये।
- महापुरूषों के विचारों के निहितार्थ समझाये जाये।
- विद्यार्थियों के संवेगात्मक विकास हेतु सामाजिक दण्ड एव पुरस्कार की व्यवस्था की जाये।
- समस्त धर्मों के सारतत्व का प्रयोग कर बालकों का नैतिक विकास करना चाहिये।
- विद्यार्थियों में संस्कार, शिष्टाचार व स्वच्छता की आदत का विकास किया जाये।
- विद्यार्थियों में आत्मविश्वास की भावना विकसित करने हेतु प्रोत्साहित किया जाये। अभिभावक एवं शिक्षक विद्यार्थियों के प्रति साकारात्मक दृष्टिकोणरखे और सद्कार्यों की प्रशंसा करें।
- नेतृत्व के गुणों के विकास हेतु समूह कार्य, अभिनय, बालचर एवं संगोष्ठी आदि करवायें और सहभागिता व सहिष्णुता का विकास करें।
- विद्यार्थियों को व्यवस्थित एवं स्वच्छ जीवन जीने के योग्य बनाया जाये, और उन्हें अपने कार्य करने की आदत का विकास करने में सहयेाग दें।
- आदत एवं आज्ञा के गुण विकसित करने के लिये बड़ों के प्रति आदर व आस्था का भाव जागृत करे।
- विद्यालयी स्वच्छता क विकास हेतु बच्चों को विद्यालय प्रांगण की स्वच्छता की आदत का विकास करें।
- अध्ययन की आदत का विकास करने के लिये सही मुद्रा में नियत्रित पढ़ने वाले बच्चों की सहायता करनी चाहिये तथा सही दिशा में अन्य बच्चों को भी प्रेरित

किया जाये।

- प्रेम एवं मित्रता सम्बंधी भावना के विकास हेतु इनसे सम्बंधित प्रकरणों को उद्घाष्त करे व विंद्यार्थियों को इनके लिये उचित अवसर दें।
- सष्जनात्मक प्रवर्त्ति का विकास हेतु चिन्तन एवं सौन्दर्य बोध के लिये बच्चों में परिवेश के प्रति जिज्ञासा एवं सजगता तथा अन्तः क्रिया करने की उत्सुकता पैदा करनी चाहिये।
- मितव्ययिता की आदतों का विकास करने हेतु अपव्यय पर चर्चा करवायें चर्चा अल्प संसाधनों से अधिक लाभ प्राप्त करने की आदतों का विकास करें।
- सदाचार (सेवा, सहयेाग, परमार्थ, शिष्टाचार, सहानुभूति उदारता, कष्तज्ञता, अहिंसा, शान्ति, सहिष्णुता, साहस, मनवचन, कर्म की एकरूपता, सादगी त्याग, दया) के गुणों के विकास हेतु विद्यार्थियों से इनके अनुकूल व्यवहारों की चर्चा की जाये।
- देशप्रेम की भावना के विकास हेतु राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन वष्हद रूप में किया जाये।
- सांस्कृतिक विरासत की रक्षा की भावना उत्पन्न करने हेतु पाठ्यक्रम में इनसे सम्बंधित तत्व सम्मिलित किये जाये तथा अनेकता में एकता, सर्वधर्म समभाव विज्ञान एवं तकनीकि के महत्व तथा कला–साहित्य एवं संस्कषति के प्रति उचित समझ विकसित करने हेतु शैक्षिक भ्रमण करवायें।
- स्वास्थ्य शिविर, स्वच्छता अभियान एवं व्यवसाय जागरूकता शिविर लगाकर श्रमदान की भावना का विकास कराया जाये।
- सामाजिक व नैतिक विकास हेतु सांस्कषतिक, साहित्यिक एवं धार्मिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जायें।
- बच्चों को सद्कार्यों एवं आचरण हेतु प्रोत्साहित करें जिससे अच्छे व्यवहार की पुनरावर्त्ति हो।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12– बालकों में परमार्थ की भावना का विकास कैसे करें?

.....

13–अच्छे आचरण, सद्विचार एवं सद्कार्यों की पुनरावर्त्ति के लिये क्या करना चाहिये?

.....

11.9 सारांश

हम सब पढ़ चुके हैं कि मूल्य जीवन के अभिन्न अंग है, और यह जीवन को विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन करने योग्य बनाते हैं क्योंकि ये निर्णय को आधार प्रदान करते हैं। मूल्य मानदण्ड के रूप में कार्य करते है, कि मूल्य विकास के माध्यम से जहां हम बच्चों को अधिकारों (अभिव्यक्ति, जानने, सीखने प्रतिभागिता, सुरक्षा एवं संरक्षण सक्रिय भागीदारी, सूचना, सकारात्मक, सोच/प्यार दुलार आदि) से परिचित कराते हैं-वही दूसरी ओर उनके जीवन कौशलों (समस्या समाधान, समस्या परिस्थितियों का विश्लेषण, दष्ढ़ इच्छा शक्ति, सीखे हुये ज्ञान को दैनिक जीवन में प्रयोग, नेतृत्व , समूह में कार्य करने के कौशल, निर्णय लेने की क्षमता आदि) से परिचित कराकर उनको अपने जीवन में उतारने हेतु तैयार किया जा सकता है। हम शिक्षा द्वारा मूल्यों के विकास में उनके व्यवहार विद्यालय और मित्रों के परिप्रेक्ष्य में नियंत्रित एवं परिष्कष्त करते चलेंगे तो वे शिक्षा को कर्तव्य निष्ठा अनुशासन और आस्था के प्रति सर्वजन हिताय बना सकेंगे।

11.10 अभ्यास कार्य

1— मूल्य से आप क्या समझते है? मूल्यों की हमारी जीवन में क्या उपयोगिता है?

2— विद्यालयों में शैक्षिक मूल्यों के व्यवस्थापक हेतु कौन–कौन से क्रिया कलाप कराये जा सकते हैं?

11.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. मूल्य वह हैं जो मानव को संतुष्ट करे यह एक अमूत सम्प्रत्यय है।
2. अमूर्तता, निरन्तरता, विचारात्मक, मानदण्ड रूप में मूल्यवान, निश्चयात्मक, परिवर्तनशील।
3. अध्यात्मिक मूल्य।
4. वास्तविक रूप में अनुभवों पर आधारित ।
5. व्यक्तिनिष्ठ तथ्य व्यक्ति की इच्छा एवं आवश्यकता निश्चित करते हैं , वस्तुनिष्ठ मूल्य वस्तु व स्थिति पर निर्भर करते हैं।
6. धार्मिक, सामाजिक, संस्थागत, नैतिक, बौद्धिक।
7. किसी संस्था विशेष के नियम व मूल्य ।
8. ज्ञान देती है संस्कार नहीं।

9. अज्ञानता, उदासीनता, पाठयक्रम में उचित व्यवस्था का अभाव, उचित दृष्टिकोणका अभाव।

10. शिक्षकों पर

11. शिष्य कें दोषों को वरूण समान घुलता है व दैहिक प्रवषत्तियों को शामित करता है।

12. प्रकृतिक आपदाओं में राहत शिविरों का आयोजन एवं श्रमदान।

13. अच्छे आचरण को प्रोत्साहन।

11.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Charkbarti Mohit (1997) : *Value Education*, Changing perspectives, New Delhi, Kanishka Publication.Delhi

Goyal B.R. (1979) : *Document on Social, Moral & Spritual Values In Education*, New Delhi, NCERT

Pant D (2000) : *Conceptual Aspect of Value Education, Article*, Journal of Value Edication.

Ruhela S.P.(1986) : *Human Values & Education*, Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi.

Venkataiah N. (1998) : *Value Education*, APH Publishing Corporation, New Delhi, First Edition.

Pandey R.S. & Mishra K.S.: *Mulya Shikshan*, Vinod Pustak Mandir. Agra.

गर्ग ए0के0 (2003) : *मूल्य आधारित शिक्षा, मानवीय मूल्य : मानव व्यक्तित्व*, लेख, अजमेर, राष्ट्रीय संगोष्ठी 2003

इकाई– 12 अनुशासन एवं स्वतंत्रता

संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 स्वतंत्रता की संकल्पना

12.4 विद्यार्थी एवं स्वतंत्रता

12.5 अनुशासन की संकल्पना

12.6 अनुशासन सम्बधी सिद्धान्त

12.7 दार्शनिक दृष्टिकोणमें अनुशासन

12.8 अनुशासनहीनता का कारण

12.9 अनुशासन स्थापन के उपाय

12.10 सारांश

12.11 चर्चा के बिन्दु

12.12 अभ्यास कार्य

12.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य मानव जीवन के उद्देश्यों से ही सम्बंधित हैं, और शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति में स्वंत्रता एंव अनुशासन एक महत्वपूर्ण तथ्य है जो इनके प्रकारों व सिद्धान्तों के कारण सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। अनुशासन एवं स्वतंत्रता ऐसा प्रतीत होता है कि एक–दूसरे के विपरीत है परन्तु ऐसा नहीं है, अनुशासन सहित स्वतंत्रता लक्ष्यों को सुदृढ़ एवं प्राप्य बनाते है। स्वतंत्रता के उचित उपभोग हेतु विचारशीलता अति आवश्यक है और विचारशीलता अनुशासन से ही उत्पन्न होती है और इस प्रकार से अमूर्त रूप से अनुशासन स्वतंत्रता का आधार है बिना अनुशासन के स्वतंत्रता स्वच्छदन्दता में परिवर्तन हो जाता है और स्वतंत्रता और अनुशासन दोनों ही शिक्षा व्यवस्था के अभिन्न मनोवृत्तियां हैं, इस इकाई में हम अनुशासन एवं स्वतंत्रता के विषय में विस्तार से पढेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् इस योग्य हो जायेंगे कि

- स्वतंत्रता एवं अनुशासन की संकल्पना को स्पष्ट कर सकेंगे।
- स्वतंत्रता एवं अनुशासन की आवश्यकता को वर्णित कर सकेंगे।
- स्वतंत्रता एवं अनुशासन के सिद्धान्तों की विवेचना कर सकेंगे।
- शिक्षा में अनुशासनहीनता के कारणों पर प्रकाश डाल पायेंगे।
- अनुशासन स्थापन के विविधि उपायों का सुझाव दे सकेंगे।

12.3 स्वतंत्रता की संकल्पना

व्यक्ति या कोई भी सजीव प्राणी जीवन में जो भी करता है या सोचता है उसमें अपनी इच्छा को ही प्रमुख मानता है। व्यक्ति अपनी इच्छा को किसी के अधीन नहीं रखना चाहता है और अपनी स्वतंत्र क्रियाओं में बाधा उसकी मनोवर्त्ति एवं उपलब्धि को प्रभावित करती है और मनुष्य की स्वतंत्रता उसकी मनोवर्त्ति से सम्बंधित है और इसकी आवश्यकता एवं स्वरूप दर्शन के भी कौतुहल का विषय रहा है। शिक्षा में स्वतंत्रता एक मनोवर्त्ति है। शिक्षा के क्षेत्र में इसकी क्या आवश्यकता है इसका ज्ञान आवश्यक है।

स्वतंत्रता साधारण अर्थ में किसी भी बन्धन से मुक्ति है। डी0वी0 ने लिखा कि *"स्वतंत्रता किसी भी प्रकार के बन्धन से योग्यता का छुटकारा है।"* अब्राहम लिंकन के शब्द बड़े ही मार्मिक है *"दुनिया ने कभी स्वतंत्रता का सही अर्थ नहीं समझा। अमेरिकन लोगों के लिये तो इसका सही अर्थ समझना अधिक आवश्यक है।"*

स्वतंत्रता हेतु अंग्रेजी में कई शब्द प्रयुक्त होते है– लिबर्टी, इन्डिपेन्डन्स एवं फ्रीडम। लिबर्टी शब्द का मूल शब्द लिबरा है, जिसका तात्पर्य 'तुला' है। तराजु वस्तु के भार का माप करता है, अतः लिबर्टी इसी अर्थ में अपने आचरण एवं व्यवहार को मापने वाला कहा जा सकता है। 'इण्डिपेन्डेन्स' शब्द का विलोम 'डिपेन्डन्स' होता है, जिसका अभिप्राय है पराश्रित या पराधीनता। अर्थात् जो कि अपने कार्य स्वयं न कर पाये और धीरे–धीरे जब करने लगे तो यह डिपेन्डेन्स से इन्डिपेन्डेन्स हो गया। फ्रीडम में मूल शब्द है फ्री अर्थात् स्वतंत्र, पर इस स्वतंतत्रता में नियंत्रण है। स्वतंत्रता में मूल शब्द 'तन्त्र' है। इसमें 'स्व' उपसर्ग तथा 'ता' प्रत्यय लगा हुआ है, इसका अभिप्राय है कि अपने नियमों या पिरनियमों में आबद्ध मुक्ति। स्वतंत्रता व्यक्ति के व्यकित्व के सम्पूर्ण एवं प्राकृतिक विकास हेतु अति आवश्यक है। स्वतंत्रता अर्थात बिना रोक–टोक अपनी

शक्तियों का उचित उपयोग पर वह दूसरों की क्रियाओं में बाधा न डाले। स्वतंत्रता का सही उपयोग के लिये बोधगम्यता एवं विचारशीलता अति आवश्यक है, अर्थात् विचारशीलता स्वतंत्रता की पहली सीढ़ी है।

स्वतंत्रता के दो यंत्र आत्मानुशासन एवं आत्मनियंत्रण कहे जाते हैं। शिक्षा में स्वतंत्रता की आवश्यकता क्या है, इस को हम निम्न बिन्दुओ के अन्तर्गत देख सकते हैं–

- स्वतंत्रता के द्वारा बालक के व्यक्तित्व का संतुलित एवं सर्वांगीण विकास होता है।
- स्वतंत्रता मानसिक विकारों को प्रकट कर मानसिक दष्ढ़ता एवं स्वास्थ्य प्राप्त करने मे सहायक है।
- स्वतंत्रत वातावरण में सहज स्वाभाविक क्रियाओं को करने में बालक को आसानी होती है।
- स्वतत्रंता स्वभाविक परिस्थितियां उत्पन्न करनें में सहायक होता है, जिससे कि बालक का विकास प्राकषतिक वातावरण में हो सके।
- यह संवेगों को प्रकट करने व गलत संवेगों को रोकने का वातावरण प्रदान करता है।
- स्वतत्रंता बालक को आत्मनिर्णय लेने एवं आत्मप्रदर्शन करने का बल प्रदान करता है।
- यह कुण्ठित भावनाओं को प्रकट कर चरित्र को स्वच्छ बनाने में सहायक होता है।
- इसके कारण बच्चों में पराश्रितता की भावना समाप्त होती है और गलत कार्यो से ही कार्यों के लिये स्वयं निर्णय लेकर प्रवष्त्त होते है।
- यह काफी सीमा तक विद्यालयीय सम्बंध शिक्षक छात्र, शिक्षक, शिक्षक एवं शिक्षा छात्र एवं प्रशासन को सकारात्मक मोड़ दे सकता है।

स्वतंत्रता कितनी और कौन सी दी जानी चाहिये यह एक यक्ष प्रश्न है, इसको आगे हम पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1. स्वतन्त्रता शब्द की व्याख्या कीजिये।

.....

12.4 विद्यार्थी एवं स्वतंत्रता–

इस तथ्य पर भी विचार किये जाने की आवश्यकता है कि हम शिक्षा में विद्यार्थियों को कौन–कौन सी स्वतंत्रता विद्यार्थियों को दी जाने वाली स्वतंत्रता प्रदान कर सकते है।

1– भावनात्मक स्वतंत्रता

2– बोधात्मक स्वतंत्रता

3– वैचारिक स्वतंत्रता

4– मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता

5– धार्मिक स्वतंत्रता

6– शिक्षणा अधिगम से सम्बंधित स्वतंत्रता

- **भावात्मक स्वतंत्रता** – विद्यालयों में दी जाने वाली स्वतंत्रता के अन्तर्गत विद्यार्थियों की अपनी भावनाओं को साकारात्मक ढंग से प्रत्यक्ष करने की स्वतंत्रता आयेगी। भावनाओं का प्रदर्शन न होने से कुण्ठा का जन्म होता है और यह कुण्ठा बालक के अन्तर्मन में व्याप्त रहती है और उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। इसके लिये शिक्षकों को विद्यार्थियों को भावनाओं के प्रदर्शन हेतु उचित अवसर कक्षा के अन्दर व कक्षा के बाहर भी प्रदान करना होगा।

- **बोधात्मक स्वतंत्रता** – इस प्रकार की स्वतंत्रता के अन्तर्गत विद्यार्थियों को अपनी समझ शक्ति के अनुसार ग्रहण करने की क्षमता की स्वतंत्रता आयेगी। इसके लिये शिक्षकों को छात्रों को ऐसा वातावरण प्रदान करें कि विद्यार्थियों को अपनी समझ क्षमता के अनुसार ही शिक्षण सामग्री को बोध करें। इससे विद्यार्थियों में अधिगम की रूचि बनी रहेगी।

- **वैचारिक स्वतंत्रता** – विद्यालयी वातावरण में विद्यार्थियों को विद्यालयी क्रियाकलापों समस्याओं शिक्षण क्रियाकलाप व विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता आती है। दरअसल बालकों में सामाजिक राजनैतिक, सांस्कृतिक व अन्तराष्ट्रीय जागरूकता का भाव पैदा होगा और विद्यार्थियों में विचारों को प्रदर्शित करने से व्यक्तित्व में खुलापन आयेगा ।

- **मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता** – मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता एक वष्हद प्रत्यय है। मनोवैज्ञानिक तथ्यों का समावेश शिक्षा में नया आयाम है और इससे शिक्षा को बालकेन्द्रिता का दृष्टिकोणदिया। मनोवैज्ञानिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत बच्चों को

रूचि, अवधान स्तरानुसार अधिगम, शारीरिक विशेषतायें, मानसिक क्षमतायें, भावनात्मक विशिष्टायें एवं व्यक्गित क्षमताओं के अनुसार विद्यालय में अध्ययन अधिगम में भाग लेते हैं।

- **धार्मिक स्वतंत्रता** – लोकतंत्र व्यवस्था एवं संवैधानिक प्रावधान के अन्तर्गत विद्यार्थियों को अपने धर्म को मानने व सम्मान करने की स्वतंत्रता विद्यालयों में दी जाती है, परन्तु इसके अन्तर्गत स्वतंत्रता की सीमा के साथ निजता भी है, क्योंकि यह ध्यान देना भी चाहिये कि विद्यार्थी अपने धार्मिक विचारों को अन्य पर न थोपें न ही शैक्षिक प्रशासन धर्म विशेष को अत्यधिक महत्व न देकर सर्वध र्म समभाव का मार्ग अपनाने और शिक्षक भी सभी धर्मों के अच्छी तथ्यों की शिक्षण में सम्मिलित करे।
- **शिक्षण एवं अधिगम सम्बंधी स्वतंत्रता**– इस प्रकार स्वतंतत्रता के अन्तर्गत विद्यार्थी क्या पढ़ना चाहता ह ? कितना पढ़ना चाहता है ? कौन सा विषय पढ़ना चाहता ? जैसे तथ्यों में विद्यार्थियों को दी जाने वाली छूट आती है। इस प्रकार की स्वतंत्रता के लिये विचारशीलता एवं आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है। यह स्वतंत्रता विद्यार्थियों को पूर्ण आत्मविश्वासी एवं आत्मनिर्भर बनने में सहायता करता है और यह स्वतंत्रता वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के व्यावहारिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक हेांगे।
- स्वतत्रंता के साथ अध्यापक को बहुत सतर्क रहना पडता है कि स्वतंत्रता कहीं स्वछन्दता न बन जाये इसके लिये शिक्षक को स्वयं सतर्क रहना पड़ता है।
- वह अवस्था जिसमें अध्यापक अधिक सक्रिय रहकर बालकों के लिये सभी प्रकार की व्यवस्था करें जिसमें बौद्धिक, शरीरिक एवं भावात्मक व्यवस्था में लिखने–पढ़ने की सभी सुविधायें उपलब्ध करानी पड़ती है जिससे ध्यान भंग न हो, श्रव्य दृश्य साधनों का प्रयोग करके पाठ को रोचक एवं सरलता से बोधगम्य बनाया जाये। बालकों को रोचकता सरलता पूर्वक पढ़ाया जाय। विद्यार्थियों को तादात्म्य स्थापित करने एवं प्रश्नोंत्तर करने हेतु प्रेरित करना पड़ता है। विद्यार्थियों के भावनाओं को समझकर उनके अधिगम का वातावरण तैयार किया जाता है। तब कही जाकर स्वतंत्रता का सही प्रयोग व विद्यालय में अनुशासन स्थापन की समस्या का समाधान हो जाता है।
- दूसरी अवस्था में शिक्षक स्वतंत्रता को रखते हुये अनुशासन हीनता को दूर करने हेतु उपचार ढूढ़ते है और शिक्षक इसके लिये वस्तुस्थिति की जॉच करते हैं और फिर उसको दूर करने का प्रयास किया जाता है इसमें स्वतत्रता की

सीमा को निर्धारित करते हुये अनुशासन हीनता की पुनरावर्त्ति को रोकने का कार्य किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि स्वतंत्रता के साथ अनुशासन भी विद्यालय की आवश्यक मनोवर्त्ति है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

2– वैचारिक स्वतंत्रता से आप क्या समझते हैं?

.....

3– उपचारात्मक अनुशासन की आवश्यकता कब पड़ती है?

.....

12.5 अनुशासन की संकल्पना

ऊपर हम शिक्षा में स्वतंत्रता के विषय में पढ़ चुके हैं, अब हमें यह भी जानना आवश्यक है, कि शिक्षा में अनुशासन की क्या भूमिका है।

अनुशासन शब्द अंग्रेजी के 'डिसीप्लीन' शब्द का पर्याय है कि जो कि 'डिसाइपल' शब्द से बना है। जिसका अर्थ है– 'शिष्य'' शिष्य से आज्ञानुसरण की अपेक्षा की जाती है। हिन्दी ने संस्कृत की 'शास्' धातु से यह शब्द बना है। इसका अभिप्राय है नियमों का पालन, आज्ञानुसरण नियंत्रण। शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से अनुशासन की प्रक्रिया में नियमों का पालन, नियंत्रण आज्ञाकारिता आदि अर्थ निहित है। रायबर्न के अनुसार– *''एक विद्यालय में अनुशासन का अर्थ सामान्यतः व्यवस्था तथा कार्यों के सम्पादन में विधि नियमितता तथा आदेशों का अनुपालन होता है।'* यह परिभाषा अनुशासन के बाह्य स्वरूप को ही व्याख्यायित करती है।

अनुशासन की एक–दूसरी परिभाषा सर पर्सीनन ने निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया है–

''अनुशासन एक नियम के प्रति किसी भी भावनाओं और शक्ति के आत्मसपर्ण में निहित होता है। यह अव्यवस्था पर आरोपित किया जाता है, तथा अकौशल एवं निरथर्कता के स्थान पर कौशल एव मितव्ययता उत्पन्न करता है, हो सकता है हमारे स्वभाव का अंश इस नियंत्रण को प्रतिनियंत्रित करे किन्तु इसकी मान्यता अन्ततः

ऐच्छिक स्वीकृति पर होती है।"

जॉन डी0वी0 के अनुसार – *"विद्यालय में प्रदत्त सूचनाओं एवं छात्र चरित्र के विकास के मध्य की दूरी वस्तुतः इसलिये है कि विद्यालय एक सामाजिक संस्था नहीं बना पाया है।"*

उनके अनुसार– *"जिन कार्यों को करने से परिणाम या निष्कर्ष निकलते हैं उनको सामाजिक एवं सहयोगी ढंग से करने पर अपने ही रूप का अनुशासन उत्पन्न होता है।"*

डी0वी0 के अनुशासन – की अवधारणा सामाजिक स्वीकष्त पर आधारित है। यह आत्मानुशासन की ऐसी अवधारणा है जिस पर विद्यालयी वातावरण का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4– अनुशासन को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिये।

.....

12.6 अनुशासन सम्बंधी सिद्धान्त

स्वतंत्रता तभी तक सफलता प्रदान करती है, जब तक यह सुनियंत्रित हो। अनुशासन स्वतंत्रता को सार्थकता प्रदान करता है। विद्यालय तथा कक्षा में अध्यापक का कार्य अनुशासन स्थापित करना समझा जाता है। इसको स्थापित करना समझा जाता है। इसको स्थापित करने के तीन सिद्धान्त है। नारमन, मैकमन एवं एडम्स महोदय के अनुसार– दमनात्मक, प्रभावात्मक एवं मुख्यात्मक तीन सिद्धान्त है–

1–दमनात्मक सिद्धान्त – इसका तात्पर्य है कि अनुशासन स्थापित करने के लिये अध्यापक को पिटाई एवं शारीरिक दण्ड तथा बल आदि का प्रयोग करना चाहिये। इस सिद्धान्त के मानने वाले यह मानते हैं कि डण्डा हटाने पर बच्चा बिगड़ता है। अतः वे बच्चों पर अध्यापक को सब अधिकार देते हैं। इसमें कठोर व निर्मम दण्ड भी सम्मिलित है। यह सिद्धान्त बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति का परवाह नहीं करता परन्तु प्रकृतिवादी व यथार्थवादी शिक्षा दर्शन ने इस प्रकार के अनुशासन का विरोध किया है। कमेनियम में ऐसे स्कूलों को कसाईखाना कहा और ऐसे ढंग से अनुशासन स्थापित

करना अमनोवैज्ञानिक ठहराया। यह सिद्धान्त लोकतन्त्रात्मक शिक्षा व्यवस्था के विपरीत है। इस सिद्धान्त से अध्यापक की असफलता परिलक्षित होती है, क्योंकि शिक्षक अपनी शिक्षण एवं व्यवहार से विद्यार्थियों को प्रभावित कर अनुशासित नहीं कर पाता है। यह सिद्धान्त अब पुरातनयुगीन मानी जा रही है।

2–प्रभावात्मक सिद्धान्त –इस सिद्धान्त को शिक्षक के व्यक्तित्व के प्रभाव पर आधारित किया है। अध्यापक एवं विद्यार्थियों के मध्य एक आदर्श नैतिक सम्बंध स्थापित किया जाता है। इसमें शिक्षकों से उच्च कोटि का आचरण एवं व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। हमारे देश में वैदिकालीन शिक्षा में शिक्षक (गुरू) अपने आचरण एवं क्रियकलापों से ही छात्रों को अनुशासित रखकर अनुकरण करवाते थे। इससे गुरू–शिष्य के मध्य मधुर सम्बंध स्थापित होते थे। इसे मध्यमार्ग माना जाता है, परन्तु यह सत्य है कि शिक्षक प्रभाव का विद्यार्थियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा है यह कहा नहीं जा सकता कभी–कभी विद्यार्थी अपनी निजता खो देते हैं। इन बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

3–मुक्त्यात्मक सिद्धान्त – इस सिद्धान्त आधार बालक की स्वतंत्र प्रकषति है। प्रकषतिवादी शिक्षाशास्त्री इसके प्रबल समर्थक है। रूसो बर्डस्वर्थ, हक्सले, माण्डेसरी और फ्राबेल भी इसके प्रयोग के लिये समर्थन देते हैं। बर्डस्वर्थ ने माना है कि बालक में अपने पर नियंत्रण रखने के सभी गुण है और हमें उसको स्वाभाविक वातावरण में प्रतिक्रिया करने के लिये अभिप्रेरित करना चाहिये। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था से शारीरिक दण्ड पर प्रतिबंध इस दर्शन का ही परिणाम है। यह माना जाता है कि

- स्वतत्रंता बालक को स्वाभाविक उन्नति का अवसर देती है।
- स्वतंत्रता संवेगों एवं भावनाओं को सुदष्ढ़ बनाकर मानसिक विकषति को रोकता है।
- स्वतंत्रता से बच्चों को संतुलित मानसिक स्वास्थ्य मिलता है।
- यह बच्चों में आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता उत्पन्न करता है।
- यह बच्चों में सही एंव गलत का अन्तर देखने का दृष्टिकोणउत्पन्न करता है, क्योंकि गलत उसे कष्ट देता है, जिससे वह सीख जाता है।

इस सिद्धान्त से कुछ कमियां आयी जैसे– अधिक स्वतंतत्रा से स्वच्छन्दता, स्वेच्छाचारिता एवं नियम उल्लंघन को अभिवषत्ति अनुभव की कमी, अपरिपक्वता से उचित आदर्शों के निर्माण में कठिनाई देखने को मिली।

इन तीनों आर्दशों का अपना–अपना महत्व परिलक्षित होता है। अति से बात

बिगड़ती हैं। हम कोई मध्यम भाग निकाले जिससे कि उसमें अनुशासन के साथ स्वतंत्रता के उचित प्रयोग की प्रवर्त्ति उत्पन्न हो सके। रॉस ने इस सम्बंध में अपने विचार देते हुये लिखा है–*"सच्ची स्वतंत्रता के लिये नैतिक एवं सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता है इसके लिये प्रभाव की विधि सर्वाधिक उपर्युक्त है एवं वांछनीय है इससे सच्चा अनुशासन स्थापित होता है।"* इस प्रकार हम प्रभावात्मक अनुशासन को मूल मानकर मुक्त्यात्मक अनुशासन को क्रियशीलत करें और दमनात्मक अनुशासन की मात्र छाया ही दिखयी दे।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5– प्रभावात्मक अनुशासन है से क्या अभिप्राय है?

.....

6– मुक्त्यात्मक अनुशासन के क्या गुण है?

.....

12.7 दार्शनिक दृष्टिकोण में अनुशासन

विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों ने अनुशासन को अपने अपने दृष्टिकोणसे देखा है क्योंकि अनुशासन का प्रभाव सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था के कई पक्षों पर परिलक्षित होता है, जैसे कि विद्यार्थी एवं शिक्षकों की संकल्पना एवं गुण, इनके सम्बंध, विद्यालय वातावरण तथा शिक्षण विधियां इत्यादि। इस रूप में हम सबसे पहले आदर्शवाद को उद्धष्त करे जिसमें कठोर अनुशासन की संकल्पना की गयी है। इनके अनुसर बालक का पूर्ण विकास अनुशासन में रहने पर ही होगा। अनुशासन में रहकर ही वह आत्मानुभूति या आध्यात्मिकता को प्राप्त कर सकता है। फ्राबेल ने लिखा है–*"बालक की रूचि का ज्ञान प्राप्त कर प्रेम व समानुभूति व्यक्ति करके उस पर नियंत्रण रखा जाना चाहिये।"* आदर्शवादी उचित प्रकार से निर्देशित स्वतंत्रता के वातावरण में कठोर अनुशासन के पक्षध र है।

प्रकषतिवादी वाह्य शक्ति पर आधारित अनुशासन विश्वास नहीं करते। रूसो ने स्पष्ट कहा है कि –*"बच्चों को कभी दण्ड नहीं दिया जाना चाहिये स्वतंत्रता न कि शक्ति सबसे अच्छी चीज है और अनुशासन सदैव बालकों की त्रुटियों के प्रांकषतिक*

परिणामों द्वारा ही होना चाहिये।" यदि अनुशासन स्वीकृति और अनुभूति में होती है, तो निश्चय ही यह अन्तःप्रेरित और आत्मप्रेरित होगी।

यथार्थवादी मानते हैं कि प्रकृति के नियमानुसार प्रत्येक प्राणी को अपनी इच्छाओं को संतुष्ट करके जीवन का सुख प्राप्त करना चाहिये परन्तु सामाजिक नियंत्रण आवश्यक है। यथार्थवादी प्रभावात्मक अनुशासन के सिद्धान्त को भी स्वीकार करता है। इसके अनुसार सामाजिक सम्पर्क के प्रभाव से न कि प्राकृतिक परिणामों से अनुशासन स्थापित होता है।

वहीं दूसरे ओर प्रयोगवादी इस बात पर बल देता है कि यदि समुदाय के लोग किसी आदर्श व तथ्य की परीक्षण उपयुक्त पाते हैं तो अवश्य ग्रहण करें और पालन करें और यह उन्हें स्वयं अनुशासित कर देगा इसका तात्पर्य यह है कि वे भी प्रभावात्मक अनुशासन को मानते हैं, परन्तु उनका कुछ झुकाव मुक्तिवादी भी है।

अगर हम सम्वेत रूप से देखें तो रस्क ने लिखा है– *"प्रकृतिवादी दर्शनशास्त्र में नैतिक मानदण्डों की प्रमाणिकता को अस्वीकार करके, बालक की जन्मजात शक्तियों को मनमाने ढंग से प्रकट होने के लिये अवसर प्रदान करना है। प्रयोजनवादी ऐसे मानदण्डों को सामान्य रूप से अस्वीकार करते हुये छात्रों के आचरण को सामाजिक स्वीकृति पर ही नियंत्रित करने में आस्था रखता है वहीं दूसरी ओर आदर्शवादी मानव व्यवहार को नैतिक आदर्शों के अभाव में अपूर्ण मानता है और बालकों को नैतिक मानदण्डों को स्वीकार करता है और धीरे–धीरे आचरण के अंग बनाने के लिये प्रशिक्षण प्रदान करना कर्तव्य मानता है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7–कौन सा दर्शन निर्देशित स्वतंत्रता के साथ कठोर अनुशासन का पक्षधर है?

.....

8– प्रकृतिवादी कैसे "अनुशासन" का समर्थन करते हैं ?

.....

12.8 अनुशासनहीनता का कारण

जैसा कि हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि अनुशासन स्वतंत्रता को सार्थता प्रदान करती है और विद्यालीय वातावरण को अराजकता के स्थान पर सुव्यवस्था देती है जो

पूर्व में यह जानने की आवश्यकता है कि अनुशासनहीनता के कारक कौन से है। हम इनको समवेत रूप से विशेष विन्दुओं के अन्तर्गत देखेंगे–

1. **विद्यालयों का अनुपयुक्त वातावरण–** वहुधा विद्यालयों का वातावरण भी अनुशासनहीनता का प्रमुख कारक है।

- शिक्षा प्रणाली का उद्देश्यपरक न होना।
- विद्यालयों/महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों की शिथिलता व उदासीनता।
- अध्यापकों की उदासीनता व रूचि व प्रेरणा में कमी।
- शिक्षण विधियों का स्तरानुकुल, रोचक, उपयोगी व प्रभावी न होना।
- कक्षाओं में अत्यधिक छात्रों की संख्या के कारण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का प्रभावी न होना।
- विद्यार्थियों के विभिन्न शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर उचित निर्देशन न दिया जाना।
- समय–सारिणी के निर्धारण में विद्यार्थियों की आवश्यकता, रूचि थकान एवं मनोरंजन जैसे तथ्यों को ध्यान न दिया जाना।
- परीक्षा प्रणाली में पारदर्शिता की कमी के कारण उचित मूल्यांकन न कर पाने के कारण छात्रों में असन्तोष।
- शिक्षण संस्थाओं में सामुदायिक क्रियाकलापों को महत्व नहीं दिये जाने से विद्यार्थियों का समाज से अलगाव।
- विद्यार्थियों में नैतिक शिक्षा का अभाव होने के कारण उचित नैतिकता का अभाव।

2. **दूषित सामाजिक वातावरण–** सामाजिक वातावरण बालक के सम्पूर्ण क्रियाकलाप को प्रभावित करते हैं और यह भी विद्यार्थियो में अनुशासन की भावना को प्रभावित करते हैं।

- समाज में व्याप्त दोष (जातिगत भेदभाव, धार्मिक कट्टरता एवं क्षेत्रवाद)।
- अश्लील साहित्य एंव चित्र का प्रचार–प्रसार।
- बढ़ती जनसंख्या के कारण बिलगाव।
- सामाजिक आदर्शों के प्रति विरक्तता।
- आदर्श, पड़ोस, साथियों का अभाव।

3–**अनुपयुक्त पारिवारिक वातावरण–** बच्चे अपने परिवार से वंशानुक्रम के

गुण तथा पारिवारिक वातावरण के प्रभाव की उपज होते हैं। परिवार का वातावरण अनुपयुक्त हो तो उनका सम्पूर्ण जीवन प्रभावित होता है। परिवार के निम्न कारण अनुशासनहीनता को जन्म देता है।

- पारिवारिक कलह (माता–पिता, दादा–दादी, बच्चों एवं अन्य) सम्बन्धों के मध्यम मधुर सम्बधं का अभाव।
- माता–पिता के द्वारा अपने बच्चों को पूरा ध्यान न दिया जाना, उपेक्षा करना।
- परिवार की आर्थिक व सामाजिक स्थिति सम्मान जनक न होना।
- विद्यार्थियों के प्रत्येक व्यवहार के प्रति अधिक उदारता का नकारात्मक प्रभाव।
- बच्चों पर अनावश्यक नियंत्रण से कुण्ठा की उपज।
- परिवार में लैंगिक भेदभाव।
- घर में स्थान की उचित व्यवस्था की कमी।

4– **शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक कारण**– विशिष्ठ आयु में निम्न शारीरिक व मनोवैज्ञानिक स्थितिया अनुशासनहीनता का कारण होती है।

- किशोरावस्था का असंतुलित विकास।
- शारीरिक कमजोरी (लम्बी बिमारी, जन्मजात)।
- जन्मजात गलत व्यवहार की आदत।
- व्यवहार के शोधन एवं मागान्तीकरण एवं परिमार्जन हेतु उपयुक्त परिस्थितियों का अभाव।

भावनाओं एवं विचारों को उचित प्रश्रय न मिलने से कुण्ठा की उत्पत्ति।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

9– पारिवारिक वातावरण विद्यार्थियों को अनुशासनहीन कैसे बना देता है?

.....

10– मनोवैज्ञानिक सहयोग बच्चों को कौन देता है?

.....

12.9 अनुशासन स्थापन के उपाय

शिक्षण संस्थाओं में अनुशासन स्थापन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। अनुशासन किसी भी संस्था के सकारात्मक उन्नति हेतु आवश्यक है। सर्वप्रथम यह जाना जाये कि आखिर अनुशासन की आवश्यकता शिक्षण संस्था में क्यों होती है इस पर भी विचार किया जाये–

- अनुशासन स्वतंत्रता को सार्थकता प्रदान करता है।
- यह शिक्षण संस्थाओं में आवाजकता के स्थान पर सुव्यवस्थ लाता है।
- अनुशासन से संस्थाओं का वातावरण आकर्षक एवं प्रभावी बनाता है।
- अनुशासन शिक्षण सम्बंधी उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होता है।
- यह विद्यार्थियों के नियमों एवं परिनियमों की पालन करते रहने प्रवष्त्त करता है।
- अनुशासन विद्यार्थियों के मध्य एवं शिक्षकों के मध्य सम्बंधों को व्यवस्थित करता है।
- अनुशासन विद्यालय के जीवन को सुसंस्कष्त बनाता है।
- अनुशासन से विद्यालय कोर्स समय में ही समाप्त करने में सहायता मिलती है, और समस्त शिक्षण प्रक्रिया सहज हो जाती हैं।
- अनुशासन से विद्यालय वातावरण में स्वतः सष्जन की शक्तियां प्रस्फुटित होती है।

अनुशासन स्थापन के उपाय

1– सकारात्मक साधन 2– नकारात्मक साधन

सकारात्मक साधन– इन साधनों के अन्तर्गत पुरस्कार वितरण खेलकूद का आयोजन, पाठ्य सहगामी, क्रिया कलापों का आयोजन, स्वस्थ विद्यालयी वातावरण, छात्र स्वानुशासन, नैतिक शिक्षा, अवकाश के क्षणो का सदुपयोग।

अ–पुरस्कार वितरण अच्छे कार्यों को सम्मानित करने और बुरे कार्यों एवं प्रवष्त्तियों को रोकने का कार्य करता है। इसीलिये विद्यालयों में अधिक अनुशासन में रहने वाले अधिक उपस्थित वाले, अच्छे आचरण, स्वच्छ रहने वाले, साहस पूर्ण कार्य करने वाले और विद्यालय के क्रियाकलापों में सहयोग करने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहन दिया जाये तो अन्य विद्यार्थी भी सद्कार्यों की ओर प्रवष्त्त होगे। राबिन्स के अनुसार– वास्तविक समस्या कष्त्रिम पुरस्कारों को समाप्त करने की नहीं, अपितु उन्हें इस प्रकार साधन बनाने एवं प्रदान करने का है जिसमें कि पुरस्कार प्राप्त करने के लिये

छात्रों के उच्च उद्देश्यों को प्रोत्साहित किया जा सके।

ब– पाठ्यसहगामी क्रियाकलापों का आयोजन– शिक्षण संस्थाओं में शिक्षण क्रियाकलापों के अतिरिक्त शिक्षणेत्तर क्रियाकलापों का आयोजन भी करना चाहिये। शिक्षणेत्तर क्रियाकलापों के आयोजन के निम्न प्रभाव पड़ते हैं और वे विद्यालयी वातावरण को अनुशासित रखते हैं।

शिक्षण संस्थाओं के वातावरण को रोचक एवं सरस बनाते हैं, तथा शिक्षण वातावरण के नीरसता को कम करते हैं।

इन क्रियाकलापों में प्रतिभाग से विद्यार्थियों में आपसकी समझ, सहयोग, परिश्रम, धैर्य, स्वस्थ प्रतियोगिता, अनुशासन, नियमबद्धता का विकास होता है। जिससे सामाजिक जागरूकता एवं बोध उत्पन्न होता है।

इन क्रियाकलापों के माध्यम से विद्यार्थियों को अपनी इच्छाओं एवं दबे संवेगों को प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है। यह उनके मन को कुछ समय के लिये स्वच्छ व निर्मल बना देते हैं।

- ये क्रियाकलाप वातावरण को आनन्दित, और वातावरण की कठोरता समाप्त होने से विद्यार्थी कुछ समय तक मन लगाकर अध्ययन कार्य करते हैं, जिससे अनुशासन स्थापित होता है।
- ये क्रियाकलाप विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के मध्य सम्पर्क बढ़ा अच्छी समझ विकसित करते हैं।

स–स्वस्थ वातावरण का निर्माण – विद्यालय में शिक्षकों एवं शैक्षिक प्रशासन को स्वरूप वातावरण का निर्माण करना चाहिये इसके लिये आवश्यक होगा कि –

- सभी शिक्षकों को मध्य दायित्वों का बंटवारा समान रूप से किया जाये।
- विद्यार्थियों एवं अध्यापकों को संस्था के नीतियों में आवश्यक भागीदार बनाया जाये।
- विद्यार्थियों एवं अध्यापकों की समस्याओं का यथोचित समाधान किया जाये।
- शिक्षण संस्थाओं में आदेशानुपालन की उचित परम्परा का विकास किया जाना चाहिये जिससे कि अनुशासन की उचित व्यवस्था हो।
- संस्था के शिक्षकों कर्मचारियों एवं विद्यार्थियों के हितों को ध्यान में रखते हुये शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति को ही मुख्य केन्द्र बिन्दु माना जाये।
- विद्यालयीय पाठ्यक्रम व्यवस्थित एवं रोचक बनाया जाये जिससे कि संस्था में

अशान्ति न फैले।

द– प्रभावी नैतिक शिक्षा– अनुशासन की प्रवर्त्ति की उत्पत्ति का मूल आधार नैतिकता की भावना का उद्भव होती है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यालय में ऐसे वातावरण का सृजन हो जिसमें नैतिकता एवं मूल्यों की उत्पत्ति विद्यार्थियों में एवं शिक्षकों में हो सके इसके लिये सभी धर्मों की अच्छे आदर्शों को विद्यार्थियों के समक्ष रखे जाये। शैक्षिक मूल्यों के विकास हेतु नैतिक शिक्षा का एक या दो घण्टे सप्ताह में रखे जाये। पुस्तकालयों में आदर्श एवं नैतिक मूल्यों से सम्बंधित पुस्तकें रखी जाये। प्रतिदिन प्रार्थना प्रातः करवायी जाये। शिक्षकों में उच्च आदर्श चरित्र की प्रस्तुति की प्रवर्त्ति हो जिसका छात्र अनुकरण करे।

क. शिक्षक अभिभावक सहयोग– शिक्षकों एवं अभिभावकों के मध्य सहयोग भी विद्यालय अनुशासन स्थापन में आवश्यक भूमिका निभाता है। शिक्षण संस्थाओं में प्रभावी शिक्षक अभिभावक संघ बनाया जाना चाहिये जो कि विद्यार्थी एवं शिक्षण संस्थाओं के उचित विकास हेतु समवेत रूप से कार्य कर सके। शिक्षक अभिभावक संघ विद्यार्थियों के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, व्यवहारगत, उपलब्धि एवं आचरण सम्बंधी समस्याओं का तत्काल हल मिलजुलकर निकाल लेते है। जिससे कि विद्यार्थियों का संतुलित विकास हो सके।

ख. छात्र स्वानुशासन – छात्र अनुशासन एक ऐसी परम्परा है जिसमें कि विद्यार्थी कुछ क्षेत्रों में विद्यालयी क्रियाओं में भागीदारी निभाकर संचालन करते है, जिससे कि विद्यार्थी अनुशासन की प्रवर्त्ति को उत्पन्न करने के लिये स्वयं प्रेरित हो और अन्य को भी प्रवर्त्त करें। इससे विद्यार्थियों में आत्म नियंत्रण एवं आत्म निर्णय की योग्यता उत्पन्न होती है, यह नेतृत्व के गुणों को प्रस्फुटित करता है, यह नैतिकता का व्यावहारिक प्रशिक्षण है। विद्यार्थी विद्यालय में विकास हेतु स्वाभाविक परिस्थितियों के निर्माण में सहायक होते हैं। यह विद्यार्थियों में सामाजिक के गुणों का विकास करता है।

ग. नकारात्मक साधन के रूप में दण्ड – दण्ड दमनात्मक अनुशासन को स्थापित करने का साधन के रूप में है। दमनात्मक अनुशासन को अमनोवैज्ञानिक कहा गया है। इसका प्रभाव तात्कालिक होता है परन्तु अधिकांशतः दीर्घकालिक नहीं होता है। दण्ड का प्रयोग अधिकांश नियम सिद्धान्तों पर किया जाता है।

- **प्रतिकारात्मक सिद्धान्त–** इस सिद्धान्त का अर्थ है, जैसा किया है उसके साथ वैसा ही किया जाये। जिससे कि वह ऐसा फिर न करें।
- **प्रतिरक्षात्मक सिद्धान्त–** इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह बात का ध्यान रखा जाये कि वह पुनः उस कार्य की पुनरावर्त्ति न करे।

- **सुधारात्मक सिद्धान्त–** इस सिद्धान्त का आशय है कि न केवल अपराध बोध हो वरन् वह अपराधी पुनः इस ओर प्रवष्त्त न हो इस आशय से दण्ड देना कि वह सुधर जाये।
- **उदाहरणात्मक सिद्धान्त–** अपराध पर दण्ड देने का प्रयोजन न केवल अपराध की अनुभूति कराना वरन् दूसरों को इसके परिणामों से उदाहरण दें।
- **अवरोधात्मक सिद्धान्त–** यह दण्ड विश्लेषणात्मक सिद्धान्त है जिसके अन्तर्गत अपराध एवं उसके द्वारा किये अपराध के कारणों की खोज कर उनका विश्लेषण का निदान खोजा जाये।

आधुनिक शिक्षण अनुशासन स्थापन के सकारात्मक साधनों को अधिक महत्व देता है, विद्यालयों में दण्ड के प्रयोग को प्रतिबंधित किया गया है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरो से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11– अनुशासन से विद्यालय के वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?

.....

12– शिक्षण संस्थाओं में अनुशासनहीनता के कोई चार कारण बताओ?

.....

13–शिक्षण संस्थांओं में पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों की क्या उपयोगिता है?

.....

12.10 सारांश

स्वतंत्रता एंव अनुशासन दोनो ही शिक्षा व्यवस्था का महत्वपूर्ण पक्ष है। स्वतंत्रता एवं अनुशासन दोनो की ही शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यकता है। स्वतंत्रता अधिगम एंव विकास की स्वाभाविक प्रवृत्ति उत्पन्न करता है तो अनुशासन भी अधिगम एवं विकास के लिये अति आवश्यक है और प्रभावी अधिगम एवं संतुलित विकास संस्था में अनुशासन को स्थापन से ही सम्भव है परन्तु दोनों को शिक्षा तंत्र में प्रभावी बनाने हेतु मुख्य भूमिका विचारशीलता की है, कि हमें हर पहलु में सोचना होगा

और यह भी देखना होगा कि स्वतंत्रता एवं अनुशासन किस सीमा तक कैसे और क्यों शिक्षण संस्थाओं में प्रतिस्थापित किये जायें।

12.11 चर्चा के बिन्दु

आजकल शिक्षण संस्थान अनुशासनहीनता की समस्या से वर्ष भर जूझते है और संस्थान में प्रशासन अपना पूरा समय व शक्ति अनुशासन कायम करने में व्यतीत कर देते हैं। अनुशासनहीनता के कारणों एवं निदानों का विस्तार से चर्चा कीजिये।

12.12 अभ्यास कार्य

1— 'स्वतंत्रता' के शैक्षिक निहितार्थों पर प्रकाश डालिये।

2— अनुशासन स्थापन हेतु सकारात्मक एवं नकारात्मक उपायों की विस्तार से चर्चा कीजिये।

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. मूल शब्द तन्त्र, स्व उपसर्ग तथा त प्रत्यय, अर्थ अपने नियमों एवं परिनियमों में आबद्ध मुक्ति
2. स्वतंत्रता, आत्मनिर्भय, आत्मविश्वास एवं अनुशासन, स्व–संतोष विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता।
3. अनुशासनहीनता को रोकने व उसकी पुनरावर्त्ति न हो इसके लिये ।
4. नियमों व परिनियमों को स्वेच्छा से मानना।
5. व्यक्तित्व के प्रभाव से विद्यार्थी को अनुकरण कर अनुशासन।
6. प्राकर्षतिक नियमों द्वारा।
7. आदर्शवाद दर्शन।
8. प्राकर्षतिक नियमों एवं स्वाभाविक परिस्थिति द्वारा।
9. मनोवैज्ञानिक सहयोग न देकर, शारीरिक व मानसिक विकास की ।
10. परिवार एवं विद्यालय।
11. प्रभावी आकर्षक एवं अध्ययन– अध्यापन हेतु उपयोगी।
12. पारिवारिक कारण, शारीरिक कारण, संवेगात्मक कारण, शैक्षिक कारण।
13. शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास एवं विद्यालयी वातावरण को सरस, बोधक एवं नवीनता उत्पन्न करने हेतु।

12.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें–

के0 वशिष्ठ एवं बी0एम0 दाधिच (1995) : विद्यालय प्रबंध, यूनिक ट्रेडर्स 250, चौड़ा रास्ता, जयपुर।

चतुर्भुज शर्मा : छात्र एवं दण्ड व्यवस्था

Smith W.R : Construction School Disciplinse

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

4

शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

इकाई-13 5
शिक्षा और समाज

इकाई-14 17
शिक्षा और राष्ट्रीयता

इकाई-15 33
शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीयता

इकाई-16 46
शिक्षा के विज्ञान

MAED-01- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

खण्ड-1 शिक्षा के दार्शनिक आधार

इकाई-1 दर्शन का स्वरूप एवं विषय क्षेत्र

इकाई-2 शिक्षा की अवधारणा एवं कार्य

इकाई-3 शिक्षा और दर्शन के बीच सम्बन्ध

इकाई-4 शिक्षा दर्शन का स्वरूप एवं आवश्यकता

खण्ड-2 शिक्षा दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय

इकाई-5 प्रकृतिवाद

इकाई-6 आदर्शवाद

इकाई-7 प्रयोजनवाद

इकाई-8 यथार्थवाद तथा अस्तित्ववाद

खण्ड-3 शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

इकाई-9 धर्म और शिक्षा

इकाई-10 जनतंत्र और शिक्षा

इकाई-11 शैक्षिक मूल्य

इकाई-12 अनुशासन और स्वतंत्रता

खण्ड-4 शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

इकाई-13 शिक्षा और समाज

इकाई-14 शिक्षा और राष्ट्रीयता

इकाई-15 शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीयता

इकाई-16 शिक्षा के विज्ञान

खण्ड – 4 शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार

खण्ड परिचय

हमने खण्ड 1, 2, 3 में शिक्षा के दार्शनिक आधार के अन्तर्गत दार्शनिक स्वरूप, विषय क्षेत्र, शिक्षा की अवधारणा एवं कार्य तथा शिक्षा और दर्शन के मध्य सम्बन्ध के विषय में चर्चा की गयी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों प्रकृतिवाद, आदर्शवाद, प्रयोजनवाद, एवं यथार्थवाद तथा अस्तित्ववादी प्रमुख विचारधाराओं, विशेषताओं व शिक्षा के सम्बन्ध में इनके विचारों की जानकारी दी गयी है। यह भी जाना गया की धर्म, जनतन्त्र एवं शैक्षिक मूल्यों के व्यवस्थापन हेतु शिक्षा का स्वरूप कैसा हो और शिक्षा में अनुशासन व स्वतन्त्रता का अपना महत्व है। शिक्षा द्वारा समाज राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता तथा विज्ञान के विकास हेतु सुझाव दिये गयें है। इस खण्ड में चार इकाइयां अर्थात इकाई 13 से 16 तक सम्मिलित है।

इकाई–13 में शिक्षा और समाज के अन्योन्याश्रितता, सम्बंध एवं एक–दूसरे पर प्रभावों की चर्चा की गयी है।

इकाई–14 में शिक्षा और राष्ट्रीयता के अन्तर्गत राष्ट्रीयता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये इसकी आवश्यकता की चर्चा की गयी है, इस इकाई में राष्ट्रीयता के विकास हेतु शिक्षा के स्वरूप को प्रस्तुत करते हुये विभिन्न आयोगों के द्वारा राष्ट्रीयता हेतु की गयी सिफारिशों की भी चर्चा की गयी है।

इकाई–15 में शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीयता में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के उद्भव के कारणों के साथ इकाई प्रचार–प्रसार हेतु शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप के प्रस्तुत किया गया है।

इकाई–16 में शिक्षा में विज्ञान में वैज्ञानिक प्रवृत्ति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये विकास हेतु शिक्षा में विज्ञान विषय के प्रभावकारी शिक्षण हेतु आवश्यक कदम उठाये जाने हेतु भी सुझाव भी दिये हैं।

इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- समाज और शिक्षा की अन्योन्याश्रितता, प्रभाव एवं सम्बन्धों की विवेचना कर सकेंगे।
- राष्ट्रीयता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये शिक्षा व्यवस्था में इसके व्यवस्थापन हेतु आवश्यक उपाय बता सकेंगे।
- आधुनिक भारत एवं विश्व में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना की आवश्यकता प्रकाश डालते हुये इसके शिक्षा में विकास हेतु आवश्यक उपायों को सुझा सकेंगे।
- विज्ञान विषयों के अध्ययन की आवश्यकता को बता सकेंगे।
- शिक्षा द्वारा वैज्ञानिक प्रवृत्ति के विकास हेतु आवश्यक उपयोग की व्याख्या कर सकेंगे। आशा है यह खण्ड आपको रोचक एवं बोधगम्य होगा।

इकाई –13 शिक्षा और समाज

संरचना–

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 समाज की संकल्पना

13.4 मानव एवं समाज के सम्बन्ध के सिद्धान्म

13.5 शिक्षा का समाज में स्थान

13.6 समाज के प्रमुख तत्व

13.7 समाज का शिक्षा पर प्रभाव

13.8 शिक्षा का समाज पर प्रभाव

13.9 सारांश

13.10 चर्चा के बिन्दु

13.11 अभ्यास कार्य

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.13 कुछ उपयोगी पुस्तके

13.1 प्रस्तावना

आदिकाल में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं अस्तित्व के लिये मनुष्य ने समाज की स्थापना की, और अपने सामाजिक सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक परम्पराओं के हस्तांतरण हेतु शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। फिर कालांतर में शिक्षा समाज के स्वरूप एवं ढांचे पर प्रभाव डालकर परिवर्तन विकास का आधार बनी और फिर समाज के स्वरूप एवं प्रस्थिति ने शिक्षा को भी प्रभावित किया। मानव के विकास की कहानी के साथ शिक्षा भी जुड़ी है। इस इकाई में हम समाज और शिक्षा की अन्योन्याश्रिता के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- समाज एवं शिक्षा की संकल्पना स्पष्ट कर सकेंगे।
- समाज के तत्वों को बता सकेंगे।

- शिक्षा व समाज के सम्बंध का वर्णन कर सकेंगे।
- समाज पर शिक्षा के प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे।
- शिक्षा पर समाज के प्रभाव को अख्यायित कर सकेंगे।

13.3 समाज की संकल्पना

मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। मनुष्य ने अपने लम्बे इतिहास में एक संगठन का निर्माण किया है। वह ज्यों–ज्यों मस्तिष्क जैसी अमूल्य शक्ति का प्रयोग करता गया, उसकी जीवन पद्धति बदलती गयी और जीवन पद्धतियों के बदलने से आवश्यकताओं में परिवर्तन हुआ और इन आवश्यकताओं ने मनुष्य को एक सूत्र में बाधना प्रारम्भ किया और इस बंधन से संगठन बने और यही संगठन समाज कहलाये और मनुष्य इन्हीं संगठनों का अंग बनता चला गया। बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने मानव को विभिन्न समूहों एवं व्यवसायों को अपनाते हुये विभक्त करते गये और मनुष्य की परस्पर निर्भरता बढ़ी और इसने मजबूत सामाजिक बंधनों को जन्म दिया।

वर्तमान सभ्यता मे मानव का समाज के साथ वही घनिष्ठ सम्बंध हो गया है और शरीर में शरीर के किसी अवयव का होता है। विलियम ईगर महोदय का कथन है– *मानव स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है, इसीलिये उसने बहुत वर्षों के अनुभव से यह सीख लिया है कि उसके व्यक्तित्व तथा सामूहिक कार्यों का सम्यक् विकास सामाजिक जीवन द्वारा ही सम्भव है।* रेमण्ट महोदय का कथन है कि– *एकांकी जीवन कोरी कल्पना है।* शिक्षा और समाज के सम्बंध को समझने के लिये इसके अर्थ को समझना आवश्यक है।

❖ **शाब्दिक अर्थ** – समाज शब्द संस्कृत के दो शब्दों सम् एवं अज से बना है। सम् का अर्थ है इक्ट्ठा व एक साथ अज का अर्थ है साथ रहना। इसका अभिप्राय है कि समाज शब्द का अर्थ हुआ एक साथ रहने वाला समूह।

❖ **समाज की परिभाषाये–**

- एडम स्मिथ– *मनुष्य ने पारस्परिक लाभ के निमित्त जो कषत्रिम उपाय किया है वह समाज है।*
- डॉ0 जेम्स– *मनुष्य के शान्तिपूर्ण सम्बन्धों की अवस्था का नाम समाज है।*
- प्रो0 गिडिंग्स– *समाज स्वयं एक संघ है, यह एक संगठन है और व्यवहारों का योग है, जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक–दूसरे से सम्बंधित है।*
- प्रो0 मैकाइवर– *समाज का अर्थ मानव द्वारा स्थापित ऐसे सम्बंधों से है, जिन्हें स्थापित करने के लिये उसे विवश होना पड़ता है।*

- ओटवे के अनुसार– *समाज एक प्रकार का समुदाय या समुदाय का भाग है, जिसके सदस्यों को अपने जीवन की विधि की समाजिक चेतना होती है और जिसमें सामान्य उद्देश्यों और मूल्यों के कारण एकता होती है। ये किसी–किसी संगठित ढंग से एक साथ रहने का प्रयास करते हैं किसी भी समाज के सदस्यों की अपने बच्चों का पालन–पोषण करने और शिक्षा देने की निश्चित विधियां होती है।*

संक्षेप में यह कहा जा सकता है, समाज एक उद्देश्यपूर्ण समूह होता है, जो किसी एक क्षेत्र में बनता है, उसके सदस्य एकत्व एवं अपनत्व में बंधे होते हैं।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1– समाज को परिभाषित कीजिये।

.....

2– समाज क्यों निर्मित हुये ?

.....

13.4 मानव एवं समाज के सम्बन्ध के प्रमुख सिद्धान्त

मानव एवं समाज अन्योन्याश्रित है पर समाजशास्त्री इस सम्बंध के विषय में पृथक–पृथक विचार रखते हैं, इनके विचारों को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. सामाजिक संविदा का सिद्धान्त–यह अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को मानने वाले महाभारत कौटिल्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीतिसार, जैन और बौद्ध साहित्य आदि सभी इस सिद्धान्त का समर्थन करते हैं।

आधुनिक पाश्चात्य् दार्शनिक में टामस हाब्स, लाक और रूसो इस मत का प्रबल समर्थक है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज नैसर्गिक नहीं बल्कि एक कषत्रिम संस्था है। मनुष्यों ने अपने स्वार्थ के लिये समाज का नियंत्रण स्वीकार किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार एकांकी जीवन के कठिनाइयों एवं दबंगो के दबाव को झेलते हुये व्यक्ति ने स्वयं को संगठित कर लिया और इन संगठनों को समाज की संज्ञा दी गयी। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री अरस्तु के कथन को मैकाइवर व पेज ने अपनी रचना सोसाइटी में लिखा कि– *मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य सुरक्षा आराम, पोषण, शिक्षा, उपकरण, अवसर तथा उन विभिन्न सेवाओं के लिये जिन्हें समाज उपलब्ध कराता है, समाज पर निर्भर है।*

2. **समाज का अवयवी सिद्धान्त**– इस सिद्धान्त का अन्तर्निहित अर्थ है समाज एक जीवित शरीर है और मनुष्य उसका अंग है। इस सिद्धान्त के समर्थक मानते हैं कि समाज विभिन्न अंगों में विभाजित है और सभी अंग अपने प्रकार्यों के माध्यम से समाज को जीवन व गति प्रदान करते हैं।

समाज रूपी शरीर में व्यक्ति कोशिका की तरह है, और इसके अन्य अवयव समितियां तथा संस्थायें है। वास्तव में यह सिद्धान्त आज के युग में प्रासांगिक है इसके अनुसार समाज मानव के ऊपर है, यह बात सच है कि मनुष्य समाज का अंग है, और समाज को शरीर मानकर और मनुष्य को कोशिका मानकर मानव अस्तित्व को स्वीकारना ठीक नहीं है। सत्यकेतु विद्यलंकार ने स्पष्ट किया है कि *समाज हमारे स्वभाव में है अतः स्थायित्व उसका स्वभाविक गुण है। शरीर सिद्धान्त के अनुसार समाज में स्वतंत्र रूप से व्यक्तियों की कोई स्थिति नहीं है, जिसे स्वीकारना भी सम्भव नहीं है।*

3. **मनुष्य एवं समाज में आश्रितता**– व्यक्ति व समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। व्यक्ति मिलकर समाज का निर्माण करते हैं और समाज व्यक्ति के अस्तित्व एवं आवश्यकता को पूरा करता है, ये दोनों परस्पर आश्रित हैं। व्यक्तियों के योग से समाज उत्पन्न होता है। हैवी हर्स्ट तथा न्यू गार्टन ने अपनी पुस्तक सोसाइटी एण्ड एजुकेशन में समाजीकरण की व्याख्या करते हुये लिखा है *सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से बच्चे अपने समाज के स्वीकृत ढंगों को सीखते है, और इन ढंगों को अपने व्यक्तित्व का एक अंग बना देते हैं।*

सामाजिक संस्था का सदस्य होने के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं अस्तित्व दोनो सुरक्षित रहता है, और व्यक्ति का स्व समाज के स्व के अधीन हो जाता है। स्वस्थ समाज वही है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास करता है समाज में स्वतंत्रता व्यक्ति की उन्नति का आधार बनता है। समाज और व्यक्ति के मध्य अक्सर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। उसका कारण व्यक्ति की इच्छायें एवं समाज की उससे अपेक्षाये होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3–समाज के अवयवी सिद्धान्त की धारण मनुष्य एवं समाज के विषय में क्या है?

.....

13.5 समाज के प्रमुख तत्व

समाज के निर्माण के कई तत्व है, इसे जानने के पश्चात् ही समाज का अर्थ पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगा–

1– समाज की आत्मा से मनुष्य का अमूर्त सम्बंध है। समाज एक प्रकार से भावना का आधार लेकर बनता है। व्यक्ति समाज के अवयव के रूप में है। व्यक्तियों के बीच की विविधता समाज में समन्वय के रूप में परिलक्षित होती है। कोहरे राबर्टस के अनुसार– *"तनिक सोचने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज के अभाव में व्यक्ति एक खोखली संज्ञा मात्र है। मानव कभी अकेले नहीं रह सकता वह समाज का सदस्य बनकर रह जाता है। मानव का अध्ययन मानव समाज का अध्ययन है, व्यक्ति का विकास समाज में ही सम्भव है।"*

रॉस ने स्पष्ट किया– *"समाज से अलग वैयक्तिकता का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और व्यक्तित्व एक अर्थ ही न संज्ञा मात्र है।"*

2– समाज में हम की भावना होती है। इस भावना के अन्तर्गत व्यक्तिगत मैं निहित होता है, और यही सामाजिक बंधन को जन्म देता है। पर समाज के सम्पूर्ण बंधन स्वार्थपूर्ण होते हैं।

3– समाज में समूह मन व समूह आत्मा होती है।, यह सम्बंध पारस्परिक चेतना से युक्त होती है, समूह मन में यह चेतना होती है और उनके यह व्यवहार में प्रकट होती है।

4– समाज में अपनी सुरक्षा की भावना पायी जाती है, इसके लिये वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है, और समाज अपनी निजता को बनाये रखने के लिये नियम कानून रीति रिवाज संस्कषति व सभ्यता को विकसित व निर्मित करता है।

5– समाज की आर्थिक स्थिति उसके सदस्यों की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है तो उनसे आर्थिक स्थिति की विविधता पायी जाती है परन्तु इन सबके बांद भी उनमें एक समाज अधिकार भावना पायी जाती है, कि हम समाज के सदस्य है।

6– समाज के जीवन एवं संस्कषति सभ्यता के कारण व्यक्तियों के आचार–विचार व्यवहार मान्यताओं में एका पायी जाती है। जिसे हम जीवन का सामान्य तरीका के रूप में देख सकते हैं।

7– समाज निश्चित उद्देश्यों को रखकर निर्मित होते है, जिसमें पारस्परिक लाभ, मैत्रीपूर्ण व शान्तिपूर्ण जीवन आदर्शों एवं कार्यों की पूर्ति आदि के रूप में देखे जा सकते है।

8– समाज में स्थायित्व की भावना होती है क्योंकि सभी सदस्य कई पीढ़ियों से उसी समाज के आजीवन सदस्य रहते हैं, इससे समाज बना रहता है।

9– समाज कई समूहों के संगठन होते है जिनमें अन्योन्याश्रितता होती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नोचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. समाज की प्रमुख विशेषता क्या होती है?

.....

13.6 शिक्षा का समाज में स्थान

वैंकटरायप्पा ने शिक्षा व समाज के सम्बंध को स्पष्ट करते हुये लिखा है– *"शिक्षा समाज के बालकों का समाजीकरण करके उसकी सेवा करती है। इसका* ***उद्देश्य*** *– युवकों को सामाजिक मूल्यों, विश्वासों और समाज के प्रतिमानों को आत्मासात करने के लिये तैयार करना और उनको समाज की क्रियाओं में भाग लेने के योग्य बनाना है।"* शिक्षा व्यक्ति व समाज के लिये यह कार्य करती है।

- **शिक्षा – व्यक्ति व समाज की प्रक्रिया का आधार** – शिक्षा को चाहे व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया कहें या सामाजिक प्रक्रिया इन दोनों में वह व्यक्ति व समाज से सम्बंध स्थापित करती है। शिक्षा समाज को गतिशील बनाती है, और विकास का आधार प्रदान करती है।
- **समाज के व्यक्तियों का व्यक्तित्व विकास** – शिक्षा द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। व्यक्तित्व के विकास से तात्पर्य शारीरिक, चारित्रिक, नैतिक और बौद्धिक गुणों के विकास के साथ सामाजिक गुणों का विकास होना। विकसित व्यक्तित्व का बाहुल्य समाज की प्रगति का आधार बनता है। व्यक्ति को निर्जीव मानकर समाज उसका उपयोग नहीं कर सकता।
- **संस्कषति व सभ्यता के हस्तांतरण की प्रक्रिया** – शिक्षा समाज की संस्कषति एवं सभ्यता के हस्तांतरण का आधार बनती है। शिक्षा के इस कार्य के विषय में ओटवे महोदय ने लिखा है कि – *"शिक्षा का कार्य समाज के सांस्कषतिक मूल्यों और व्यवहार के प्रतिमानों को अपने तरूण और शक्तिशाली सदस्यों को प्रदान करना है। पर असल में यह उसके साधारण कार्यों में से एक है।"* शिक्षा के इस कार्य पर टायलर ने लिखा है कि *"संस्कषति वह जटिल समग्रता है, जिसमें ज्ञान विश्वास, कला, नैतिकता, प्रथा तथा अन्य योग्यतायें और आदतें सम्मिलित होती है, जिनको मनुष्य समाज के सदस्य के रूप शिक्षा से प्राप्त करता है।"* महात्मा गांधी ने शिक्षा के इस कार्य की आवश्यकता एवं प्रशंसा करते हुये लिखा है – *"संस्कषति ही मानव जीवन की आधार शिला और मुख्य वस्तु है यह आपके आचरण और व्यक्तिगत व्यवहार*

की छोटी सी छोटी बातों में व्यक्त होनी चाहिये।"

- **शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया के अंग के रूप में**– रोसेक के अनुसार– *"शिक्षा एक आधारभूत सामाजिक कार्य और सामाजिक प्रक्रिया का अंग है।"* ओटवे ने शिक्षा को सामाजिक विज्ञान का रूप देते हुये स्पष्ट किया है– *"शिक्षा समाज में होने वाली क्रिया है और इसके उद्देश्य एवं विधियां उस समाज के स्वरूप के रूप के अनुरूप होती है, जिनमें इसकी क्रिया होती है।"*
- **भावी पीढ़ी के प्रशिक्षण**– में शिक्षा समाज को प्रशिक्षित भावी पीढ़ी प्रदान करती है, जो कि समाज का भविष्य होते हैं। ब्राउन लिखते है कि– *"शिक्षा व्यक्ति व समूह के व्यवहार में परिवर्तन लाती है, यह चैतन्य रूप में एक नियंत्रित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में और व्यक्ति द्वारा समूह में परिवर्तन किये जाते हैं। शिक्षा समाज को सभ्य एवं सुसंस्कृत पीढ़ी प्रदान करती है।"*
- **शिक्षा समाज की प्रगति का आधार** – शिक्षा समाज के लिये वह साधन है, जिसके द्वारा समाज के मनुष्यों के विचारों, आदर्शों, आदतों और दृष्टिकोण में परिवर्तन कर समाज की प्रगति की जाती है। एलवुड ने स्पष्ट किया है – *"शिक्षा वह साधन है जिसमें समाज सब प्रकार की महत्वपूर्ण सामाजिक प्रगति की आशा कर सकता है।"*
- **समाज में परिर्वतन का आधार**– समाज का स्वरूप एवं प्रस्थिति में निरन्तर बदलाव की ओर अग्रसर होता है, और यह आवश्यक भी नही है, कि यह व्यक्ति और समाज के लिये हितकर हो इसमें शिक्षा इस बदलाव एवं व्यक्ति व समाज के मध्य सम्बधं स्थापित करते हुये सामंजस्य बैठाती है। एलवुड ने स्पष्ट किया है– *"समाज का सर्वोत्तम परिवर्तन मानव के स्वभाव में परिवर्तन कर किया जा सकता है और ऐसा करने की सर्वोत्तम विधि शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।"*
- **शिक्षा के द्वारा समाज की स्थिरता** – शिक्षा समाज के मानव संसाधन को सुसंस्कृत बनाकर अपने व समाज के लिये उपयोग बनाती है। ओर्शिया ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये कहा है कि *"समाज की शिक्षा व्यवस्था व्यक्तियों का मानसिक, व्यावसायिक, राजनीतिक और कलात्मक विकास करके न केवल समाज के अधोपतन की रक्षा करती है, वरन उसको स्थिरता भी प्रदान करती है।"*
- **सामाजिक दोषों के सुधार का आधार**– शिक्षा में नैतिकता चारित्रिक एवं दार्शनिक पक्ष की प्रधानता होती है और शिक्षा अपनी व्यवस्था में भावी पीढ़ी को समाज में व्याप्त दोषों को इंगित कर उनमें सुधार हेतु समझ एवं मार्ग प्रदान करती है।

- **समाज की सदस्यता की तैयारी का आधार** – शिक्षा व्यक्ति को अपने व समाज के लिये उपयोगी बनाती है, प्रारम्भ में बालक परिवार का सदस्य होता है और उन्हें सामाजिक कर्तव्यों एवं नागरिकता के गुणों को विकसित कर उन्हें समाज के भावी सदस्य के रूप में तैयार करती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4–शिक्षा समाज के लिये क्या कार्य करती है?

.....

13.7 समाज का शिक्षा पर प्रभाव

शिक्षा पर समाज के प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है, क्योंकि समाज शिक्षा की व्यवस्था करता है। इस प्रभाव को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है–

1– **समाज के स्वरूप का प्रभाव** – समाज के स्वरूप का शिक्षा की प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है, जैसा समाज का स्वरूप होगा वह शिक्षा को वैसे ही व्यवस्थित करता है। भारत लोकतांत्रिक देश है तो शिक्षा की प्रकृति उद्देश्यों उसके संगठन एवं वातावरण में लोकतांत्रिक आदर्श प्रतीत होते हैं। तानाशाही समाज की शिक्षा में अनुशासन व आज्ञाकारिता, आदि पर बल दिया जाता है। समाजवादी देशों की शिक्षा में समाजवादी तत्व एवं स्वरूप दिखयी देता है।

2– **सामाजिक परिवर्तन का प्रभाव** – समाज की प्रस्थिति एवं स्वरूप जैसे तैसे बदलता जाता है वैसे वैसे शिक्षा का रूप भी बदलता जाता है। भारत में आदिकाल से धार्मिक शिक्षा दी जाती थी उसके पश्चात् समय के साथ आधुनिक युग आया और देश ने राजतंत्र से प्रजातंत्र में प्रवेश किया और शिक्षा में लोकतंत्रीय आदर्श एवं मूल्य समावेशित हुये सामाजिक असमानता, कुरीतियों एवं आर्थिक असमानता को दूर कर वर्ग विशेष के लिये शिक्षा व्यवस्था से सबके लिये शिक्षा को मुख्य लक्ष्य माना गया और सभी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त कराया गया।

3– **राजनैतिक दशाओं का प्रभाव** – किसी भी समजा की राजनैतिक दशा का शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि राजनीति को मजबूत आधार शिक्षा प्रदान करती है। अंग्रेज जब भारत आये तो उन्होनें अपने शासन को मजबूत आधार देने के लिय शिक्षा व्यवस्था को अपने अनुसार ढालने का प्रयास किया और इसके लिये निष्पन्दन का सिद्धान्त का अनुसरण कर आवश्यकतानुसार शिक्षा

देने का प्रयास किया कम्पनी के संचालकों का विश्वास था– कि *"प्रगति उस समय हो सकती है, जब उच्च वर्ग के उन व्यक्तियों को शिक्षा दी जाये जिसके पास अवकाश है।"* वैदिक युग में राजतंत्र था तो शिक्षा वर्ग विशेष के लिये थी परन्तु प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में सभी आयु वर्ग, लिंग, जाति एवं धर्म के लोगों को समान शिक्षा का अधिकार दिया गया है।

4– **आर्थिक दशाओं का प्रभाव** – जिस समाज की आर्थिक दशा अच्छी होती है वहां की शिक्षा व्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ता है। अमेरिका जैसे देश विकसित हें तो वहां पर शिक्षा का प्रचार–प्रसार जल्दी हुआ और भारत जैसे देश में हमें शिक्षा की सुविधा देने में वर्षों लग रहे हैं। आर्थिक रूप से सम्पन्न समाज अच्छे विद्यालय खोलने में सक्षम रहता है, इसके फलस्वरूप व्यावसायिक, प्राविधिक, प्रौद्योगिक, वैज्ञानिक आदि पक्षों का अधिक से अधिक विकास हेतु संसाधन उपलब्ध रहता है। आर्थिक रूप से विपन्न देशों व समाजों की शिक्षा में भी यह विपन्नता स्पष्ट दिखायी देती है।

5– **सामाजिक आदर्शो, मूल्यों व आवश्यकताओ का प्रभाव** – शिक्षा पर सामाजिक आदर्शों का प्रभाव पड़ता है जैसे भारत में शिक्षा का स्वरूप पर डा0 राधाकष्णन ने लिखा कि– "शिक्षा को व्यक्ति और समाज दोनों का उत्थान करना चाहिये। तब हमारी शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्यों, लक्ष्यों, शिक्षण विधियों पाठ्यक्रम एवं शिक्षार्थी, शिक्षक के गुणों की संकल्पना पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।" इस प्रकार भारतीय समाज की आवश्यकता है, गरीबी, बेरोजगारी, को दूर करना असमानता की भावना दूर करना, और लोकतांत्रिक मूल्यों का समावेश किया जाये तब इन तथ्यों को शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न पक्षों उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम में स्पष्ट समावेशित किया गया।

6– **समाज के दृष्टिकोण का प्रभाव** – शिक्षा व्यवस्था में समाज के दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ता है, जैसे यदि समाज रूढ़िवादी दृष्टिकोण का है तो शैक्षिक प्रशासन एवं अनुशासन व पाठ्यक्रम में इसका स्पष्ट छाप दिखायी देती हैं।समाज के उदार दशष्टिकोण का प्रभाव वहॉ की शिक्षा व्यवस्था में देखी जा सकती है। जैसे वैदिक युगीन समाज का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था तब उस समय शिक्षा व्यवस्था धार्मिक थी। इसी प्रकार से जनतांत्रिक दृष्टिकोण एंव उदार शिक्षा का प्रभाव शिक्षा व्यवस्था में स्पष्ट दिखायी देता है। एच0ओड का कथन है– *"समाज और शिक्षा का एक दूसरे से पारस्परिक कारण और परिणाम का सम्बंध है। किसी भी समाज का स्वरूप उसकी शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को निर्धारित करता है, और इस व्यवस्था का स्वरूप, समाज के स्वरूप को निर्धारित करता है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6– सामाजिक, आर्थिक दशा शिक्षा को कैसे प्रभावित करती है? सोदाहरण प्रस्तुतीकरण कीजिये।

.....

13.8 शिक्षा का समाज पर प्रभाव

हम उपर पढ़ चुके हैं कि समाज शिक्षा के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है तो ठीक उसी प्रकार शिक्षा भी समाज को प्रत्येक पक्ष पर प्रभावित करती है, चाहे आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कर्षतिक स्वरूप हो। इस पर हम बिन्दुवार आगे कुछ विस्तार से देखेंगे–

- शिक्षा व समाज का स्वरूप – शिक्षा का प्रारूप समाज के स्वरूप को बदल देती है क्योंकि शिक्षा परिवर्तन का साधन है। समाज प्राचीनकाल से आत तक निरन्तर विकसित एवं परिवर्तित होता चला आ रहा है क्योंकि जैसे–जैसे शिक्षा का प्रचार–प्रसार होता गया इसने समाज में व्यक्तियों के प्रस्थिति, दृष्टिकोण , रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाजों पर असर डाला और इससे सम्पूर्ण समाज का स्वरूप बदला।
- शिक्षा व सामाज़िक सुधार एवं प्रगति– शिक्षा समाज के व्यक्तियों को इस योग्य बनाती है कि वह समाज में व्याप्त समस्याओं, कुरीतियों गलत परम्पराओं के प्रति सचेत होकर उसकी आलोचना करते है, और धीरे–धीरे समाज में परिवर्तन हेाता जाता है। शिक्षा समाज के प्रति लेागों को जागरूक बनाते हुये उसमें प्रगति का आधार बनाती है। जैसे शिक्षा पूर्व में वर्ग विशेष का अधिकार थी जिससे कि समाज का रूप व स्तर अलग तरीके का या अत्यधिक धार्मिक कट्टरता, रूढिवादिता एवं भेदभाव या कालान्तर में शिक्षा समाज के सभी वर्गों के लिये अनिवार्य बनी जिससे कि स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक प्रगति एवं सुधार स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है। डयूवी ने लिखा है कि– शिक्षा में अनिश्चितता और अल्पतम साधनों द्वारा सामाजिक और संस्थागत उद्देश्यों के साथ–साथ, समाज के कल्याण, प्रगति और सुधार में रूचि का दुषित होना पाया जाता है।
- शिक्षा और सामाजिक नियंत्रण– शिक्षा समाज का स्वरूप बदलकर उस पर नियंत्रण भी करती है अभिप्राय यह है कि व्यक्ति का दृष्टिकोण एवं उसके

क्रियाकलाप समाज को गतिशील रखते हैं। शिक्षा व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर उसके क्रियाकलापों में परिवर्तन कर समूह मन का निर्माण करती है और इससे अत्यव्यवस्था दूर कर उपयुक्त सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करती है।

- शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन– समाज की रचना मनुष्य ने की है, और समाज का आधार मानव क्रिया है ये– अन्तः क्रिया सदैव चलती रहेगी और शिक्षा की क्रिया के अन्तर्गत होती है इसीलिये शिक्षा व्यवस्था जहां समाज से प्रभावित होती है वहीं समाज को परिवर्तित भी करती है जैसे कि स्वतंत्रता के पश्चात् सबके लिये शिक्षा एवं समानता के लिये शिक्षा हमारे मुख्य लक्ष्य रहे हैं इससे शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ और समाज का पुराना ढांचा परिवर्तन होने लगा। आध्यात्मिक मूल्यों के स्थान पर भौतिक मूल्य अधिक लोकप्रिय हुआ। सादा जीवन उच्च विचार से अब हर वर्ग अपनी इच्छाओं के अनुरूप जीना चाहता है। शिक्षा ने जातिगत व लैंगिक असमानता को काफी हद तक दूर करने काप्रयास किया। और ग्रामीण समाज अब शहरी समाजों में बदलने लगे और सामूहिक परिवारों का चलन कम हो रहा है। शिक्षा के द्वारा सामाजिक परिवर्तन और इसके द्वारा शिक्षा पर प्रभाव दोनों ही तथ्य अपने स्थान पर स्पष्ट है। सैयदेन ने इस बात को और स्पष्ट करते हुये लिखा है कि– इस समय भारत में शिक्षा बहुत नाजुक पर रोचक अवस्था में से होकर गुजर रही है, यह स्वाभाविक है क्योंकि समग्र रूप में राष्ट्रीय जीवन भी जिसका शिक्षा भी अनिवार्य अंग है, ऐसी ही अवस्था में से होकर गुजर हरा है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7–शिक्षा और समाजिक परिवर्तन की अन्योन्याश्रिता स्पष्ट कीजिये?

.....

13.9 सारांश

यह निर्विवाद सत्य है कि व्यक्ति का समाज के बिना कोई अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। रॉस ने यहां पर स्पष्ट किया कि– समाज से अलग वैयक्तिकता का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और व्यक्तित्व का कोई मूल्य नहीं रह जाता है। वास्तव में समाज और व्यक्ति अपने–अपने अस्तित्व के लिये परस्पर निर्भर है, और शिक्षा इसमें मुख्य भूमिका निभाने वाली प्रक्रिया है समाज अपने अस्तित्व को बचाने और विकास

करने के लिये शिक्षा को आधार बनाता है। ओटवे ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये लिखा – किसी भी समाज में दी जाने वाली शिक्षा समय–समय पर उसी प्रकार बदलती है जिस प्रकार समाज बदलता है। स्पेन्सर ने शिक्षा और समाज के सम्बंध को स्पष्ट करते हुये लिखा कि– प्राचीन कालीन शिक्षा प्रणाली अपनी समकालीन सामाजिक पद्धतियों के अनुरूप थी और उसी प्रकार हमारी शिक्षा की आधुनिक प्रणालियां हमारी अधिक, धार्मिक और राजनैतिक संस्थाओं के अनुरूप है।

13.10 चर्चा के बिन्दु

"विभिन्न प्रकार के समाजों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा विभिन्न होती है।" उदाहरण सहित इस तथ्य की चर्चा कीजिये किस प्रकार शिक्षा और समाज अन्योन्याश्रित है।

13.11 अभ्यास कार्य

1. व्यक्ति समाज और शिक्षा के आपसी सम्बंधों पर प्रकाश डालिये।
2. शिक्षा का समाज पर और समाज का शिक्षा पर प्रभावों की विवेचना कीजिये।

13.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समाज मनुष्यों का उद्देश्यपूर्ण संगठन है।
2. पारस्परिक निर्भरता, एकाकीपन और स्वयं सुरक्षा के लियें।
3. समाज जीवित शरीर और मानव उसका अवयव।
4. सामाजिक प्रक्रिया प्रगति का आधार, सामाजिक परिवर्तन का कारण, सामाजिक दोषों में सुधार।
5. आर्थिक दशा का शिक्षा के सभी संसाधनों पर प्रभाव।
6. समाज के परिवर्तन से शिक्षा परिवर्तित और शिक्षा के परिवर्तन से समाज परिवर्तित।

13.14 कुछ उपयोगी प्रस्तकें

डा0 जयसवाल एस0 (1996) : शिक्षा का सामाजिक आधार प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड,लखनऊ।

Saiyidian, G.K.,(1957) : Education, Culture and Social Order, Bombay: Asia Publishing house.

Brookover W.V. : Sociology of Education, Newyork: American Book Co.

Brown Francis J. (1954) : Educational Sociology New York, American Book Co.

इकाई–14 शिक्षा और राष्ट्रीयता

संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 राष्ट्रीयता की संकल्पना

14.4 राष्ट्रीयता के गुण

14.5 राष्ट्रीयता में बाधक तत्व

14.6 राष्ट्रीयता एवं शिक्षा

14.7 भारत के संदर्भ में राष्ट्रीयता एवं शिक्षा

14.8 भारत में राष्ट्रीयता के विकास का उपाय एवं शिक्षा

14.9 राष्ट्रीय एकता हेतु शैक्षिक कार्यक्रम

14.10 सारांश

14.11 चर्चा के बिन्दु

14.12 अभ्यास कार्य

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग राष्ट्रीयता का युग है, और संसार का कोई भी प्रकार का राजनैतिक ढांचा अपने नागरिकों के राष्ट्र प्रेम पर निर्भर करता है। नागरिकों व निवासियों की राष्ट्र के प्रति भक्ति ही राष्ट्रीयता है जो कि उस देश की सीमा का सीमांकन करती है, और रक्षा करती है। अब संसार के सभी देश राष्ट्रीयता की शिक्षा पर विशेष बल दे रहे हैं, और राष्ट्रीयता की शिक्षा एक महत्वपूर्ण दायित्व है क्योंकि इस शिक्षा का सम्बंध राष्ट्र के अस्मिता से है और अस्तित्व से है। इस इकाई में हम राष्ट्रीयता की संकल्पना के साथ इसके विकास में बाधक तत्वों की भी चर्चा करेंगे और इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय एकता के लिये आवश्यक शैक्षिक कार्यक्रमों की भी चर्चा करेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- राष्ट्रीयता की संकल्पना को समझकर वर्णित कर सकें।

- राष्ट्रीयता के प्रकार एवं गुणों की विवेचना कर सकेंगे।
- राष्ट्रीयता के विकास में बाधक तत्वों को इंगित कर सकेंगे।
- राष्ट्रीयता के विकास में शिक्षा की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत के संदर्भ में राष्ट्रीयता एवं शिक्षा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- भारत में राष्ट्रीयता के विकास हेतु विभिन्न आयोगों व समितियों के संस्तुतियों को बता सकेंगे।

14.3 राष्ट्रीयता की संकल्पना

वर्तमान युग राष्ट्रीयता का युग माना जाता है। सभी देश अपने निवासियों में राष्ट्रीयता की भावना पर निर्भरत करते हैं, और यह प्रयास करते है कि शिक्षा विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता को प्रफुल्लित करें और उसके विकास में सहायक हो। राष्ट्रीयता देश के सभी नागरिकों में हम और हमारा का दृष्टिकोण उत्पन्न कर देता है और यह सबको एक सूत्र में बांधे रहता है।किसी भी राष्ट्र में भिन्न क्षेत्रों भाषा जाति धर्म व संस्कषति के लोग रहते हैं, परन्तु इतने विभिन्नता के होते हुये भी किसी राष्ट्र के व्यक्ति समान हित की भावना से जुड़े होते हैं और सभी व्यक्तियों के इन समान हितों की रक्षा के लिये राज्य उत्तरदायी होता है और यह व्यक्ति को व्यक्तिगत हितों से ऊपर राष्ट्र के हितों को रखने पर ही सम्भव हो पाता है। राष्ट्रीयता में मूल शब्द राष्ट्र है, और ईयता प्रत्यय लगा है और इसका अभिप्राय है राष्ट्र के प्रति लगाव। राष्ट्रीयता की व्याख्या विभिन्न प्रकार से की गयी है और इसे मन की स्थिति तथा आत्मा की सम्पत्ति मानते हैं। यह भावना जीवन एवं विचार की पद्धति के रूप मे भी मानी जाती हैं। ब्रुवेकर के द्वारा राष्ट्रीयता की निम्न परिभाषा दी गयी– *"राष्ट्रीयता साधारण रूप से देश प्रेम की अपेक्षा देश भक्ति के अधिक व्यापक क्षेत्र की ओर संकेत करती है। राष्ट्रीयता में स्थान के सम्बन्ध के अलावा, प्रजाति, भाषा, इतिहास, संस्कषति और परम्पराओं के भी सम्बंध आ जाते हैं।"*

उपरोक्त परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि राष्ट्रीयता किसी भी राष्ट्र के व्यक्तियों के मध्य एका की भावना होती है, इसमें देशप्रेम, देशभक्ति व देश के प्रति समर्पण की भावना छिपी रहती है और राष्ट्र हित की भावना के आगे वैयक्तिक व सामूहिक हितों को त्याग का प्रवृत्ति पायी जाती है, यही भावना राष्ट्रीयता कहलाती हैं।

राष्ट्रीयता के प्रकार – राष्ट्रीयता दो रूपों में परिलक्षित होती है–

1. संकीर्ण राष्ट्रीयता 2. उदार राष्ट्रीयता

1. **संकीर्ण राष्ट्रीयता** – इस प्रकार की राष्ट्रीयता में व्यक्तियों में यह धारणा विकसित होती है कि मेरा ही राष्ट्र सर्वश्रेष्ठ है और वह संसार के अन्य देशों को

अपनी राष्ट्र से पीछे व कमतर समझते हैं। यह राष्ट्र के प्रेम की सभी हदों के पार के विश्वास की बात मानते हैं, परन्तु इसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक हित पीछे रह जाते हैं। संकुचित राष्ट्रवाद ने संसार में कई उथल–पुथल मचाया है इसके कारण–

- अन्तराष्ट्रीय विचारधारा पनप नहीं पाती और यह मानव हित के लिये घातक है।
- संकुचित राष्ट्रीयता की भावना उस राष्ट्र एवं नागरिक को स्वार्थी बना देता है, और दूसरे देशों के प्रति घष्णा उत्पन्न करती है और यह आपसी संघर्ष उत्पन्न करता है।
- संकुचित राष्ट्रीयता की भावना पड़ोसी देशों की भी परवाह नहीं कर आपसी तनाव बढ़ाती है जिससे कि दोनों देश उन्नति नहीं कर पाते। यह विश्व के अस्तित्व के लिये भी खतरा उत्पन्न करती है।
- यह वैयक्तिक हितों के विपरीत है। इसमें सामान्य व्यक्ति का विकास अधिकांशतः उपेक्षित भी हो सकता है और यह व्यक्तियों पर दबाव बनाती है।

2. **उदार राष्ट्रीयता** – यह राष्ट्रीयता व्यक्तियों को स्वेच्छा से अपने राष्ट्र को प्रेम करने के लिये प्रेरित करती है। यह अपने राष्ट्र से प्रेम करने के साथ अन्य देशों के साथ घष्णा करने की आज्ञा नहीं देता, यह समवेत विकास में विश्वास करती है। इस प्रकार की राष्ट्रीयता धर्मों जातियों और भाषाओं के लोगों में पारस्परिक सहिष्णुता की भावना को जन्म देती है। इस प्रकार की राष्ट्रीयता राष्ट्र के निवासियों को बाह्य बंधन से मुक्त होने और रहने की प्रेरणा देती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

1– राष्ट्रीयता से आपका क्या अभिप्राय है?

2– संकुचित राष्ट्रीयता के क्या दोष है?

14.4 राष्ट्रीयता के गुण

किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व वहां के निवासी के हम की भावना पर निर्भरत करती है क्योंकि यह किसी भी राष्ट्र के नागरिकों को एक सूत्र में बांधती है। राष्ट्रीयता के गुणों की चर्चा अब हम कर रहे हैं–

- राष्ट्रीयता किसी देश के नागरिकों को एक सूत्र में बांध देती है, इसमें स्थान, जाति, भाषा, संस्कषति आदि के आधार पर भिन्नता होते हुये भी एकता स्थापित हो जाती है।

- यह नागरिकों को अपने स्वार्थों से ऊपर राष्ट्र के हित को रखने के लिये प्रेरित करता है।
- यह राष्ट्र को उसकी सीमाओं में बांधे रखता है।
- राष्ट्रीयता व्यक्तियों को राष्ट्र के प्रति प्रेम होने के कारण अनुशासन स्थापन के लिये प्रेरित करती है।
- उदार राष्ट्रीयता राष्ट्र के उन्नति के साथ व्यक्तियों के अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति भी सचेत रहती है।
- राष्ट्रीयता नागरिकों को अपने राष्ट्र के उन्नति एवं विकास हेतु संचेतना जागृत करती है।
- उदार राष्ट्रीयता नागरिकों में अन्तर्राष्ट्रीय जागरूकता की भावना विकासित करने में सहायक होती है।
- उदार राष्ट्रीयता वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना में विश्वास करती है।
- किसी भी प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था तानाशाही, सा वादी, समाजवादी और प्रजातंत्रीय व्यवस्था को दृढ़ बनाये रखने के लिये वहां के नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना आवश्यक होती है।
- राष्ट्रीयता राष्ट्रों के मध्य होड़ एवं संघर्ष भी उत्पन्न कर सकती है, और राष्ट्र एक–दूसरे से आगे निकलने के लिये संघर्ष करते हैं।

राष्ट्रीयता की कमियां– राष्ट्रीयता की भावना उदारवादी हो यह आवश्यक है, उसके संकुचित रूप न उभरे इसी कमी को इंगित करते हुये जवाहर लाल नेहरू ने लिखा था– *"राष्ट्रीयता एक ऐसा विचित्र तत्व है जो एक देश के इतिहास में जहां जीवन मानव शक्ति में एकता का संचार करता है,वहां संकुचित बनाता है, क्योंकि इसके कारण एक व्यक्ति अपने देश के बारे में संसार के अन्य देशों से पृथक–पृथक रूप में सोचता है।"* इस रूप में स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है कि –

1– राष्ट्रीयता के गुण व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधने के साथ यह दुर्गुण पैदा करती है कि मेरा राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ है।

2– यह राष्ट्र की सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिये प्रेरित करती है परन्तु अन्ध ाधुन्ध प्रेम दूसरे राष्ट्र की सीमाओं को भंग कर अपने राष्ट्र की सीमाओं के प्रसार करने के लिये भी अग्रसर करती है।

3– राष्ट्रीयता अपने देश की अस्मिता एवं अस्तित्व को बचाने के लिये प्रेरित करती है, तो दूसरी ओर दूसरे देश को आगे बढ़ते देखकर उसकी अस्मिता व अस्तित्व को भंग करने के लिये अभिप्रेरित करती है।

4– अंधी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को भी प्रभावित करती है। देश आपस में

सहयोग लेना–देना नहीं चाहते है।

5– राष्ट्रीयता की भावना का संघर्ष अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास में बाधक होता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

3. 'राष्ट्रीयता की भावना' क्यों आवश्यक है ?

.....

4. अन्धी राष्ट्रीयता क्यो घातक होती है ?

.....

14.5 राष्ट्रीयता में बाधक तत्व

किसी भी राष्ट्र के नागरिकों में राष्ट्रीयता की भावना उस राष्ट्र के लिये प्राण वायु के समान है। क्योंकि राष्ट्र किसी भूमि से नहीं किसी निश्चित भूभाग में रहने वाले एक समान सोच वाले लोगों से बनती है, जिसे सभी लोग मिलकर एक राष्ट्र का नाम देते हैं। परन्तु कुछ निश्चित तत्व राष्ट्रीयता के विकास में बाधक होते हैं, क्योंकि शिक्षा को इन्हीं तत्वों से जूझना पड़ता है ताकि राष्ट्रीयता की भावना का समुचित विकास हो सके।

(1) **साम्प्रदायिकता–** जब कोई भी देश जैसे कि भारत विभिन्न धर्म के लोगों से बसा होता है, तब लोग अपने धर्म को सर्वोपरि मानते हुये दूसरे सम्प्रदाय के लोगों से बहुधा मानसिक रूप से नहीं जुड़ पाते हैं, इससे अप्रत्यक्ष रूप में राष्ट्र के लोग साम्प्रदायिक गुटों में बंटे रहते हैं और सम्प्रदाय को राष्ट्र से भी ऊपर मानने लगते हैं, तब समस्या और जटिल हो जाती है। सर्वपल्ली राधाकष्णन ने साम्प्रदायिकता एवं राष्ट्रीयता के सम्बंध को स्पष्ट करते हुये लिखा कि – *"आखिर धर्म क्या है? समाज को धारण करे, समाज को बनाये रखता है, वहीं धर्म है जो धर्म समाज को विभाजित करता है वह समाज में फूट डालता है, मतभेद पैदा करता है, घष्णा व द्वेष फैलाता है, वह अधर्म है।"*

(2) **भाषावाद–** किसी देश में विभिन्न भाषा–भाषी लोगों का निवास उस देश में राष्ट्रीयता की भावना के विकास में बाधक तत्व है, क्योंकि भारत जैसे देश में जब प्रदेशों का बंटवारा भाषा के आधार पर हुआ तब लोगों की निष्ठा अपने भाषा

के प्रति अधिक बढ़ी और फलस्वरूप राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने वाली 'हिन्दी भाषा' जो कि राष्ट्र भाषा भी हैं, वह आज उपेक्षित है, और अधिकांश लोगों द्वारा प्रयोग में नही लायी जा रही है। अब तो यहां तक देखने में आता है, कि अहिन्दी भाषा राज्य हिन्दी का विरोध कर बंटे हुये है।

(3) **क्षेत्रीयता**– जब राष्ट्र अनेक राज्यों में बंटा होता है, तब सम्पूर्ण राष्ट्र पहले {ात्रीयता के आधार पर बट जाता है। किसी भी देश में राष्ट्र, राष्ट्रीयता की भावना के विकास में क्षेत्रीय कट्टरता भी एक बाधक तत्व है। क्षेत्रीयता का भारत जैसे देश में प्रभाव पर डॉ0 सम्पूर्णानन्दन ने टिप्पणी करते हुये लिखा कि– *"आज दक्षिण भारत के लोगों के मुँह से सुनने में आती है, कि हम हिन्दुस्तान से अलग होना चाहते हैं, पर जो धनाढ्य हैं वे सोचते है कि क्या अपने आजादी व सम्पत्ति की रक्षा कर सकेंगे। क्या तमिलनाडू वाले अलग होकर अपनी अधिक रक्षा कर सकते हैं। वह ऐसा करके अपने को भी डुबोयेंगे और दूसरों को भी ले डूबेंगे। इसलिये ऐसा सेचना बड़ी भयानक चीज है।"*

(4) **जातिवाद**– समाज का जातीय विखण्डन लोगों के हृदय को जोड़ नहीं पाया और इसने पूरे समाज को द्वेषपूर्ण बना दिया। ऊँच–नीच के भेदभाव ने हृदय को इतना कलुषित किया है कि समाज समवेत सुख व दुख में खड़ा नहीं हो पाता है तो राष्ट्र के लिये कैसे खड़ा होगा। भारत जैसे देश की यह सत्य कहानी है, इस दर्द को जवाहर लाल नेहरू ने इस प्रकार व्यक्त किया कि– *"मैं समझता हूँ कि भारत को एक मानने में सबसे खराब चीज यहां की जाति प्रथा है। हम आप बहस करते हैं, कभी जनतंत्र की, प्रजातंत्र की, समाजवाद की और किस किस की। इन सबमें चाहे जो लाजमी हो पर उसमें जाति प्रथा नहीं आ सकती क्योंकि यह राष्ट्र की हर तरक्की के प्रतिकूल है। जात–पात में रहते हुये न हम समाजवाद, न ही प्रजातंत्र को पा सकते हैं। यह प्रथा तो देश और समाजवाद को टुकड़े कर ऊपर नीचे और अलग–अलग भागो में बांटती है इस तरह वह बांटने का कार्य करती है और अब जाति प्रथा पुरानी व हानिकारक हो गयी।"* आज हमारे देश की राजनीति का आधार जातिवाद है।

(5) **रंगभेद**– यह भेद ऐसा है, जिसने एक राष्ट्र को ही नही विश्व को दो खण्डों में बांटा श्वेत एवं अश्वेत। कई देशों में सम्पूर्ण राजनीति इसको आधार बनाकर की जाती है। अमेरिका, अफ़्रीका आदि ऐसे ही देश है। रंगभेद ने इन राष्ट्रों को दो खण्डों मे बांट रखा है, जिससे कि लोगों का हृदय आपस में नहीं मिलता लोगों के लिये राष्ट्र से ऊपर प्रजाति है।

(6) **दूषित शिक्षा प्रणाली** – राष्ट्रीयता की भावना का प्रचार–प्रसार न होने के कारण में दूषित शिक्षा प्रणाली भी एक प्रमुख भूमिका निभाती है। पाठ्यक्रम में राष्ट्रीयता के विकास करने वाले तत्व कम पाये जाते हैं। भारत जैसे प्रजातंत्र में प्रजातांत्रिक मूल्यों एवं राष्ट्रीयता की भावना के विकास का दायित्व शिक्षा

को ही सौंपा गया है, परन्तु शिक्षा का उचित प्रचार–प्रसार भी अभी संतोषजनक स्तर तक नहीं हो पाया है, और शिक्षा में राष्ट्रीयता के तत्वों को भी समावेशित नहीं किया गया है।

(7) **नैतिक पतन एवं भ्रष्टाचार**– किसी भी समाज में अनुशासनहीनता, कर्तव्यहीनता, अधिकारों का अधिक प्रयोग, उत्तरादयित्वों के प्रति उदासीनता निष्ठा की कमी भौतिकवादी दृष्टिकोण राष्ट्रीयता की भावना के उद्भव में बाधक तत्व है, क्योंकि नागरिकों का नैतिक उत्थान एवं सच्चरित्रता ही देश की उन्नति का आधार होती है।

(8) **दूषित राजनीति**– भारत सहित अधिकांश देशो की राजनीति में अब स्वच्छता नहीं रह गयी है, और राजनीति झूठ, फरेब, धोखा, गुमराह, भ्रष्टाचार व देश के ऊपर अपने स्वार्थों के प्रति भूख का पर्याय बन चुकी है। राजनितिज्ञ साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद एवं रंगभेद को ही अपनी राजनीति का आधार बनाते हैं। राजनितिज्ञ अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु देश को जोड़ते नहीं तोड़ते हैं। इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक कारक राष्ट्रीयता के विकास में बाधक है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–

क. नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपना उत्तर लिखे।

ख. इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजियें।

5– 'भाषावाद' राष्ट्रीयता के विकास में बाधक है? कैसे।

.....

6– भारत में राष्ट्रीयता के विकास में बाधक तत्वों की सूची बताइये?

.....

14.6 राष्ट्रीयता एवं शिक्षा

किसी भी देश की प्रगति और उत्थान के लिये उस देश की शिक्षा व्यवस्था को ही मुख्य कार्य करना पड़ता है, क्योंकि शिक्षा ही राष्ट्रीयता के लिये मस्तिष्क को प्रशिक्षित कर सकती है। बच्चों को प्रारम्भ से ही राष्ट्रीयता के लिये सुशिक्षित कर दिया जाय तो शिक्षा इसके लिये आवश्यक होगी, क्योंकि शिक्षा व साधन है, जिसके द्वारा समाज का देश में राष्ट्रीय चेतना का विकास कर उसे मूलरूप से बदला जा सकता है। प्राचीन काल में स्पार्टा की शिक्षा इसका प्रमुख उदाहरण है और शिक्षा के प्रमुख कार्य की ओर इंगित करते हुये एच0मैन का कथन है– *"केवल शिक्षा से ही हमारी राजनैतिक सुरक्षा सम्भव है।"* किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व वहां के नागरिकों पर निर्भर करता है।

मैकाइवर ने इस ओर इंगित करते हुये लिखा कि– *"राष्ट्र का गुण उसकी सामाजिक इकाईयों का गुण है। अर्थात् सामाजिक इकाइयों का सामूहिक जीवन ही राष्ट्रीय जीवन है। यदि ईंधन ही खराब हो तो ज्योति कैसे तेल हो सकती है– अर्थात् यदि सामाजिक इकाइयां निर्बल हैं, तो राष्ट्र कैसे देदीप्यवान हो सकता हैं।"* प्लेटो ने शिक्षा की आवश्यकता को उद्धष्त करते हुये कहा था कि– *"राज्य के संरक्षक– दार्शनिक, उत्साही, तीव्रगामी और बलवान होने चाहिये और शिक्षा को इसमें सहयोग देना होगा।"*

राष्ट्रीयता का उचित विकास एक बहुत बड़ा दायित्व है जो कि शिक्षा व्यवस्था के कारण ही पूरा किया जा सकता है डॉ0 जाकिर हुसैन ने इस तथ्य को उभारते हुये लिखा कि– *"प्रजातंत्र की सफलता व्यक्तिगत पहल कदमी पर न कि ऊपर से दिये जाने वाले निर्देश पर आधारित है राज्य का एक सबसे कठिन कार्य प्रत्येक नागरिक में सामान्य राष्ट्रीय स्वभाव का विकास करना है।"* राष्ट्रीयता हेतु शिक्षा के लिये निम्न उपाय किये जा सकते है।

- शिक्षा के सभी स्तर के पाठ्यक्रम में क्रमशः राष्ट्रीय एवं भावात्मक एकता से सम्बंधित तथ्य सम्मिलित किये जाये।
- पाठ्यक्रम में सभी धर्मों के आवश्यक आदर्श सम्मिलित व धार्मिक सहिष्णुता की भावना उत्पन्न की जाये जिससे कि साम्प्रदायिकता के कुप्रभाव से राष्ट्रीयता की भावना कुंठित न हो।
- विद्यार्थियों में जातिगत, आर्थिक एवं क्षेत्रवाद के विरूद्ध उचित दृष्टिकोण उत्पन्न करने हेतु पाठ्यवस्तु मे उचित तथ्य सम्मिलित किये जाये।
- सभी स्तर की शिक्षा की मुख्य भाषा हिन्दी को बनाया जाये और इसे प्रत्येक प्रान्त में अनिवार्य भी बना दी जाये।
- शिक्षा में पाठ्यसहगामी क्रियाकलापों को अनिवार्य रूप में सम्मिलित किया जाये जिससे कि विद्यार्थियों में उच्च सामाजिक एवं मानवीय गुणों का विकास हो।
- शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर राष्ट्रगान, राष्ट्रीय कवितायें एवं राष्ट्रीय मूल्यों को समावेशित किया जाये।
- माध्यमिक स्तर एवं उच्च स्तर की शिक्षा में भावात्मक एकता के लिये सामाजिक विषयों में विभिन्न महान दार्शनिकों समाज सुधारकों, देशभक्तों से सम्बंधित तथ्य सम्मिलित किये जाये।
- राष्ट्रीय त्यौहारों को धूमधाम से सभी स्तर के विद्यालयों में मनाया जाये। जिससे कि राष्ट्रीयता एवं भावात्मक एकता की भावना सुदृष्ढ हो।
- राष्ट्रीयता एवं भावात्मक एकता की भावना के प्रचार–प्रसार हेतु जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग कर जन–जन में इसका प्रचार–प्रसार किया जाये।
- सम्पूर्ण देश में एक जैसा पाठ्यक्रम हो।
- सम्पूर्ण देश में एक जैसी शिक्षा का प्रचार–प्रसार का प्रयास किया जाये।

- शिक्षा के किसी स्तर पर भी विशेष जातिगत लैंगिक सम्प्रदाय एवं क्षेत्रवाद से सम्बंधित तथ्यों को सम्मिलित कर प्रश्रय न दिया जाये, और किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिये।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

7–राष्ट्रीयता के विकास में शिक्षा की क्या भूमिका हो सकती है? समझाइये।

.....

14.7 राष्ट्रीयता एवं शिक्षा भारत के परिप्रेक्ष्य में

भारत एक धर्म सहिष्णु समाजवादी विशाल लोकतंत्र है, परन्तु एक विशेष विशिष्टता इसके अनेक धर्म अनेक धर्मगत जातियां, अनेक भाषाओं का होना है और यही इसके राष्ट्रीय भावना के विकास में बाधक है। भारत इन विभिन्नताओं के साथ ही आगे बढने का प्रयास तेजी से कर रहा है। हमारे इस विकास की गति में भी हमारी राष्ट्रीयता की भावना की आवश्यकता अधिक है। सर्वप्रथम इसे जानना चाहिये कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना के विकास में हमारे समक्ष कौन सी चुनौतियां है–

- **दूषित राजनीति**– भारत में विभिन्न जाति धर्म के लोग आदि काल से ही एक साथ रहते आये परन्तु उनमें संघर्ष भावात्मक रूप से अब अधिक प्रतीत होता है, क्योंकि देश के संविधान में समुदाय विशेष, वर्ग विशेष को अधिक सुविधा देकर आत्मा से ही समाज को बांट दिया जैसे कि वर्तमान समय में सरकार किसी एक वर्ग विशेष को संतष्त करने के फिराक में रहती है तो दूसरे वर्ग इसके कारण असंतुष्ट हुये। दलगत राजनीति अपने स्वार्थ के कारण समाज को भौतिक एवं मानसिक रूप से बांटने का काम कर रही हैं।
- **संवैधानिक त्रुटि**– हमारे संविधान में कुछ तथ्य ऐसे है सम्मिलित है जिन्होनें देश को जोड़ा नहीं तोड़ा जैसे राज्य, स्थान, जाति, लिंग व धर्म आदि किसी भी आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं करेगा और दूसरी ओर धर्म के आधार पर बहुसंख्यक एवं अल्पसंख्यक का दर्जा देकर साम्प्रदायिक तनाव को जन्म दिया। यह हमारे देश के अतिरिक्त विश्व के किसी देश में नहीं है। इसी प्रकार जातिगत प्रश्रय देना भी भारतीय समाज की एकता के लिये बाधक है।
- **आर्थिकत विषमता**– भारत में गरीबी भी एक प्रमुख समस्या है। समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग करीब 30 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जी रही है। अतः यह जनसंख्या पूरी जीवन अपने मूल आवश्यकताओं को भी नहीं जुटा पाती है तो फिर इनसे राष्ट्र व समाज के प्रति प्रेम की भावना कठिन है, और अमीर व

गरीब की खाई मानसिक दूरी भी बढ़ाती है।

- **अत्यधिक जनसंख्या**– भारत संसार में जनसंख्या की दष्टि से दूसरा बड़ा देश है, परन्तु वष्द्धि दर को देखते हुये यह प्रतीत होता है कि शीघ्र ही यह चीन को पीछे छोड़ देगा। जनसंख्या भले ही बढ़े परन्तु संसाधन नहीं बढ़ रहे हैं इससे आपसी संघर्ष ने जन्म लिया है, परिणामतः भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता की भावना की कमी होती जा रही है।
- **अनावश्यक बाहरी हस्तक्षेप**– भारत बाहरी हस्तक्षेप के कारण भी अस्थिर है। हमारे देश के कई मसलो पर बाहरी देशों का अनावश्यक हस्तक्षेप है, जिसमें काश्मीर मुद्दा भी एक है, दूसरी ओर असम है तो एक ओर पश्चिमी बंगाल है। यहां तक भी देखने में आ जाता है कि भारत में रहकर लोग पाकिस्तान को या अन्य देशों को अपना मानते हैं यह राष्ट्रीयता के लिये घातक है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8– जनसंख्या की अधिकता राष्ट्रीय एकता को कैसे प्रभावित करता है?

.....

9– काश्मीर का मुद्दा न सुलझ पाने का मुख्य कारण क्या है?

.....

14.8 भारत में राष्ट्रीयता के विकास के उपाय एवं शिक्षा

यह निस्संदेह सत्य है और आप भी जानते हैं कि भारत विभिन्नता का देश है, परन्तु इसके बाद भी हम इसे एक सफल लोकतंत्र के रूप में देख रहे हैं। यह एकता– भारतीय चरित्र और समान्य व्यक्तित्व की हैं। इसका आधार सांस्कष्तिक एकता है। इसको विभिन्न तत्वों में विघटित करना कठिन है। इस एकता को इंगित करते हुये इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है– *"भारत में निःसंदेह रूप में गहरे अधोभाग पर आश्रित आधारभूत एकता है।"* राष्ट्रीयता राष्ट्र का मूल तत्व है, इसके अभाव में देश जीवित नहीं रह सकता है। हमने अपने स्वतंत्रता की लड़ाई एक जुट, एक राष्ट्र बनकर लड़ी है, परन्तु आज इस राष्ट्र को एकजुट रखने में हमने कई कठिनाइयां महसूस हो रही है। भारत सरकार ने सभी परिस्थितियों का समाधान शिक्षा के माध्यम से करने का प्रयत्न किया और विघटनकारी तत्वों को दूर करने के लिये राष्ट्रीय एवं संवेगात्मक एकता की स्थापना के लिये दो समिति का गठन किया। डा0 राधाकष्ष्णन ने स्पष्ट अक्षरों में लिखा कि– *"यदि हमें राष्ट्र के रूप में जीवित रहने की तनिक भी अभिलाषा है तो हमें राष्ट्रीयता की अनिवार्य आवश्यकता स्वीकार करना पड़ेगा।"*

जवाहर लाल नेहरू– ने स्वतंत्रता के साथ ही इस आवश्यकता को स्वीकार करते हुये यह संदेश पारित किया कि– *"हमें अपने देश की नवजात स्वतंत्रता को सबल बनाना और उसको सुरक्षित रखना अपना सर्वप्रथम कर्तव्य समझना चाहिये। यदि हम अपने समूह अपने राज्य, अपनी भाषा या अपनी जाति के समान किसी अन्य बात को महत्व देंगे तो अपने देश को भूल जायेंगे तो हमारा विनाश अवश्म्भावी है। इन सब शब्दों का हमारे जीवन मे उचित स्थान होना चाहिये । इन सब बातों को उचित स्थान ही दिया जाना चाहिय पर यदि हम सबको अपने देश से अधिक महत्व देंगे तो हमारे राष्ट्र का अन्त आवश्यंक है।"* जवाहर लाल नेहरू ने इस तथ्य पर और जो देते हुये राष्ट्रीयता की आवश्यकता के लिये कहा था कि – *"अब निश्चित रूप से वह समय आ गया है जब प्रत्येक भारतीय को अपने अन्तर में देखना चाहिये और अपने आप से यह पूछना चाहिये कि वह राष्ट्र के साथ है, या किसी विशिष्ट समूह के। यह हमारे समय की चुनौती है, जिसका प्रत्येक नर–नारी और बच्चों को सामना करना है।"*

भारत सरकार द्वारा जो दो समितियां गठित हुई एक समिति की अध्यक्ष श्रीमती इन्दिरा गांधी और समिति के अध्यक्ष डा0 सम्पूर्णानन्द थें।

डा0 सम्पूर्णानन्द समिति के सुझाव– इस समिति ने यह स्पष्ट किया कि राष्ट्रीय एकता को उत्पन्न करने में "शिक्षा" ही महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, और उन्होनें निम्न सुझाव दिये–

- शिक्षा द्वारा बालकों में उचित अभिरूचियों, दृष्टिकोणों और संवेगों का विकास कर उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत की विशेषतायें एवं परम्पराये समझने के योग्य बनाना।
- इतिहास शिक्षण को पाठयक्रम में अनिवार्य कर दिया जाये, जिससे उपरोक्त लक्ष्य प्राप्त हो।
- योग्य शिक्षकों के द्वारा इतिहास शिक्षण की व्यवस्था की जाये।
- हिन्दु–मुस्लिम सांस्कषतिक विशेषतायें उनके सथापत्य व चित्रकला साहित्य आदि के क्षेत्रों में एकरूपता स्थापित करते हुये इतिहास–शिक्षण हो।

राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझाव– राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने हेतु सुझाव दिये हैं। सर्वप्रथम राष्ट्रीयता हेतु शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित किये गये जो निम्नवत थे–

- सभी विद्यार्थियों को देश के विभिन्न पहलुओं का ज्ञान कराया जाय।
- विद्यार्थियों को स्वतंत्रता प्राप्ति के सभी तथ्यों को पढ़ाया जाये।
- राष्ट्रीय एकता के विकास के लिये सभी जातियों सम्प्रदायों और राज्यों में अधिक मेल उत्पन्न करने वाली पढ़ाई–लिखाई को प्रोत्साहित किया जाये।

राष्ट्रीय एकता हेतु कुछ सुझाव –

- स्कूलों एवं कालेजों में पढ़ायी जाने वाली पुस्तकों का पुनर्निमार्ण की जाये।
- सभी जातियों एवं धर्मों के व्यक्तियों द्वारा लोकप्रिय मेलों और त्यौहारो को प्रश्रय देकर सम्मिलित आयोजन किया जाये।
- साम्प्रदायिक समझ व सहिष्णुता उत्पन्न करने के लिये जनसम्पर्क आन्दोलन आरम्भ किया जाये।
- साम्प्रदायिक एकता के उत्पत्ति हेतु सांस्कषतिक कार्यक्रमों में इन्हें प्रश्रय दिया जाये।
- राष्ट्रीय एकता के प्रचार–प्रसार हेतु जनसंचार माध्यमों को अधिकाधिक प्रयोग किया जाये।
- साम्प्रदायिक सद्भाव हेतु संक्षिप्त चलचित्र बनायी जाये।
- नौकरियों में क्षेत्रीयता प्रान्तीय धर्म को महत्व न दिया जाये।

राष्ट्रीयता के विकास हेतु कोठारी आयोग के सुझाव

भारत में राष्ट्रीय एकता के लिये कोठारी कमीशन ने निम्नलिखित सुझाव दिये है–

- **समान स्कूल** – देश भर में समानता हेतु लोक शिक्षा के प्रणाली के रूप में समान स्कूल प्रणाली को कार्यान्वित किया जाना चाहिये।
- **सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा**– सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा सभी स्तरों पर विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य बना दी जाये। यह सभी कार्यक्रम सैद्धान्तिक पाठ्यवस्तु में भी सम्मिलित हो।
- **भाषा नीति**– भारत में एक समुचित राष्ट्रीय भाषा नीति के विकास की आवश्यकता है, जिससे सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण सहायता मिलती है।

राष्ट्रीयता हेतु केन्द्रीय प्रयास 1961 – सन् 10 अगस्त 1961 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 नेहरू की अध्यक्षता में राज्य के मुख्यमंत्रियों ने बैठक की यह बैठक दो दिनों तक चली पर इस बैठक में राष्ट्रीयता के विकास हेतु अनेक सुझाव आये उनमें से कुछ निम्न है–

- हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचार।
- सभी भारतीय भाषाओं की समान लिपि का प्रचार।
- अंग्रेजी की अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता।
- त्रिभाषा सूत्र 1– प्रादेशिक एवं मातभाषा, 2– अहिन्दी क्षेत्रो में हिन्दी और हिन्दी क्षेत्रों में अन्य भारतीय भाषा, 3– अंग्रेजी या अन्य अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की भाषा।

- हिन्दी व अंग्रेजी माध्यम में परीक्षा।
- उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो दीर्घकाल में हिन्दी।
- शिक्षा हेतु अच्छी पुस्तकों का निर्माण।
- राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति हेतु चौथा प्रयास सम्पूर्णानन्द द्वारा भावात्मक एकतासमिति 1961 द्वारा किया गया, जो कि आप ऊपर पढ़ चुके हैं।

14.9 राष्ट्रीय एकता हेतु शैक्षिक कार्यक्रम

शिक्षा को आधार बनाकर राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक एकता को प्राप्ति के प्रयास किये जाने चाहिये। और अनौपचारिक, औपचारिक व नौपचारिक शिक्षा तीनों माध्यमों का प्रयोग किया जाये।

हमारे शैक्षिक कार्यक्रम विभिन्न स्तर पर किस प्रकार से संगठित हो कि वह विद्यार्थियों में राष्ट्रीय एकता एवं भावात्मक एकता को प्रतिस्थापित कर सम्बंधित मूल्यों का विकास करे।

1– **प्राथमिक स्तर–** इस स्तर पर बच्चों का कोमल मन होता है, जिसमें राष्ट्र प्रेम को प्रफुल्लित करना आसान होगा अतः –

- पाठयक्रम में लोक गीत व स्थानीय देश से सम्बंधित कहानियां रखी जाये।
- महान व्यक्तियों के जीवन से परिचित कराया जाये।
- सामाजिक गुणों के विकास का प्रयास हो।
- अपने राष्ट्रीय प्रतीकों की जानकारी देकर राष्ट्रीयगान व राष्ट्रीय चिन्ह का पूर्ण ज्ञान कराया जाये।
- सभी राष्ट्रीय पर्व विद्यालय में मनाया जाये।

2– **माध्यमिक स्तर** – इस स्तर के विद्यार्थी प्राथमिक से जो देश प्रेम की भावना लेकर आये उन्हें विकसित किया जाना चाहिये।

- पाठ्यक्रम में सामाजिक व सांस्कषतिक इतिहास को सम्मिलित किया जाये।
- विद्यार्थियों को देश के विभिन्न क्षेत्रों की संस्कषति एवं सामाजिक दशाओं से परिचित कराया जाये।
- विद्यार्थियों के सामाजिक विकास हेतु पाठ्य सहगामी क्रियाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाये।

3– **विश्वविद्यालय स्तर** – इस स्तर के विद्यार्थी समाज व देश के लिये तैयार मानव संसाधन है अतः इस स्तर पर राष्ट्रीय एकता व भावात्मक एकता स्थापित करने के

ठोस उपाय किये जाने की आवश्यकता है।

- सभी स्तर की कक्षाओं में विचार– गोष्ठियों और अध्ययन गोष्ठियों की व्यवस्था की जाये।
- इस स्तर पर भी राष्ट्रीय पर्वों को धूम–धाम से मनाने की व्यवस्था होनी चाहिये।
- राष्ट्र भाषा से सम्बंधित प्रतियोगिता (लेखन, वाद–विवावद, कविता) आदि का अयोजन कराया जाये।

4– युवा महोत्सवों का आयोजन कर विद्यार्थियों का सामाजिक, सांस्कषतिक एवं आध्यात्मिक विकास का प्रयत्न करना चाहिये।

5– पाठ्यक्रम में सामुदायिक क्रियाकलापों को जोड़कर विद्यार्थियों को समाज के समीप लाने का प्रयास किया जाये।

6– राष्ट्र गौरव से सम्बंधित तथ्यों को पाठ्यक्रमों में जोड़ा जाये।

इन सभी उपायों को करके हम देश की रक्षा का उपाय कर सकते है, क्योंकि देश प्रेम की भावना को शिक्षा ही जगा सकती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

10–राष्ट्रीयता की शिक्षा किस स्तर पर सबसे अधिक आवश्यक है और क्यों?

.....

14.10 सारांश

मनुष्य भावना प्रधान प्राणी है, और भावना के कारण ही वे एक–दूसरे से जुड़ते हैं। यही उनकी एकता एवं प्रेम का आधार बनता है। यही प्रेम और भाव राष्ट्र से होता है, तो वह राष्ट्रीय एकता को जन्म देता है। राष्ट्रीय एकता किसी भी राष्ट्र की प्राण वायु है, और इसके बगैर राष्ट्र के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती है क्योंकि राष्ट्र एक भाव सूत्र में बंधे लोगों का समूह ही तो है अतः इसको विकसित करने हेतु एक प्रकार से मस्तिष्क व मन को सुरक्षित किये जाने की आवश्यकता होगी इसके लिये शिक्षा को ही मुख्य भूमिका निभानी होगी। इस इकाई में हमने इन्हीं बातों को ध्यान देने की प्रयास किया है। यह इकाई आपके लिये रोचक एवं ज्ञान प्रद रही होगी।

14.11 चर्चा के बिन्दु

हमारे देश में ऐसे कई तत्व है, जिन्होनें राष्ट्रीय एकता को विघटित करने में सहायता दी है। क्या वास्तव में संवैधानिक प्रावधान भी एक मजबूत कारक है। चर्चा कीजिये।

14.12 अभ्यास कार्य

1– राष्ट्रीयकता के निहितार्थ पर प्रकाश डालिये? राष्ट्रीयता की शिक्षा के लिये हमे शिक्षा व्यवस्था में क्या परिवर्तन करना होगा ?

2– शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का विकास एवं चरित्र का निर्माण ही नहीं है अपितु इसके द्वारा राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति भी करनी चाहिये। आप इस कथन से कहां तक सहमत है। राष्ट्रीय एकता के विकास हेतु विद्यालय के कार्यो की रूपरेखा तैयार कीजिये।

14.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1 देश के प्रति प्रेम भक्ति एवं समर्पण की भावना।

2 व्यक्ति को अपने देश से प्रेम व अन्य देश को खराब समझने, देशों के मध्य संघर्ष को जन्म देती है।

3 राष्ट्र की सीमाओं एवं अस्तित्व की रक्षा के लिये विकास के लिये।

4 राष्ट्रों के मध्य सहयेाग प्रेम, खत्म कर वैमनस्य को बढ़ाती है। नागरिक व्यक्तित्व की उपेक्षा होती है।

5 विभिन्न भाषा के होने के कारण मन नहीं मिलता। अपने भाषा को श्रेष्ठ मानकर दूसरी भाषा–भाषी को नीचा समझने से आपसी एकता समाप्त होती है।

6 भाषावाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, दूषित राजनीति।

7 शिक्षा नागरिक मस्तिष्क को शिक्षित कर धर्म–निरपेक्षता, समाजवादी दृष्टिकोण उत्पन्न कर राष्ट्र के प्रति लगाव उत्पन्न कर सकती है।

8 नाकारात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि संसाधनों के न मिलने से आपसी संघर्ष होता है।

9 बाहरी देशों का हस्तक्षेप , कश्मीर निवासियों का पाकिस्तान के प्रति प्रेम, सरकार की उदासीनता।

10 उच्च शिक्षा स्तर पर, क्योंकि यह स्तर के विद्यार्थी देश के वर्तमान होते हैं।

14.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें–

डा0 जयसवाल एस0 (1996) : शिक्षा का सामाजिक आधार प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड,लखनऊ।

Saiyidian, G.K,(1957) : Education, Culture and Social Order, Bombay: Asia Publishing house.

Brookover W.V. : Sociology of Education, Newyork : American Book Co.

इकाई 15 शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीयता

संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 अन्तर्राष्ट्रीयता की अवधारणा

15.4 अन्तर्राष्ट्रीयता के बोध का औचित्य

15.5 अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना व शिक्षा

15.6 अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना हेतु शिक्षा के उद्देश्य

15.7 अन्तर्राष्ट्रीयता हेतु शैक्षिक स्वरूप

15.7.1 पाठ्यक्रम

15.7.2 शिक्षण विधियां

15.7.3 पाठ्य पुस्तकें

15.7.4 अन्य सुझाव

15.8 सारांश

15.9 चर्चा के बिन्दु

15.10 अभ्यास कार्य

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.12 कुछ उपयोगी पुस्तके

15.1 प्रस्तावना

मानव अकेले वन में रहने वाले प्रणी से एक समाज का प्राणी बना फिर देश का और अब विश्व का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। अब मनुष्य को अपने से पहले देश के बारे में सोचना है और एक ऐसी विचारधारा ने जन्म लिया, जिसमें मनुष्य को अब सम्पूर्ण विश्व के विषय में भी उदारता पूर्वक सोचना है। आज विश्व में अन्धी राष्ट्रीयता से मानवता लगभग समाप्ति के कगार पर है, विश्व के दो महायुद्ध अंधी राष्ट्रीयता के ही परिणाम थे, जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को हिलाकर रख दिया था, अतः आज भूमण्डलीकरण एवं औद्योगिकी करण के इस दौर में सम्पूर्ण मानव प्रजाति के अस्तित्व को बनाये रखने हेतु उदार राष्ट्रीयता की भावना की आवश्यकता महसूस हो रही है। पष्थकता पिछड़ेपन की द्योतक है दुनिया बदल गयी है और पुराने मान खत्म

हो रहे हैं अतः जीवन अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है। हमें भी इस भावी अन्तर्राष्ट्रीयता में अपनी भूमिका अदा करनी है और इस भूमिका को अदा करने योग्य हमें शिक्षा ही बना पायेगी अतः इस इकाई में हक अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध हेतु शिक्षा के विषय में अध्ययन करेंगें।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- अन्तर्राष्ट्रीयता की अवधारणा को समझ सके।
- अन्तर्राष्ट्रीय बोध की आवश्यकता की विवेचना कर सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में शिक्षा के कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना हेतु शिक्षा के उद्देश्यों को इंगित कर सकेंगे।
- यह बता सकेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास हेतु शिक्षा का क्या स्वरूप होना चाहिये।
- यह तर्क दे सकेंगे कि बच्चों में अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास हेतु कैसी पाठ्य पुस्तकें एवं शिक्षण विधिया शिक्षक को अपनानी चाहिये।

15.3 अन्तर्राष्ट्रीयता की अवधारणा

पूर्व इकाई में हमने मानव की स्वत्व से ऊपर उठकर राष्ट्र के प्रति सोचने अर्थात् राष्ट्रीयता के विषय में पढ़ा अर्थात् राष्ट्र के प्रति प्रेम, राष्ट्र के प्रति समर्पण व राष्ट्र के प्रति निष्ठा की भावना हेतु शिक्षा की भूमिका कों पढ़ा। इस इकाई में हम इस भावना से भी उदार एवं विस्तष्त भावना के विषय में जानेंगे।

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति क्षेत्र, जाति, लिंग, धर्म, संस्कषति, व्यवसाय अथवा अन्य किसी आधार पर 'हम' की भावना से बंधे रहेते हैं तो इसे भावात्मक एकता कहते हैं। मनुष्य आरम्भ से केवल अपने बारे में सोचता था धीरे–धीरे उसने दूसरो के विषय में सोचना प्रारम्भ किया जब समाज का निर्माण हुआ फिर एक निश्चित भू–भाग में रहने वाले लोग राजनैतिक विशेषताओं के कारण वर्गीकष्त होते गये और सम्पूर्ण भू–मण्डल देशों में बंट गया। ये सभी देश अपने नागरिकों के "हम की भावना" अर्थात् राष्ट्रीयता की भावना पर निर्भर करते हैं, क्योंकि इससे ही राष्ट्रों का अस्तित्व है। परन्तु जब राष्ट्रीयता से भावना ऊपर उठकर मनुष्य सम्पूर्ण विश्व के विषय में सोचता है प्रेम करता है, अपना सम्बंध जोड़ता है, तब मानसिक तौर पर राष्ट्र के बंधन टूट जाते हैं, तो यही भावना अन्तर्राष्ट्रीयता कहलाता है। यह भावना विश्व मैंत्री और विश्व बन्धुत्व की महान भावनाओं पर आधारित है। मानव मात्र का कल्याण हो, प्राणी मात्र पर समानता रहे, विश्व में शान्ति हो, प्राणीयों में सद्भावना हो, पारस्परिक मित्रता हो, राष्ट्रो

के मध्य भाईचारे का सम्बंध हो यही अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना है।

- एच0 लेबेज ने शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय बोध को स्पष्ट करते हुये लिखा है– *"अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एक ऐसी योग्यता है जो आलोचनात्मक रूप से सभी देशों के लोंगों के आचार–विचार का निरीक्षण करती है, तथा उन अच्छाइयों की जिनमें वे अपनी राष्ट्रीयता और संस्कषति का ध्यान नहीं रखते, दूसरों से प्रशंसा करती है।"* आगे उन्होनें इस बात को और स्पष्ट करते हुये कहा कि – "अन्तर्राष्ट्रीय भावना इस ओर ध्यान दिये बिना कि व्यक्ति किस राष्ट्रीयता या संस्कषति के है एक–दूसरे के प्रति सब जगह उनके व्यवहार का आलोचनात्मक और निष्पक्ष रूप से निरीक्षण करने और आंकने की योग्यता है।"

अर्थात् व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम करते हुये भी दूसरे राष्ट्रों के प्रति भी प्रेम कर सकता है। यही सच्ची राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता है।

विशेषताये–

- यह भावना उदार एवं विस्तष्त होती है।
- इस भावना में उदार राष्ट्रीयता की भावना की झलक मिलती है।
- अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना मनुष्य को 'स्व' से बहुत उपर उठाती है, विश्व से जोड़ती है।
- यह भावना मनुष्य को मानवता के सर्वोत्कष्ट गुणों से परिपूर्ण बनाती है।
- यह विश्व शान्ति और विश्व विकास की ओर प्रमुख आधार प्रदान करती है।
- यह भावना सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों को मानसिक रूप में बांधती है।
- यह भावना विश्व में प्राणी मात्र को मानसिक बंधन व संवेदना से बांधने का आध ाार है।
- यह भावना संघर्ष की समाप्त कर स्नेह और शान्ति का मार्ग प्रशस्त करती है।
- यह भावना मनुष्य को द्वेष, घष्णा, ईर्ष्या और असहयोग की निम्न भूमि से उठाकर प्रेम सहानुभूति और सहयोग की उच्च भूमि पर लाकर खड़ा करती है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख– इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1– अन्तर्राष्ट्रीयता से तुम्हारा क्या अभिप्राय है? समझाइये।

.....

15.4 वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीयता के बोध का औचित्य

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना हमारे लिये नूतन भावना ही नहीं यह तो हमारे ध र्म में पहले से है। धर्म ने "वैसुधैव कुटुम्बकम" का पहले ही मानव का आदर्श दृष्टिकोण के रूप में प्रतिस्थापित किया। आधुनिक युग उपनिवेशवाद ने मानवता को कुचलकर रख दिया। सम्पूर्ण विश्व कई भागों एवं गुटों में बंट और सबल देशों ने निर्बल एवं शान्त देशोंको अपना बाजार बनाया अपने अधीन किया और सम्पूर्ण विश्व धार्मिक क्रांतियों के चपेट में भी आ गया था। पुरातन धर्मों पर नये धर्मों ने अपने प्रचार के लिये पांव पसार लिया। औद्योगीकरण और भूमण्डलीकरण का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व में स्वार्थपरता एवं बर्चस्व की होड़ लग गयी और इसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व सबल–निर्बल, रिपन्न, सम्पन्न, मालिक व नौकर के रूप में बंटा। 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में सम्पूर्ण विश्व अशान्ति के आग में झुलस रहा था। अनेक देश भारत की तरह अपने स्वतंत्रता के लिये छटपटा रहे थे। इसी समय बर्चस्व की लड़ाई में दो विश्व युद्ध हुये और जन–धन की अपूर्णनीय क्षति हुयी। सम्पूर्ण विश्व अन्धी राष्ट्रीयता के चपेट में है विश्व के अधिकांश राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों की बलि देकर अपनी सुख समषद्धि प्राप्त करने की इच्छा रखता है, और तीसरे महायुद्ध का सम्भावित संकट तथा आंतकवाद इसके परिणाम है।

धार्मिक कट्टरता एवं संकुचित राष्ट्रीयता का परित्याग कर अन्तर्राष्ट्रीय भावना का विकास करके ही मानव का कल्याण हो सकता है।

इतिहास इस बात का गवाह है कि अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास हेतु बहुत लम्बे समय से प्रयास किया है आज से करीब 620 वर्ष पूर्व पियरे डयूबियस ने अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास के लिये अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालयों को खोले जाने की संस्तुति की थी। कामेलियस ने इसी विचार को आगे बढ़ाया और अन्तर्राष्ट्रीय उपबोध के लिये पैनासोफिक कालेज खोले जाने की संस्तुति दी। अमेरिका में राष्ट्रपति टेफ्ट ने 1921 में हेग एक सम्मेलन इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया परन्तु यह उपाय बहुत कारगर नहीं रहा। इस बीच प्रथम विश्व युद्ध की विभिषिका विश्व झेल रहा था।

श्रीमती इन्ड्रूज ने अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा विभाग को राष्ट्र संघ में मिलाने का प्रयास किया। सन् 1926 में "बौद्धिक सहयोग आयोग" की स्थापना तो की गयी परन्तु ध नाभाव में यह प्रयास असफल रहा।

इस बीच में हिटलर के जर्मनी में जातिवाद व मुसोलिनी के इटली में फांसीवाद के सिद्धान्तों के प्रचार के कारण यूरोप पुनः द्वितीय विश्वयुद्ध की विभिषिका झेलने पर

मजबूर हुआ। इस युद्ध के समाप्ति पर सम्पूर्ण विश्व आतंकित हो गया शान्ति का उपाय ढूढना लगा और अपने विचारों को साकार रूप देने के लिये एक नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की ओर कदम बढ़ाया। सन् 1945 में एक नये अन्तर्राष्ट्रीय संगठन ने "संयुक्त राष्ट्र संघ" के रूप में स्थापित हुआ।

इस संघ की स्थापना विश्व शान्ति के ध्येय से की गयी है, ओर अपने इस उद्देश्य को "संयुक्त राष्ट्र संघ" के अधिकार पत्र में कहा कि – "अन्तर्राष्ट्रीय स्थिरता का विकास करने के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक और शैक्षिक सहयोग को विकसित करेंगा।" संयुक्त राष्ट्र संघ (यू0एन0ओ0) के प्रमुख संगठन यूनेस्को का आधारभूत सिद्धान्त यही है कि– *"क्योंकि युद्ध मनुष्यों के मस्तिष्क में आरम्भ होते हैं इसलिये शान्ति की सुरक्षा के साधनों का निर्माण भी मनुष्य के मस्तिष्क में ही किया जाना चाहिये।"*

- यूनेस्को यह बात मानता है कि राष्ट्रों के मध्य भेद का प्रमुख आधार– संस्कर्षति की विभिन्नता ही है। अतः शिक्षा विज्ञान और संस्कर्षति के क्षेत्रो में विविध राज्यों में सहयोग स्थापित करने व उनकी आपस की विभिन्नताओं तथा विरोध के कारणों को मिटाने के लिये यह बहुत आवश्यक है कि विश्व संस्कर्षति का विकास किया जाये।
- विश्व के प्रत्येक राष्ट्र की अपनी विशेषतायें एवं क्षमतायें हैं कुछ प्रकृति प्रदत्त हैं वो कुछ मानव निर्मित। कोई देश कपास पैदा करता है तो दूसरा देश कपड़ा अच्छा बनाता है, प्रत्येक देश एक–दूसरे पर कच्चा माल व बाजार के लिये निर्भर है। अन्तर्राष्ट्रीयता आर्थिक दृष्टिकोण से भी सहायक है।
- विश्व के राष्ट्रों के मध्य आर्थिक व शैक्षिक स्तर में विभिन्नता है। राष्ट्रों के मध्य अच्छी समझ सभी देशों को इन परिस्थितियों में उचित सहयोग प्रदान कर वहां के नागरिकों को विकास का अवसर देता है।
- के0जी0 सैयदेन ने एक उदारहण देते हुये लिखा था कि– *"युद्ध यूरोप में आरम्भ होता है, और बंगाल के तीन लाख व्यक्ति अकाल से मर जाते हैं, लाखों लोग बेघर हो जाते हैं, अपने साधारण कार्यों से पथ्थक हो जाते हैं, और सभी सुख से वंचित हो जाते हैं।"* इसी प्रकार हम दूसरा उदाहरण देखे कि – अमेरिका के आर्थिक मंदी ने विश्व बाजार को हिलाया और भारत भी उससे प्रभावित हुआ इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षा बालकों को यह सिखाये कि सब सम्पूर्ण विश्व एक है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

2. संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के प्रमुख कारण क्या थे ?

.....

15.5 अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना व शिक्षा

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिये रेडियो, समाचार–पत्र, भाषण, सिनेमा आदि अनेक साधन बताये जाते हैं, पर शिक्षा व्यवस्था की अहम भूमिका पर सभी मत एक है, क्योंकि शैक्षिक संस्थाओं का वैचारिक स्तर समाज के वैचारिक व तार्किक स्तर से ऊँचा होता है, इस तथ्य को यूनेस्को ने स्वीकार करते हुये "टूवर्डस वर्ल्ड अण्डरस्टैण्डिग" में लिखा है– *"शिक्षालय आसपास की संस्कृति में निहित सर्वोत्तम तत्वों को व्यक्त कर सकते हैं, और साधारणतः करते भी हैं। वे सत्य ईमानदारी और निष्पक्षता में समाज के सामान्य स्तर से ऊँचे होने चाहिये, और साधारणतः होते भी हैं। वे लोगों के मानदण्डों और मूल्यों को काफी ऊँचा उठाने का प्रयास करते हैं।"*

अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास का सिद्धान्त– शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास का अर्थ है, शिक्षा के द्वारा संसार के सभी देशों के नागरिकों के मन में अन्य-देशों के प्रति कल्याणकारी भावनाओं का विकास करना। शिक्षा का काम मात्र राष्ट्रीयता का विकास नहीं करती वरन् वह अन्य देशों के विषय में सकारात्मक सोच उत्पन्न करें। 1974 में यूनेस्को द्वारा **"अन्तर्राष्ट्रीयता के लिये शिक्षा"** नामक एक अभिलेख, प्रकाशित किया गया। इसमें माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विषय को शिक्षा का माध्यम बनाने पर बल दिया। इस आधार पर 10 सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये–

- विद्यार्थियों को संसार की विभिन्न समस्याओं में रूचि लेने के लिये प्रोत्साहन दिया जाये।
- सामाजिक विषय के शिक्षण के माध्यम से विद्यार्थियों में आलोचनात्मक तर्कशक्ति का विकास किया जाये।
- विश्व के विभिनन देशों के संस्कषति एवं धार्मिक तथ्यों को सम्मिलित किये जाने का सिद्धान्त।
- सामाजिक विज्ञान विषय की उचित शिक्षण विधियों का प्रयोग करते हुये उचित मनोवृत्ति और कौशलों के विकास का सिद्धान्त।

- शिक्षण में मानव सम्बंधों को उचित महत्व का सिद्धान्त।
- प्रजाति धर्म और सांस्कषतिक, आर्थिक व उपलब्धि स्तर पर भेदभाव को दूर करते हुये सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का सिद्धान्त।
- मानव के व्यक्तित्व का उचित विकास का सिद्धान्त।
- सामाजिक विज्ञान के अध्ययन हेतु नागरिकता की शिक्षा देने के लिये कक्षा स्कूल और समाज को प्रयोग के रूप में प्रयोगो करने का सिद्धान्त।
- सामाजिक घटनाओं, तनावों और सहकारिता से सम्बंध रखने वाली समस्याओं पर मुख्य ध्यानाकर्षण का सिद्धान्त।
- भूगोल शिक्षण के माध्यम से सम्बंधित समस्याओं पर ध्यान देने का सिद्धान्त।

उपरोक्त सभी सिद्धान्त यह इंगित कर रहे हैं कि व्यक्तित्व के सभी पक्षों को अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत एवं जागरूक किये जाने की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

3– यूनेस्को 'अन्तर्राष्ट्रीयता' के विकास हेतु किस विषय के शिक्षण पर बल देता है? और क्यों?

.....

15.6 अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना हेतु शिक्षा के उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना हेतु शिक्षा के उद्देश्य निर्धारण हेतु हमें बहुत ही सावधानी पूर्वक तय करने होंगे। हम अन्तर्राष्ट्रीय भावना हेतु शिक्षा के उद्देश्य इस रूप में निर्धारित कर सकते हैं–

- अन्तर्राष्ट्रीयता हेतु शिक्षा का बोध कराने वाली शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य के दृष्टिकोण को अधिक विकसित करना। इसका अभिप्राय यह है कि निजता ने मनुष्य के दृष्टिकोण को संकुचित बना दिया था, मानव के दृष्टिकोण को अपने और अपने राष्ट्र के बजाय सम्पूर्ण विश्व के विषय में सोचें।
- विश्व समाज के निर्माण हेतु सहायक मूल्यों और उद्देश्यों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना।
- विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के प्रति गलत धारणाओं को दूर करना और ऊँचें भावों

का निर्माण करना ।

- विश्व के विभिन्न देशों के सांस्कृतिक विभिन्नताओं में मानव हित के लिये कल्याणकारी समान तत्वो को खोजने की योग्यता विकसित करना।
- विश्व के विभिन्न देशों की समस्याओं से परिचित कराते हुये बच्चों में उनके प्रति संवेदना जागृत करना और लोकतांत्रिक ढंग सुलझाने की योग्यता विकसित करना।
- सभी देश के नागरिकों में सध्दयता एवं प्रेम की भावना उत्पन्न करना जिससे युद्ध को रोककर उनसे विश्व की रक्षा करना।
- विश्व नागरिकता एवं मानव संस्कृति के विकास के लिये उनको सभी राष्ट्रों की उपलब्धियों एवं विशेषताओं से परिचित कराना।
- विश्व के विभिन्न देशो के आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व संस्कृतियों की विशिष्टताओं से परिचित कराते हुये उनकी अन्योन्याश्रिता के कारणो से परिचित कराना।
- स्वतंत्रत विचार, निर्णय, भाषण व लेखन की क्षमता की विकसित करना।

यूनेस्को द्वारा प्रतिपादित उद्देश्य–

संयुक्त राष्ट्र संघ विश्व शान्ति के लिये समर्पित संस्था है, अतः उसके प्रमुख अंग यूनेस्को के भूतपूर्व डिप्टी डायरेक्टर जनरल, डा0 वल्टर,एच0सी0 लेब्ल द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास हेतु शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये गये–

- विद्यार्थियों को समाज के सक्रियता पूर्ण निर्माण हेतु तैयार किया जाय।
- विश्व में साथ रहने हेतु आवश्यक गुणों एवं परिस्थितियों से परिचित कराया जाय।
- विद्यार्थियों को अपनी संस्कषति एवं राष्ट्रीयता के प्रति संकुचित दृष्टिकोण न रखकर उदारतापूर्ण दृष्टिकोण रखने हेतु प्रेरित करना।
- विद्यार्थियों को विभिन्न देश के लोगों की संस्कषति, सभ्यता, मूल्यों व अकांक्षाओं से परिचित कराना।
- विद्यार्थियों को विश्व के विभिन्न देश के व्यक्तियों के आपसी व्यवहार, आचार–विचार एवं क्रिया कलापों का आलोचनात्मक निरीक्षण हेतु अभियोग्यता विकसित करना।
- उनमें विभिन्न राष्ट्रों के संस्कषतियों और प्रजातियों के व्यक्तियों के प्रति संतुलित दृष्टिकोण उत्पन्न करना।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4–शिक्षा विश्व शान्ति हेतु क्या भूमिका निभाती है ? समझाइये।

.....

15.7 अन्तर्राष्ट्रीयता हेतु शैक्षिक स्वरूप

अन्तर्राष्ट्रीय अपबोध हेतु शिक्षा के उद्देश्यों का उल्लेख उपर किया गया है इन उद्देश्यो को ध्यान में शिक्षा के क्षेत्र में हमें इन परिवर्तनों की आवश्यकता होगी।

शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन– अन्तर्राष्ट्रीय अपबोध के लिये पाठ्यक्रम में सामाजिक विषय को सम्मिलित किया जाये।

- पाठ्यक्रम में ऐसे तथ्य सम्मिलित किये जाये जो कि अन्य देशों के विषय में सोचने का अवसर दे।
- पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को व्यावहारिक बनाये।
- पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों भूगोल, नागरिकशास्त्र, इतिहास, अंग्रेजी आदि में दूसरे देशों के भौगोलिक, भौतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक व भाषायिक विशेषताओं को पढ़ाया जाये जिससे कि दृष्टिकोण विकसित हो।
- पाठ्यक्रम में धार्मिक व नैतिक शिक्षा को प्रश्रय दिया जाये। अन्य धर्मों के अच्छे तथ्यों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाये जिससे व धर्म सहिष्णुता उत्पन्न हो।
- पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में मानवीय मूल्यों को समाहित कर विद्यार्थियों को मूल्यों से परचित कराया जाय जिससे कि मानव संघर्ष रूके।
- पाठ्यक्रम को अन्तर्राष्ट्रीय मॉगो एवं परस्थितियों के अनुसार परिवर्तित किया जाये।
- पाठ्यक्रम में पाठय सहगामी क्रिया कलापों, स्टाउट गाइड, राष्ट्रीय सेवा योजना एवं नेशलन कैडेट कॉर्फ्स आदि को सम्मिलित कर विद्यार्थियों का सामाजिक व सामुदायिक विकास का प्रयत्न किया जाना चाहिये।
- पाठ्यक्रम में विभिन्न राष्ट्रों की समस्याओं को सम्मिलित किया जाये और इस पर समूह चर्चा, वाद–विवाद एवं भाषण प्रतियोगिताओं को आयोजन कर विद्यार्थियों में जागरूकता उत्पन्न की जाये।

- विद्यार्थियों को दूसरे देशों के विद्यालयों व विद्यार्थियों से जन संचार माध्यमों के बल पर जोड़ा जाये।
- पाठ्यक्रम में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा, कला, विश्व साहित्य को सम्मिलित किया जाये।

अन्तर्राष्ट्रीयता एवं शिक्षण विधियां– अन्तर्राष्ट्रीयता के शिक्षण हेतु विधियों का चुनाव करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि शिक्षण विधियां व्यावहारिक हो और उसे विद्यार्थियों को पर्याप्त सहभागिता हो। शिक्षण विधियां में लोकतांत्रिकता हो। शिक्षण विधियों में आलोचनात्मक सजगता एवं तर्कशक्ति बढ़े। विद्यार्थियों को केवल पुस्तंकीय ज्ञान न देकर उदार ज्ञान् की ओर उन्मुख करे।

- विषयों को समन्वित करके शिक्षण किया जाये।
- शिक्षण के दौरान उदाहरणों एवं दृष्टिान्तो को हमेशा विश्व के नये घटनाक्रमों को उदधृत करते हुये दिये जाये।
- विज्ञान जैसे विषयों के शिक्षण में भी उसके सामाजिक पक्ष पर बल दिया जाये।
- विज्ञान शिक्षण में यह तथ्य अवश्य सम्मिलित किया जाये कि विज्ञान मानव को सुखी करने के लिये है।
- सभी विषयों के शिक्षण में उसके सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय पक्षों पर बल दिया जाये।
- विद्यार्थियों को सामूहिक रूप से एक दूसरे के साथ प्रोजेक्ट, सामुदायिक क्रिया कलाप आदि करवाये जायें।

पाठ्यपुस्तकें–

पाठ्यपुस्तकों में से संकुचित राष्ट्रीयता वाले तथ्यो को निकाल देना चाहिये–

- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नेताओं के जीवन चरित्र एवं घटनाओं विश्व साहित्य आदि को पाठ्य बस्तुओं में सम्मिलित किया जाये।
- सभी प्रकार की पाठ्यपुस्तकों में ऐसे तथ्य सम्मिलित किये जाये जो विद्यार्थियों में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना उत्पन्न करें।

अन्य सुझाव – अन्तर्राष्ट्रीयता हेतु कुछ अन्य कार्यक्रम भी करवाये जा सकते है–

- विद्यार्थियों को पेन फ्रेण्डस एवं पत्र मित्र बनाने हेतु प्रोत्साहित करे।
- एक देश के विद्यार्थियों को दूसरे देश में अध्ययन हेतु अवसर प्रदान किये जाये।

- एक देश के शिक्षकों को दूसरे देश के शिक्षको के साथ अध्यापन का अवसर दिया जाये।
- वर्ष में राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का सभी स्तर के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के लिये आयोजन किया जाये जिससे कि शिक्षक एवं विद्यार्थियों के साथ अन्य देशों के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों का सम्बंध बढ़े।
- जन संचार के माध्यमों का प्रयोग करके इस भावना के प्रचार–प्रसार का कार्य किया जाये जिसमें अन्य देशों की संस्कषति एवं जनजीवन की अच्छी बातें समाहित हो।
- विद्यार्थियों में संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत कार्य करने वाले "यूनेस्को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय" " विश्व स्वास्थ्य संगठन" आदि में रूचि करायी जाये।
- विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को अन्य देशों में भ्रमण एवं शोध के अवसर प्रदान किये जाने चाहिये।

हमें संकुचित राष्ट्रीयता के आवरण से विश्व को बाहर कर अन्तर्राष्ट्रीयता का बोध कराना होगा जवाहर लाल नेहरू ने इस सम्बंध में कहा है– *"पथ्थकता का अर्थ है, पिछड़े रहना और पतन। संसार बदल गया है और पुरानी रूकावटें समाप्त होती जा रही है। जीवन अधिक ही अधिक अन्तर्राष्ट्रीय होता जा रहा है। हमें इस भावी अन्तर्राष्ट्रीयता में अपना पार्ट करना है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

5–'पेन फ्रेण्डस' क्या होते हैं?

.....

6–पाठ्य पुस्तकों में अंश राष्ट्रीयता के विकास हेतु क्या परिवर्तन करना चाहिये?

.....

15.8 सारांश

आधुनिक युग में अन्तर्राष्ट्रीयता का महत्व अत्यधिक है। दो विश्वयुद्ध के विभिषिका से विश्व सहमा हुआ है, और अब शान्ति की ओर अग्रसर होना चाह रहा है।

औद्योगीकरण और भूमण्डलीकरण ने विश्व को और सिकोड़ दिया है और सभी को एक–दूसरे पर आश्रित कर आबद्ध किया है। सभी देश एक–दूसरे के समीप है कि एक देश में होने वाली घटना की प्रभाव सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित करती है और यह सब प्रतीत होने लगा है कि राष्ट्रीयता के उदार दृष्टि के साथ अन्तर्राष्ट्रीयता की आवश्यकता है और कोई भी देश संसार से कर नही रह सकता है। ऐसी स्थिति में मानव जाति की रक्षा एवं कल्याण के लिये आवश्यक है कि वह सम्पूर्ण विश्व में एक साथ मिलजुल कर रहे इस भावना के विकास का कार्य शिक्षा को करना होगा। इसके लिये शिक्षा के सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं पक्ष में अमूल परिवर्तन की आवश्यकता होगी। इस सम्पूर्ण इकाई में हमने इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया है कि अन्तर्राष्ट्रीय अपबोध हेतु शिक्षा का क्या स्वरूप होना चाहिये। यह इकाई आपके लिये रूचिकर एवं बोधगम्य होगी।

15.9 चर्चा के बिन्दु

अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध ही विश्व को तीसरे विश्वयुद्ध से बचा सकती है, और सभी देशों को अपने आने वाली पीढ़ी में इसके संस्थापन हेतु प्रयास करना चाहिये। चर्चा कीजियें।

15.10 अभ्यास कार्य

1– अन्तर्राष्ट्रीय अपबोध क्या है? क्या राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के मध्य विरोध है। शिक्षा इस विरोध को समाप्त करके कैसे इसका विकास कर सकती है?

2– शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीयता से आप क्या समझते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय अपबोध के विकास में शिक्षा कहां तक सफल हो सकती है।

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सम्पूर्ण विश्व से प्रेम, सहानुभूति व सम्बंध जोड़ने का भाव।
2. सम्पूर्ण विश्व को दो युद्ध की विभिषिका के पश्चात् शान्ति के सत्याथ्पन एवं तीसरे विश्व युद्ध से बचाने हेतु।
3. ~~सामाजिक विषय के अध्ययन हेतु।~~
4. लोगों के विचारों में परिवर्तन कर उदार व्यापक एवं आधुनिक बनाती है।
5. पत्रों के माध्यम से दूर दराज के देशों के लोगों को मित्र बनाना।
6. अन्तर्राष्ट्रीयता से सम्बंधित तथ्य, विभिन्न देशों के संस्तुति एवं सभ्यता के अंशों को

विभिन्न धर्मों के अच्छे आदर्शों को पाठ्यपुस्तकों में समाहित किया जाये।

15.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

जायसवाल एस0 (1996) : शिक्षा के सामाजिक आधार, प्रकाशन केन्द्र, सीतापुर रोड, लखनऊ।

Holger R.Stub (1975) : The Sociology of Education, A source book III edition, the dorsey Press.

Saiyidian, G.K,(1957) : Education, Culture and Social Order, Bombay: Asia Publishing house.

Brookover W.V. : Sociology of Education, Newyork : American Book Co.

इकाई 16 शिक्षा और विज्ञान

संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 विज्ञान की अवधारणा एवं औचित्य

16.4 विज्ञान की प्रवृत्ति की विशेषतायें

16.5 विज्ञान का दर्शन एवं समाजशास्त्र

16.6 शिक्षा में विज्ञान के प्रवर्तक

16.7 भारत सरकार की वैज्ञानिक नीति

16.8 1987 –88 में विज्ञान शिक्षा गुणात्मकता हेतु प्रयास

16.9 विज्ञान शिक्षा की समस्यायें

16.10 सारांश

16.11 चर्चा के बिन्दु

16.12 अभ्यास कार्य

16.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान की प्रगति 15वीं शताब्दी से हो रहा है, उसने मानव जीवन के प्रत्येक पहलुओं को प्रभावित किया है। वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं आविष्कारों ने मानव जीवन को पूर्णतया बदल दिया। विज्ञान विभिन्न राष्ट्रों के मध्य विकास का आधार बना। विज्ञान ने विश्व को हर क्षेत्र में प्रभावित किया। जिस देश में विज्ञान के क्षेत्र में जितनी प्रगति की वह उतना ही विश्व पटल पर विकसित कहलाया। वैज्ञानिक प्रवृत्ति ने शिक्षा को प्रभावित किया और भारत समेत सभी देशों ने शिक्षा में विज्ञान विषय को महत्वपूर्ण स्थान दिया और यह शिक्षा के समक्ष एक समस्या के रूप में भी है कि विज्ञान को शिक्षा व्यवस्था में कैसे समाहित करे, कि विद्यार्थियों में वैज्ञानिक प्रवृत्ति उत्पन्न हो। इस इकाई में हम शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

- विज्ञान की अवधारणा एवं उत्पत्ति के औचित्य को समझा सकेंगे।

- विज्ञान की प्रकृति एवं प्रवृत्ति की विशेषताओं की विवेचना कर सकेंगे।
- विज्ञान के दर्शन व समाजशास्त्र का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत सरकार द्वारा विद्यार्थियों में वैज्ञानिक प्रवृत्ति । उत्पन्न करने हेतु किये गये प्रयासों का वर्णन कर सकेगें।
- विज्ञान विषय के प्रभावशाली शिक्षण में समस्याओं एवं उपायों की विवेचना कर सकेगें।

16.3 विज्ञान की अवधारणा एवं औचित्य

विज्ञान एक चिन्तन की प्रविधि है, नवीन ज्ञान अर्जित करने की विधि है। **'विज्ञान'** शब्द मे मूल शब्दं ज्ञान और **'वि'** उपसर्ग है इसका अभिप्राय है विशुद्ध ज्ञान, पूर्णतया जॉचा–परखा ज्ञान, तर्कसंगत ज्ञान। वर्तमान के प्रयोगवादी एवं यथार्थवादी युग में उस ज्ञान को प्रश्रय दिया जाने लगा जो कि वास्तविक जीवन के लिये उपयोगी हो। यही विज्ञान है जिसने मानव जीवन में एक क्रांति उत्पन्न कर दी जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का आधुनिक जीवन पूर्णतया साहित्यिक शिक्षा के अपेक्षा व्यावहारिक जीवन में उपयोगी शिक्षा की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया और पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करने पर बल दिया जाने लगा। शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशेष रूप में फली फूली। इस शताब्दी से ही विज्ञान के अध्ययन एवं अध्यापन पर विशेष बल दिया जाने लगा। इस प्रवृत्ति के उन्नति का प्रमुख कारण है–

- यूरोप में अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों ने जन्म लिया, इससे औद्योगिक क्रांति हुई, और इन आविष्कारों ने वर्षों से सैद्धान्तिक तथ्यों को व्यावहारिक रूप दिया और इनके सही या गलत होने का प्रमाण दिया इस विचार ने विज्ञान के प्रति लोगों का विश्वास बढ़ाया।
- सैद्धान्तिक और साहित्यिक शिक्षा के तथ्य व्यावहारिक जीवन के लिये उपयुक्त नहीं रह गये, और ये जीवन की वास्तविकता तैयारी कराने में असमर्थ रहे।
- विश्व के विभिन्न भागों में मानव ने कार्य कारण को ज्ञात करने हेतु प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया इसके फलस्वरूप रूढ़िवादिता, अज्ञानता और अन्धविश्वासों की उपेक्षा होने लगी। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रयोगों ने मनुष्य को आकर्षित किया।
- विज्ञान की विभिन्न शाखाओं भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, ज्यातिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, शरीरशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र आदि ने भी अत्यधिक विकास कर सभी क्षेत्रों में लोगों को बनावटी धारणाओं को समाप्त कर वास्तविक तथ्यों को उजागर किया जिससे लोगों की रूचि बढ़ी।

- जीव विज्ञान के विकास का सिद्धान्त ने मानव को वैचारिक परिवर्तन की कगार पर लाकर खड़ा कर दिया।
- आदर्शवादी दर्शन के विचारकों ने भी शिक्षण एवं चिन्तन में वैज्ञानिक विधियों के समावेश पर बल दिया।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी– क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

1–विश्व में वैज्ञानिक प्रवृत्ति का प्रसार कब हुआ और क्यों?

.....

16.4 विज्ञान की प्रकृति एवं प्रवृत्ति की विशेषता

विद्यार्थियों में विज्ञान की प्रकृति को बोध के रूप में रखा गया है, और इस बोध को वैज्ञानिक साक्षरता मान लिया गया और अब व्यक्ति से यह आशा की जाती है, कि वह विज्ञान सम्बंधी समस्याओं पर उचित निर्णय लेने की क्षमता रखता हो।

इसमें शोध के लिये प्रश्न विकसित करना, आंकड़े, एकत्र करना, आंकड़ों का विश्लेषण करना व निष्कर्ष निकालना आदि प्रमुख है। विज्ञान की मुख्य विशेषताओं कोह म इस रूप में देख सकते हैं कि यह तर्क और प्रमाण पर आधारित ज्ञान का योग है। पालमुनरो ने लिखा– *"शिक्षा में आधुनिक वैज्ञानिक पृवत्ति की मुख्य विशेषतायें प्रायः ठीक वे ही है, जो इन्द्रिय–यथार्थवादी प्रवृत्ति की है। प्रथम– विषयवस्तु के महत्व पर बल तथा प्रकृति की घटनाओं का ज्ञान और द्वितीय–अध्ययन की आगमन विधि के अनुभवातीत महत्ता को स्वीकार करना।"* वैज्ञानिक प्रवृत्ति की कुछ विशेषतायें और है–

- **पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक विषयों को प्रमुखता,** वैज्ञानिक प्रवृत्ति के समर्थकों ने यह स्पष्ट कर दिया कि मानव जीवन में विज्ञान का महत्व अत्यधिक है। क्योंकि साहित्यिक शिक्षा मानव को भावी जीवन के लिये तैयार नहीं कर सकती है, क्योंकि ये सभी व्यावहारिक नहीं है। इस दृष्टि से उन्होने वैज्ञानिक विषयों शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, रसायन एवं भौतिक विज्ञान, भूगोल, गणित को पाठ्यक्रम में प्रमुखता से सम्मिलित करने की मांग की है।
- **विषय वस्तु पर बल–** विज्ञान में विषय वस्तु पर बल दिया जाता है। इस प्रवृत्ति ने विश्व के समक्ष यह प्रश्न रखा कि जिन विषयों की वास्तविक जीवन में उपयोगिता सिद्ध न हो उन्हें पाठ्यक्रम में रखने का क्या लाभ और ज्ञान की प्राप्ति व्यावहारिक विषयों से ही हो सकती है वर्तमान शिक्षा में सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न यह है कि इसकी विषय वस्तु व्यावहारिक नहीं है।
- **शिक्षण की आगमन विधि पर बल–** विज्ञान शिक्षण की आगमन विधि पर

बल देता है क्योंकि यह विधि पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है, जिसमें हम सरल से कठिन और ज्ञात से अज्ञात और स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाती है, और उसमें आंकड़ों के एकत्रीकरण विश्लेषण, स्वयं कार्यशीलन तथा सत्यान्वेषण पर अधिक बल दिया जाता है, और सीखने वाले स्वयं निष्कर्ष निकलता है और प्रमाणों के साथ सीखता है।

- **सैद्धान्तिक व अव्यावहारिक शिक्षा का विरोध–** वैज्ञानिक प्रवृत्ति में सैद्धान्तिक और अव्यावहारिक शिक्षा का विरोध प्राप्त होता है, क्योंकि यह शिक्षा मानव को वास्तविक जीवन के लिये तैयार नहीं कर पाती है।
- **विज्ञान द्वारा प्रकृति का वास्तविक ज्ञान–** इन प्रवृत्ति ने यह विचार प्रतिपादित किया कि प्रकृति के रहस्यों को समझने के लिये प्रयोग एवं विश्लेषण ही सर्वोत्तम है विज्ञान ने प्रकृति के अनछुये रहस्यों के सन्निकट मनुष्य को पहुँचाया है और विज्ञान ही प्राकृतिक तथ्यों को समझने का सर्वोत्तम आधार प्रदान करता है क्योंकि प्रयोग द्वारा सिद्ध प्रमाणों को बदला नहीं जा सकता है।
- **उदार शिक्षा–** वैज्ञानिक प्रवृत्ति उदार शिक्षा पर बल देता है। पाल मुनरो ने इस सम्बंध में लिखा कि– *"उदार शिक्षा वह है जो मनुष्य को अपने पेशे के लिये नागरिक के रूप में अपने जीवन के लिये और अपने जीवन की समस्त क्रियाओं को करने के योग्य बनाती है।"* इसका अभिप्राय यह है कि प्राचीन काल से चली आ रही उदार शिक्षा की अवधारणा अब बदल गयी है।
- **शिक्षण की नवीनतम विचारधाराओं के प्रतिरूचि–** वैज्ञानिक प्रवृत्ति के समर्थक यह मानते हैं कि ज्ञान की वर्धद्धि बहुत तेजी से हो रहा है और विज्ञान के क्षेत्र में लगभग 10 वर्ष में ही ज्ञान दोगुना हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में आज की शिक्षण विधियां कल असफल हो सकती हैं। अतः शिक्षक में नवीन ज्ञान के विचारधाराओं के प्रतिरूचि बनी रहनी चाहिये, और यही रूचि वे अपने विद्यार्थियों में भी जाग्रत करें।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क–नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

2. वैज्ञानिक प्रवृत्ति की आधारभूत व्यवस्था क्या है ?

.....

3. शिक्षण में आगमन विधि क्या है ?

.....

16.5 विज्ञान का दर्शन एवं समाजशास्त्र

विज्ञान का दर्शन–विज्ञान मूलतः ¤ü¸ü मान्यताओं पूर्व धारणाओं तथा व्यवहार पर निर्भर करता है और यही मान्यतायें तथा व्यवहार मिलकर विज्ञान को दर्शन बनाते हैं।

1– प्राकृतिक रहस्यों को जानने हेतु प्रकृति के विषय में विज्ञान की मान्यतायें है– प्रकृति वास्तविक है, इसके क्रियाकलापों के मध्य कार्य एवं कारण का सिद्धान्त है, और प्रकृति को कुछ सीमा तक समझा जा सकता है।

2– इसी प्रकार वैज्ञानिक खोज हेतु मान्यतायें है– बारम्बार दोहराते रहना, अच्छे और सही परिणाम की सम्भावना बनाये रखना, अनिश्य की स्थिति बनी रहती हैं।

3– विज्ञान की अपनी नैतिक मान्यतायें भी है–

- परिणाम अनुभवों पर आधारित होंगे।
- सोच मुक्त होनी चाहिये और इस सोच के साथ प्रयोग किये जाये।
- परिणामों में निष्पक्षता होनी चाहिये।
- यह परिणाम तब प्रासंगिक थे आज भी है।

4– विज्ञान का दर्शन कुछ प्रश्नों को लेकर चलता है–

- विज्ञान ने अन्य प्रकार की खोज से क्या अलग खोजा ?
- विज्ञान को खोज हेतु कौन सी प्रवृत्ति का प्रयोग करना चाहिये?
- वैज्ञानिक व्याख्या कहां तक दी जा सकेंगी जो कि संतोषप्रद है?
- वैज्ञानिक नियमों एवं सिद्धान्तों का संज्ञानात्मक स्तर क्या है?

विज्ञान का समाजशास्त्र– विज्ञान और समाज भी एक–दूसरे से सम्बंधित हैं। विज्ञान के हर खोज एवं आविष्कार ने मानव समूह को सुख दिया और जीवन को समर्द्धि से परिपूर्ण बनाया। विज्ञान, पर्यावरण तथा दैनिक जीवन से जुड़ी हुई अनेक समस्यायें एक–दूसरे से जुड़ी है। विज्ञान ने कृषि , ऊर्जा, स्वास्थ्य एवं पोषण आदि सभी पक्षों को प्रभावित किया है। विज्ञान का प्रभाव इक्कीसवीं सदीं के नागरिकों को इस कदर प्रभावित किया है कि इसने वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी, साक्षरता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण व वैज्ञानिक अभिवर्त्ति विकसित करना आवश्यक बना दिया। विज्ञान व समाज के सहसम्बंध को इस रूप में देखा जा सकता है–

- समाज की अनेक समस्यायें विज्ञान के प्रचार–प्रसार का ही परिणाम है, जैसे–

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, पर्यावरण प्रदूषण, जनसंख्या विस्फोट, शहरीकरण, औद्योगिकरण, विभिन्न भयानक संक्रमण, ड्रग्स इत्यादि।

- सभी समाज के विकास के आत्मनिर्भरता का मानक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी है। जिस समाज ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी को अधिक अपनाया और समझा वह उतना ही विकसित हुआ।
- विकास करने और विज्ञान के कारण उत्पन्न समस्याओं के लिये सम्बंधित समस्याओं के प्रति बोध और उन पर निर्णय के लिये समाज में वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी साक्षरता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण का निर्माण एवं वैज्ञानिक अभिवर्त्ति का विकास आवश्यक है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का जन्म व विकास आम समाज के लिये ही हुआ अतः आम जनता के लिये यह आवश्यक है कि वह वैज्ञानिक तकनीकी समस्याओं से सम्बधित कारणों का निर्णय ले सके। प्रो० डेनियल बेल ने स्पष्ट लिखा है कि *"कोई भी सामाजिक प्रणाली अन्तोगोत्वा उसको लोकाचार से परिभाषित होती है। ऐसे लोकाचार मूल्य उसके चिन्तन संस्कृति में होते हैं, और व्यवहार के मानक उनके चरित्र में। विज्ञान के लोकाचार पाश्च औद्योगिक समाज के उदीयमान लोकाचार है।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

4. विज्ञान के दर्शन से आप क्या समझते है ?

.....

5. विज्ञान का समाज से क्या सम्बन्ध है ?

.....

16.6 शिक्षा में विज्ञान के प्रवर्तक

हम पूर्व में विज्ञान और समाज के सम्बंध को पढ़ चुके हैं, और अब हम यह पढेगें कि शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति के प्रथम प्रवर्तक हरबर्ट स्पेन्सर है, इनका जन्म 1820 में डर्बी नामक शहर में लन्दन में हुआ। इनके पिता एवं चाचा शिक्षक थे और पिता के विज्ञान के शिक्षक होने के कारण स्पेन्सर की रूचि विज्ञान में बढ़ी और उन्होनें गणित, विज्ञान, इंजीनियरिंग, प्रकृति अध्ययन, अर्थशास्त्र आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। हरबर्ट स्पेन्सर ने 1861 में लेखन कार्य किया और उनकी प्रमुख रचनायें है–

- वाट एजुकेशन इज मोस्ट वर्थ
- दि प्रिन्सिपल्स ऑफ एथिक्स
- इन्टलैक्चुअल एजुकेशन
- दि प्रिसिंपल्स ऑफ सोशियाजाली
- मोरल एजुकेशन
- मैने वर्सेज स्टेट
- फिजिकल एजुकेशन
- फैक्ट्स एण्ड कमेण्टस
- फर्स्ट प्रिसिंपल्स
- दि फर्स्ट प्रिंसिपल्स आफ बायोलाजी

स्पेन्सर के शैक्षिक विचार – स्पेन्सर के अनुसार– *"शिक्षा जीवन की तैयारी है।"*

- **शिक्षा के उद्देश्य के सम्बंध में** स्पेन्सर ने लिखा–"शिक्षा को पूर्ण जीवन के नियमों ढंगों से परिचित कराना चाहिये शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य– हमें जीवन के लिये इस प्रकार तैयार करना है कि हम उचित प्रकार का व्यवहार कर सकें और शरीर मन तथा आत्मा का सदुपयोग कर सकें। स्पेन्सर ने इस बात पर बल दिया कि हमें शिक्षा द्वारा पूर्ण जीवन के कार्य– आत्मरक्षा, जीविकोपार्जन, वंशवृद्धि एवं पालन–पोषण, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक तथा अवकाश के सदुपयोग सम्बंधित कार्यो कों करने के लिये तैयार करना चाहिये जिससे हम जीवन का वास्तविक आनन्द ले सकें।
- **पाठ्यक्रम**– स्पेन्सर ने पूर्ण जीवन की समस्त क्रियाओं को पॉच भागों में बांटा है– आत्मरक्षा की क्रिया के लिये शरीर विज्ञान व स्वास्थ्य विज्ञान, जीवन रक्षा के लिये भाषा गणित, भूगोल, पदार्थ विज्ञान, शिशु रक्षा के लिय गृहशास्त्र, शरीर विज्ञान व बालमनोविज्ञान, समाजरक्षा के लिये इतिहास, नागरिक शास्त्र व अर्थशास्त्र अवकाश सम्बंधी क्रियाओं के लिये साहित्य, संगीत, कविता एवं ललित कला रखने का सुझाव रखा।

शिक्षण की वैज्ञानिक विधि–स्पेन्सर ने शिक्षण विधि को रोचक बनाते हुये मानसिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया को अपनाने का सुझाव दिया उन्होनें सरल से कठिन की ओर स्थूल से सूक्ष्म की ओर, ज्ञात से अज्ञात की ओर, अप्रत्यक्ष से प्रत्यक्ष की ओर, अनिश्चित से निश्चित व स्वशिक्षा पर बल दिया।

अनुशासन के सम्बंध में स्पेन्सर ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ही अपनाया है,

उनके अनुसार– *" बालक को अपने आचरण के अनिवार्य परिणामों तथा अवश्यम्भावी प्रतिक्रियाओं को भोगना चाहिये, जिनसे उसे लाभप्रद नियंत्रणों का अनुभव होता है, जो वस्तुतः उसके शारीरिक हित से भिन्न होते हैं।"*

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

6– स्पेन्सर सच्ची शिक्षा किसे मानते थे?

.....

7– स्पेन्सर को वैज्ञानिक प्रवृत्ति का प्रवर्तक क्यो कहा गया?

.....

16.7 भारत सरकार की वैज्ञानिक नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय लम्बे अर्से से परतंत्र रहे भारत की अर्थव्यवस्था पूरी तरह से लड़खड़ा रही थी, तत्कालीन सरकार के समय सबसे बड़ी चुनौती देश को आत्मनिर्भर बनाने के साथ विकास की श्रेणी में खड़ा करना था। तब भारत सरकार न इसे सहर्ष स्वीकार किया और 4 मार्च 1958 को संविधान द्वारा स्वीकष्त विज्ञान नीति संकल्प पर आधारित है। इसमें वैज्ञानिक जानकारी तथा अनुसंधान के व्यावहारिक उपयोग से होने वाले लाभ को जनसामान्य को देने की सरकार की जिम्मेदारी को माना गया। सरकार की यह नीति है कि ज्ञान के प्रसार में व्यक्तिगत प्रयासों को बढ़ावा दिया जाये और यह तय किया गया कि विज्ञान शिक्षा, कृषि उद्योग तथा प्रतिरक्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जाने चाहिये। सन् 1958 की राष्ट्रीय विज्ञान शिक्षा नीति के निम्नलिखित सुझाव थे–

- व्यावहारिक और सैद्धान्तिक दोनों स्तरों पर हर सम्भव विज्ञान की शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसंधानों को विकसित किया जाये।
- वैज्ञानिकों के उच्च स्तरीय अनुसंधानों की प्रतियां सम्पूर्ण देश में उपलब्ध करायी जाये, जिससे कि देश समर्द्धिशाली और शक्तिवान बने।
- देश में शिक्षा, विज्ञान, कृषि उद्योग और सुरक्षा की आवश्यकता पूरी करने के लिये वैज्ञानिक और तकनीकि प्रशिक्षण के कार्यक्रम बनाये जाये और इन पर द्रूत गति से कार्य किया जाये।
- यह सुनिश्चित करना कि रचनात्मक अभिवर्षत्ति रखने वाले लोगों को वैज्ञानिक खोजों के लिये अभिप्रेरित किया जाये।

- वैयक्तिक रूप से अपने ज्ञान व वैज्ञानिक खोजों के लिये लोगों को प्रोत्साहित किया जाये।

विद्यालयीय स्तर पर विज्ञान शिक्षण– स्वतंत्रता के साथ ही भारत ने विज्ञान शिक्षण के महत्व को स्वीकार कर लिया था। स्वतंत्रता से पूर्व भी राजा राममोहन राय और स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में विज्ञान को समाहित किये जाने का प्रबल समर्थन किया था। प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर की शिक्षा में विज्ञान शिक्षण के पुनर्गठन और विस्तार के लिये सन् 1967 में भारत सरकार और यूनेस्को–यूनीसेफ के मध्य एक करार पर हस्ताक्षर किया गया। 1971 में राज्य सरकारों को यह निर्देशित किया गया कि वे नई अनुदेशनात्मक प्रणाली के परीक्षण हेतु प्रायोगिक कार्य आरम्भ करें। प्रायोगिक कार्य के इस योजना के अन्तर्गत जो धनराशि प्रदान की गयी वह प्रत्येक राज्य के 50 चुने हुये प्राथमिक तथा 30 जूनियर हाईस्कूलों को निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें तथा विज्ञान किटों की आपूर्ति तथा प्राप्त अनुभवों के आधार पर राज्य सरकारों द्वारा सम्मिलित किये गये स्कूलों के शिक्षणों के लिये सेवाकालीन प्रशिक्षण पर होने वाले व्यय तक ही सीमित थी। सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में विज्ञान में प्रायोगिक कार्य का यह कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया।

- इस कार्यक्रम में 100 शिक्षक प्रशिक्षण कालेज व 400 शिक्षक प्रशिक्षण स्कूलों के लिये विज्ञान, प्रयोगशाला, उपकरण व पुस्तकालय हेतु पुस्तकें दी गयी।
- 24000 स्कूलो और 31000 जूनियर हाईस्कूलों को विज्ञान किटों की आपूर्ति।
- 55000 शिक्षकों अर्थात् प्रतिस्कूल एक शिक्षक का प्रशिक्षण की व्यवस्था।
- प्रति राज्य एक पर्यवेक्षक वाहन की सुविधा।
- प्रति राज्य एक चलप्रयोगशाला वाहन की आपूर्ति।
- नई शिक्षण सामग्री के पुनर्मुद्रण के लिये कागज की आपूर्ति

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

8–भारत ने विज्ञान प्रचार–प्रसार पर ध्यान कब देना प्रारम्भ किया?

.....

9– किन विचारकों ने विज्ञान शिक्षा पर जोर दिया?

.....

10– विद्यालय स्तर पर विज्ञान शिक्षण हेतु क्या प्रारम्भ किये गयें?

.....

16.8 1987–88 में विज्ञान शिक्षा में गुणात्मकता हेतु प्रयास –

सन् 1987–88 में केन्द्र सरकार की सहायता से स्कूल स्तर पर विज्ञान शिक्षा के सुधार की नई योजना प्रारम्भ किया। इसका उद्देश्य विभिन्न वय वर्ग के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास करना था। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को साधन सम्पन्न बनाने हेतु समष्द्ध प्रयोगशालायें प्रदान की गयी, पुस्तकालयों में पर्याप्त पुस्तकें प्रदान की गयी। विभिन्न राज्यों के प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में विज्ञान किट उपलब्ध करायी गयी। जिले स्तर पर जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डायट) तथा ब्लाक स्तर पर ब्लाक संसाधन इकाई स्थापित की गयी। डायट का एक विभाग जिला संसाधन इकाई ने जिले भर के विद्यालयों विज्ञान शिक्षण में गुणात्मक सुधार हेतु प्रयास कार्य करना प्रारम्भ किया। आपरेशन ब्लैकबोर्ड योजना के तहत स्थापित विद्यालयों में विज्ञान व गणित किट प्रदान की गयी। जिला संसाधन इकाईयों ने विज्ञान एवं गणित में शिक्षकों को पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण भी प्रदान किया। विज्ञान एवं गणित से सम्बंधित प्रशिक्षण 2002 में संचालित सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत भी उच्च प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को दिया गया। जिसको इस प्रकार से संगठित किया गया –

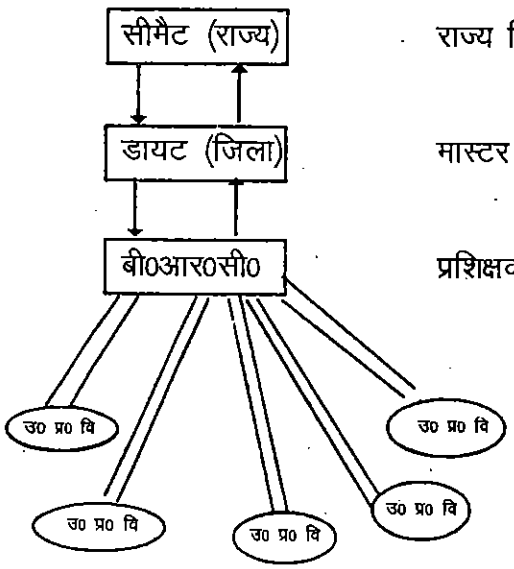

राज्य विज्ञान संस्थान

मास्टर ट्रेनर प्रशिक्षण

प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण

उच्च प्राथमिक
विद्यालय के
गणित, विज्ञान शिक्षक

शिक्षक

माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण– माध्यमिक स्तर पर भी वैज्ञानिक मनोवर्त्ति, अनुशासन सोच उत्पन्न करने हेतु स्वतंत्रता के पश्चात् से पूरा ध्यान इस स्तर की शिक्षा पर लगाया गया। विभिन्न प्रकार के उच्च माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान की विभिन्न शाखायें प्रचलित हुयी है, अभी और प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम में विज्ञान के व्यावहारिक शिक्षण एवं ज्ञान पर बल दिया जाना चाहिये।

उद्योगों एवं दैनिक जीवन में विज्ञान के प्रयोग तथा हमारी अर्थव्यवस्था में इसके बढ़ते कदम पर प्रकाश डाला जाना चाहिये। जीव विज्ञान के पाठ्यक्रमों पर भी ध्यान दिया जाये यह स्पष्ट किया जाये कि पुष्टिकरण प्रेक्षणों के द्वारा जॉच की एक पद्धति है जिसका परिमाणात्मक विश्लेषण किया जा सकता है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण – उच्च माध्यमिक स्तर पर विज्ञान का शिक्षण अनिवार्य नहीं ऐच्छिक होना चाहिये। हमारे देश में भी इस स्तर पर विज्ञान विषय ऐच्छिक है, और विज्ञान विषय में रूचि एवं योग्यता रखने वाले विद्यार्थियों द्वारा ही इस स्तर पर विज्ञान को विषय के रूप में चयनित किया जाता हैं। आयोग इस स्तर के पाठ्यक्रम में लचीलेपन की सिफारिश करता है। ग्रामीण एवं शहरी माध्यमिक विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण ग्रामीण क्षेत्रों के माध्यमिक विद्यालय में, कृषि पर्यावरण से शिक्षा का सम्बंध ऐसे समन्वित पाठ्यक्रमों के माध्यमों से स्थापित किया जाये। जिसमें भौतिक विज्ञान का जीवन विज्ञान पर पड़ने वाले प्रभाव स्पष्ट हो। माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम में कृषि विज्ञान विषय के रूप में प्रतिष्ठित किया जाये। औद्योगिक क्षेत्रों के विद्यालयों में प्रायोगिक विज्ञान की तकनीकि तथा औद्योगिक पक्ष पर तथा औद्योगीकरण पर पड़ने वाले उसके प्रभाव पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये।

उच्च स्तर पर विज्ञान शिक्षा– उच्च स्तर में विज्ञान की कई शाखायें विशेषीकृत रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित है पर उसमें गुणवत्ता की कमी है। उच्च स्तर की शिक्षा में सम्मिलित पाठ्यक्रम में नवीनता का अभाव है। इसका प्रमुख कारण भौतिक संसाधनों की कमी है। शोध कार्य भी राष्ट्रीय अकांक्षाओं के अनुरूप नहीं है।

आयोग के अनुसार विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान शिक्षा के प्रति छात्रों एवं शिक्षकों में सही दृष्टिकोण विकसित करने की जरूरत है। वर्तमान संदर्भ में यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम में पुनर्संगठन किया जाये। विज्ञान प्रयोगशालायें आधुनिकृत की जाये। राष्ट्रीय महत्व के अनुसंधानों को प्रोत्साहन दिया जाये।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51ए(एच) में नागरिकों को यह दायित्व दिया गया कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानववाद तथा जिज्ञासा एवं सुधार की भावना का विकास करे इसका यह भी उद्देश्य है कि विज्ञान हमारे सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन तथा हमारी गतिविधियां के सभी क्षेत्र प्रविष्ट हो। संविधान के भावना को मूर्त रूप देने के सरकार एवं जनता द्वारा किये गये प्रयासों ने ही भारतीय वैज्ञानिकों ने तीसरा स्थान भारत को दिलाया है परन्तु भारत को अभी इस ओर विकास की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

11. आपरेशन ब्लैक बोर्ड योजनाा के तहत किस स्तर की शिक्षा में विज्ञान शिक्षण पर अत्यधिक ध्यान दिया गया ?

.....

12. विज्ञान किट क्या होता है ?

.....

16.9 विज्ञान शिक्षा की समस्यायें

विज्ञान शिक्षा की समस्यायें जिन्हें हम इस रूप में देखते हैं,

- शिक्षा संस्थाओं में निर्धारित विज्ञान के पाठ्यक्रम बहुत पुराने हैं, इनमें उपयोगिता का अभाव है। नवीन आविष्कारों एवं खोजों को समाहित किये जाने की आवश्यकता है।
- हमारे देश में प्रचार–प्रसार से विज्ञान शिक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ, पर माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोगशालाओं में भौतिक संसाधनों एवं वातावरण की कमी है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में तो साक्षरता प्रतिशत ही अत्यल्प है, तो वैज्ञानिक सोच व अभिवर्त्ति का उत्पन्न होना तो और भी कठिन है।
- विज्ञान विषय में सरस रोचक एवं बोधगम्य नवीन ज्ञान से परिपूर्ण पुस्तकों का अभाव है। पुस्तकों में परम्परात्मकता एवं पुरातनता है। पाठ्यपुस्तकें नवीन ज्ञान, जिज्ञासा अन्वेषण एवं कार्यशैली उत्पन्न करने में असमर्थ है।
- शिक्षकों में भी विज्ञान शिक्षण को लेकर रूचि व सजगता का अभाव है। अध्ययनों में यह पाया गया कि विज्ञान एवं गणित में पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण प्राप्त कर विज्ञान किटों को भी प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी कक्षा शिक्षण में प्रयोग नहीं करते हैं। शिक्षण हेतु व्याख्यान की परम्परागत विधियों का ही प्रयोग में लाया जाता है।
- विज्ञान की शिक्षा मातष्भाषा में न दिये जाने के कारण भी यह विषय आम बच्चों के लिये बोधगम्य कम बन पा रहा है।

विज्ञान शिक्षा हेतु सुझाव–विज्ञान शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु हमें कुछ कदम उठाने की आवश्यकता होगी–

- शिक्षा के सभी स्तरों पर विज्ञान शिक्षा को अनिवार्य कर दिया जाये।
- सभी स्तर की शिक्षा संस्थान में विज्ञान शिक्षकों को नियुक्त किया जाये।
- शिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की जाये।
- शिक्षकों को समय–समय पर पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिये।
- विज्ञान शिक्षा हेतु शिक्षा संस्थाओं को पर्याप्त भौतिक संसाधन प्रदान किये जाये।
- विज्ञान शिक्षा हेतु रूचि लेने व अच्छी उपलब्धि वाले विद्यार्थियों को छात्रवर्षत्ति व प्रोत्साहन दिया जाये।
- विज्ञान शिक्षा का आकादमिक वातावरण तैयार किया जाये ताकि वैज्ञानिकों, तकनीशियनों एवं कुशल कर्मचारियों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये देश की जनशक्ति का सर्वश्रेष्ठ उपयोग किया जा सके।

विज्ञान शिक्षा हेतु कोठारी कमीशन का सुझाव–कोठारी कमीशन ने विज्ञान शिक्षा की प्रगति हेतु निम्न सुझाव दिया–

- विज्ञान व गणित के अध्ययन हेतु उच्च शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जाये।
- प्रतिभाशाली शिक्षकों की नियुक्ति की जाये।
- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय वैज्ञानिकों को देश में आमंत्रण दिया जायें।
- सभी स्तर के पाठ्यक्रम में संशोधन व परिवर्द्धन किया जाना चाहिये।
- सभी संस्थाओं की प्रयोगशालाओं एवं वातावरण में भौतिक संसाधनों की आपूर्ति करना होगा।
- विज्ञान शिक्षा के लिये ग्रीष्मकालीन संस्थान खोले जाये।
- प्रौद्योगिकी व विज्ञान को शिक्षा प्रणाली का आवश्यक अंग बनाया जाये।
- अच्छी विज्ञान पुस्तकों की रचना व भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जाये।

राष्ट्रीय शिक्ष नीति के सुझाव–

- विज्ञान शिक्षा का सुदष्ढ़ीकरण करें वैज्ञानिक सोच अभिवर्षत्ति व सष्जनात्मकता हेतु प्रयास किया जाये।
- विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हर स्तर पर किया जाये।
- विद्यार्थियों में विज्ञान को दैनिक जीवन में उपयोग हेतु क्षमता विकसित किया जायें।
- विद्यार्थियों में स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग तथा जीवन की अन्य पहलुओं के साथ विज्ञान के सम्बंध को विकसित किया जाय।

बोध प्रश्न–

टिप्पणी–क– नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिये।

ख–इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर का मिलान कीजिये।

12. विज्ञान शिक्षा में गुणात्मकता हेतु क्या प्रयास किये जाने चाहियें ?

.....

16.10 सारांश

आज का युग विज्ञान आधारित तकनीकी विकास का युग है, और कोई भी राष्ट्र इससे अछूता नहीं है। हमें अपनी अर्थव्यवस्था का स्वरूप बदलना है तो विज्ञान को सकारात्मक रूप में अपनाना होगा और विज्ञान और तकनीकी पर आधारित शिक्षा कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों को आधुनिक स्वरूप प्रदान कर सकती है, तथा राष्ट्रीय विकास में सहायक हो सकती है। विश्व में तीसरी महाशक्ति बनने की ओर अग्रसर भारत को भी विज्ञान शिक्षा का उचित प्रबंध करना होगा। शिक्षा में विज्ञान व तकनीकि आधार हमारे अर्थव्यवस्था को विकसित बनाने हेतु आवश्यक है। विज्ञान शिक्षा को मानवीय सुख व विश्वशान्ति व विकास हेतु प्रदान की जानी चाहिये। विज्ञान शिक्षा का उद्देश्य मानवीय दृष्टिकोण का विकास होना चाहिये।

16.11 चर्चा के बिन्दु

भारत को अपने उच्च आध्यात्मिकता पर गर्व है हमें अपनी आध्यात्मिकता को सुरक्षित रखते हुये वैज्ञानिक प्रगति करनी है। कैसे? चर्चा कीजिये।

16.12 अभ्यास प्रश्न

1. स्वतंत्र भारत में तकनीकि व विज्ञान शिक्षा का विकास एवं वर्तमान स्थिति का वर्णन कीजिये।
2. भारत में विज्ञान शिक्षा की आवश्यकताओं की विवेचना कीजिये।

16.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 19 वी शताब्दी में, आविष्कारों के कारण।
2. विषयवस्तु पर बल, व्यावहारिक ज्ञान, आगमन विधि, मनोवैज्ञानिक, नवीन विचार।
3. उदाहरण से सूत्र की ओर।
4. विज्ञान की मान्यतायें, धारणायें एवं विचार।

5. विज्ञान के हर खोज समाज के लिये है और सामाजिक प्रगति एवं अवनति का आधार।
6. जो जीवन के लियें तैयार करे।
7. सर्व प्रथम विज्ञान के विषयों को पाठ्यक्रम में मुख्य बनाने व पढाने पर जोर।
8. स्वतन्त्रता के पूर्व।
9. राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, प0 मदन मोहन मालवीय।
10. प्रोत्साहन, उचित वातावरण, समष्द्ध प्रयोगशालायें, व्यावाहारिक शिक्षण, प्रशिक्षित अध्यापक।
11. प्राथमिक स्तर की शिक्षा में ।
12. विज्ञान शिक्षण में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों सहित छोटा बाक्स।
13. विज्ञान को अनिवार्य रू॰ से सम्मिलित कर योग्य शिक्षकों की नियुक्ति, प्र्याप्त भौतिक संसाधन, छात्रवर्षत्ति।

16.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें–

सारश्वत एम एवं गौतमएस0एल0 (2007) : *भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्यायें,* आलोक प्रकाशन, लखनऊ, इलाहाबाद।

एन0सी0ई0आर0टी0 (2002) : *विद्यालयी शिक्षा के लिये राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000,* नई दिल्ली।

Schwab J.J. (1962) : *The teaching of science as inquiry,* Harvard University, Press.

Singh Hemlata (1990) : *Scientific Temper and Education,* New Delhi Commn wealth Publisher.

Hard Paul (Oct 2000) : *Sceince education for the 21st century school Science & Mathmatics* Vol. 100.

Sood JK (1982) : *Teaching and the nature of science teaching of science in Secondary Schools* New Delhi, NCERT.

The Royal Society (1925) : *The public understanding of science,* London